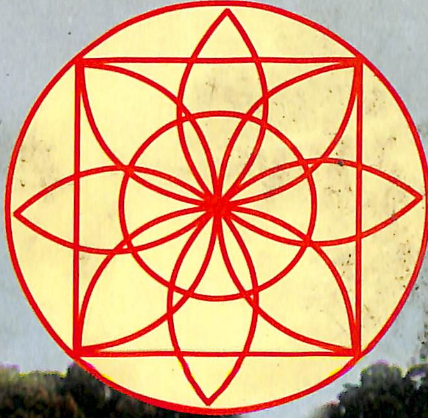
श्रीरामचन्द्रदीक्षितविरचिता स्वोपज्ञमञ्जूषाटीकोपेता

कुण्डरत्नावली

कुलपतेः प्रो. राजेन्द्रमिश्रस्य प्रस्तावनया विभूषिता

सम्पादिका
डॉ. मिताली देव



सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
वाराणसी

सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला

[१४९]

श्रीरामचन्द्रदीक्षितविरचिता स्वोपज्ञमञ्जूषाटीकोपेता

कुण्डरत्नावली

कुलपतेः प्रो. राजेन्द्रमिश्रस्य प्रस्तावनया विभूषिता

सम्पादिका

डॉ. मिताली देव



सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय
श्रुतम् मे गोपाय

SARASVATĪBHAVANA-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 149]

KUṆḌARATNĀVALĪ

With Commentary

By

ŚRĪ RĀMACANDRA DĪKṢITA

FOREWORD BY

PROF. RAJENDRA MISHRA

VICE-CHANCELLOR

EDITED BY

DR. MITALI DEV

M.A.Ph.D. D.Lit

Post Doctoral Fellow

Human Resourses Ministry and Development

Government of India

New Delhi



VARANASI

2003

Research Publication Supervisor—
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

ISBN : 81-7270-125-X



Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.



Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.



First Edition, 500 Copies

Price : Rs. 220.00



Printed by—
Shreejee Computer Printers
Nati Imli, Varanasi-221001

सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला
[१४९]

श्रीरामचन्द्रदीक्षितविरचिता स्वोपज्ञमञ्जूषाटीकोपेता

कुण्डरत्नावली

कुलपतेः प्रो. राजेन्द्रमिश्रस्य प्रस्तावनया विभूषिता

सम्पादिका
डॉ. मिताली देव
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.
पोस्ट डाक्टोरल फेलो
मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य, भारतसर्वकारस्य
नव-देहली



वाराणस्याम्

२०६० तमे वैक्रमाब्दे   १९२५ तमे शकाब्दे   २००३ तमे खैस्ताब्दे

अनुसन्धान-प्रकाशन-पर्यवेक्षकः —

निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये

वाराणसी।

ISBN : 81-7270-125-X

❑

प्रकाशकः —

डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी

निदेशकः, प्रकाशनसंस्थानस्य

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये

वाराणसी-२२१००२

❑

प्राप्ति-स्थानम्—

विक्रय-विभागः,

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य

वाराणसी-२२१००२

❑

प्रथमं संस्करणम् - ५०० प्रतिरूपाणि

मूल्यम् - २२०.०० रूप्यकाणि

❑

मुद्रकः—

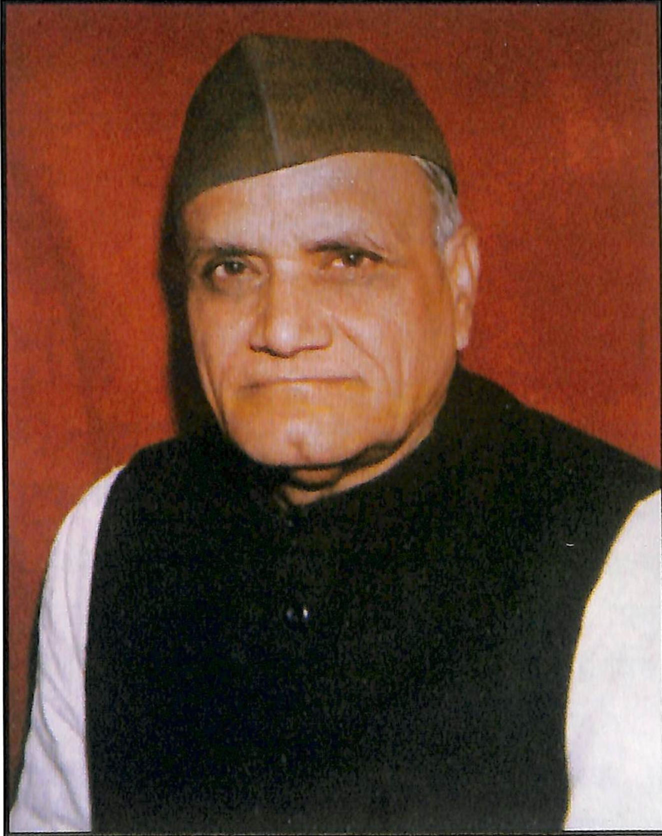
श्रीजी कम्प्यूटर प्रिण्टर्स

नाटी इमली, वाराणसी-२२१००१

समर्पणम्

तत्र सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयश्रीलालबहादुरशास्त्रिसंस्कृत-विद्यापीठादिसमुन्नतशिक्षणस्थानेषु महनीयकुलपतिविभूषितानां विद्यावाग्विनयोत्तर-गुणगणजितसमस्तलोकानां शास्त्राभ्यासपाटवप्रबुद्धविद्वज्जनसंसदग्रेसराणां सुरभारतीप्रचारप्रवृद्धीकृतसहस्राधिकपरमोच्चशिक्षासंस्थानां धर्मनीतिराजनीति-गृहनीतिविशारदां दिगन्तव्याप्तविशुद्धविश्रवसां पण्डितमण्डलाखण्डलानां महावीरप्रसूमरुमहीमण्डनानां महामहोपाध्यायानां **पण्डितश्रीमण्डनमिश्रमहाशयानां** करकञ्जेषु समर्प्यतेऽयं ग्रन्थपुष्पाञ्जलिः सादरम्।

मीमांसादिसमस्तशास्त्रनिचये निष्णातप्रज्ञो महान्
भेजे संस्कृतरक्षणैकनियतो यः कौलपत्यं भृशम्।
राजन्ते बहवोऽधुना सुरगिरः शिक्षालयाः यत्कृताः
श्रीमान् मण्डनमिश्र एष जयताद् विद्यावतां धूर्वहः।।



महामहोपाध्यायपद्मश्रीस्वर्गीयाचार्यश्रीमण्डनमिश्रमहोदयेभ्यः सादरं समर्प्यते

नान्दीवाक्

वेदमन्त्रानुस्यूतविविधगूढातिगूढरहस्यजातानां विशदीकरणकामनयैव वेदाङ्गानां सृष्टिर्जातेति सुविदितं तथ्यम्। तत्र शिक्षा-कल्प-निरुक्त-व्याकरण-ज्यौतिषच्छन्दोऽभिधानं षड् वेदाङ्गजातम्। तत्र पिङ्गलनिर्मितं प्राक्तनं छन्दश्शास्त्रम्। लगधप्रणीतं वेदाङ्गज्यौतिषम्। त्रिमुनि व्याकरणम्। यास्कप्रणीतं निरुक्तशास्त्रम्। शौनकप्रणीतम् ऋक्प्रातिशाख्यं शिक्षाग्रन्थः। कल्पाख्याऽपि विद्या चतुर्षु भागेषु विभक्ता, तद्यथा—श्रौतसूत्रम्, धर्मसूत्रम्, गृह्यसूत्रम्, शुल्बसूत्रमिति च। तत्र च शुल्बसूत्रेषु यज्ञविषयिणी ज्यामितिर्वर्णिता दृश्यते।

यज्ञज्यामितेर्विषया अनेके सन्ति। एतदेव समाश्रित्य समये समये यज्ञरहस्यवेत्तारो विपश्चित्प्रवरा ग्रन्थरत्नानि निर्मितवन्तः। तेषामेवान्यतमा कृतिः काचित् **कुण्डरत्नावली**नाम्नी सम्प्रति प्राकाश्यमुपनीयते सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयीयेन प्रकाशनसंस्थानेन। रचनेयं बाबूदीक्षिताऽपर-नामधेयस्य श्रीकृष्णदीक्षितस्य पुत्ररत्नेन श्रीमद्रामचन्द्रदीक्षितेन प्रणीता खनन्दमुनिभूसंवलिते (ख=०, नन्द=९ मुनि=७, भू=१ =१७९०) शकाब्दे। भाद्रपदमासस्यासिते पक्षे एकादश्यां तिथौ परिपूरितेयं कृति-र्विश्वेश्वरस्य काशीविश्वनाथस्य कण्ठे समर्पिता लेखकेन। ग्रन्थमिममुद्दिश्य ग्रन्थकारेण **स्वोपज्ञा टीका**ऽपि **मञ्जूषा**नाम्नी कृता।

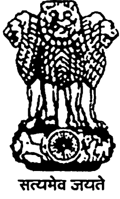
एवंगुणविशिष्टा सेयं **कुण्डरत्नावली** सम्प्रति प्रकाश्यते। किन्नामेदं कुण्डम्? तत्रोच्यते—कुण्ड्यते रक्ष्यते जलं वह्निर्वा यत्र तत्कुण्डम्। 'कुडि रक्षणे' इति धातोः कुण्डशब्दो निष्पद्यते। यज्ञकुण्डमिदं विविधाकृति भवति। तद्यथा—वृत्तार्धकुण्डम्, त्र्यस्रकुण्डम्, चतुरस्रकुण्डम्, षडस्रकुण्डम्, अष्टास्रकुण्डम् इति। एवमेव विविधग्रहाणां विविधाकारकं कुण्डं भवति, यथा—राहोः शूर्पाकारकुण्डम्, शनेर्धनुराकारं कुण्डम्, केतोर्ध्वजाकारं कुण्डम्, गुरोर्दीर्घचतुरस्रं कुण्डम्, बुधस्य बाणाकारं कुण्डम् इति। एवमेव स्थण्डिल-मण्डप-ध्वज-तोरण-यज्ञदारु-वेदी-द्वारादिविषया ग्रन्थेऽस्मिन् व्याख्याता-स्तिष्ठन्ति।

'कुण्डरत्नावली येन कण्ठे धृता याज्ञिकानां समाजे स पूज्योत्तमः' (कुण्ड. १६३) इति प्रशंसामाचरता रामचन्द्रदीक्षितवर्येण स्वोपज्ञरचनाया गुणवत्ता प्रदर्शिता। तत्र न कापि संशीतिर्यतो हि वैदिकयज्ञप्रक्रियायाः सम्यक् साङ्गोपाङ्गविवेचनकर्तारो ग्रन्थाः कृच्छ्रेण समवाप्यन्ते। निष्फलस्तिष्ठत्यविधिर्यज्ञ इत्यपि ध्रुवम्। एवं हि यज्ञसंविधानकव्याख्यानपर्यवसितग्रन्थस्य महत्त्वमस्माभिरङ्गीकरणीयमेव।

डॉ. मितालीदेवनाम्नी विदुषी स्वोपज्ञ-प्रास्ताविक-भूमिका-समन्वितं ग्रन्थमिमं महताऽध्यवसायेन सम्पादितवती। एतदर्थमसावस्माकं समेषां शुभाशिषं धन्यवादवचनञ्चार्हति। ततश्चास्मद्विश्वविद्यालयीयप्रकाशन-संस्थाननिदेशका धन्यधन्या **डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठि**महाभागाश्चापि ससहाया अभिनन्द्यन्ते कृतिमिमां त्वरया प्रकाशयितुम्। मन्ये, ग्रन्थेनानेन वेदाध्वरसम्पूर्तिपरायणानां याज्ञिकानां महत्कल्याणं भविष्यत्यन्येषाञ्चापि मखरहस्यजिज्ञासूनामुत्कण्ठाविनोदो भविता।

वाराणसी
गणतन्त्रदिवसः,
२००४ ई.।

सप्रणयम्
[signature]
कुलपतिः
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य



डॉ. मुरली मनोहर जोशी
DR. MURLI MANOHAR JOSHI

मानव संसाधन विकास मंत्री
भारत
नई दिल्ली-110001
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
INDIA
NEW DELHI-110001

सन्देश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि डॉ. मिताली देव द्वारा, श्री रामचन्द्र दीक्षित विरचित (रचनाकाल शक 1790) हस्तलिखित दुर्लभ पाण्डुग्रन्थ का संस्कृत भाषा में प्रस्तावना, भूमिका एवं मौलिक व्याख्या सहित सम्पादन किया गया है एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रकाशन संस्थान द्वारा इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

मैं डॉ. देव को इस ग्रन्थ के सफल प्रकाशन के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थ विद्वानों में सम्मान प्राप्त करेगा।

(मुरली मनोहर जोशी)

डॉ. मिताली देव,
एच-9, एच.आई.जी. फ्लैट्स,
विकास प्राधिकरण
रवीन्द्रपुरी एक्सटेंशन,
वाराणसी-221005

विष्णुकान्त शास्त्री
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश



राज भवन
लखनऊ-227132

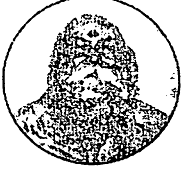
सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा शीघ्र ही डॉ. मिताली देव द्वारा सम्पादित 'कुण्डरत्नावली' (मंजूषा टीका सहित) का प्रकाशन किया जा रहा है।

सनातन भारतीय परम्परा में पूजा-उपासना के अन्तर्गत यज्ञादि अनुष्ठानों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यज्ञों के विधि-विधान के सम्यक् प्रचार-प्रसार द्वारा इस दुर्लभ ज्ञान का संरक्षण किया जाना अति आवश्यक है। डॉ. मिताली देव की पुस्तक 'कुण्डरत्नावली' में पैंसठ प्रकार के विविध यज्ञकुण्डों की निर्माण विधि को सचित्र एवं ज्यामितीय रीति से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में समाहित आलोचनात्मक भूमिका, प्रस्तावना तथा अनेक पाद टिप्पणियाँ भी कृति को पठनीय बनाती हैं। मुझे विश्वास है कि यह कृति विद्वत्समाज को यज्ञ-कुण्डों की निर्माणविधि से सम्बन्धित प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराने में सहायक होगी।

मैं 'कुण्डरत्नावली' के सम्पादन हेतु सम्पादिका डॉ. मिताली देव को बधाई देते हुए इसके सफल प्रकाशन हेतु अपनी मंगलकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(विष्णुकान्त शास्त्री)



अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद
ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रेषक :
स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती
शिष्य एवं प्रतिनिधि पू. शंकराचार्य जी महाराज

श्रीविद्यामठ, केदारघाट, वाराणसी-1
दूरभाष : 0542-2460303,2450520
E-mail : avimuktaswamt@hotmail.com
URL : www.shankaaracharya.org

शुभाशीर्वादाः

डॉ. मिताली देव इत्याख्याया विदुष्याः सटीक-कुण्डरत्नावलीग्रन्थः सम्पाद्यमानायामवस्थायां स्थालीपुलाकन्यायेनावलोकितः। बहवः कर्मकाण्डग्रन्थाः सम्प्रत्यनुपलब्धाः जाताः। तेषां शुद्धं प्रकाशनमपेक्ष्यते।

श्रीमती मिताली एतादृशे कार्ये संलग्ना वर्तते। अस्याः सत्प्रयासाः सफलाः सन्त्विति पूजितपूज्यपादानां ज्योतिर्द्वारकेति उभयपीठाधीश्वराणां जगद्गुरु-शङ्कराचार्यवर्याणां स्वामिस्वरूपानन्दसरस्वतीमहाराजानां शुभाशीर्वादाः

श्रीचरणानामाज्ञया

अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

भाद्रशुक्लचतुर्दशी
2060 वि.सं.

(स्वामी अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती)



साहित्य अमृत
साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक

सम्पादक
विद्यानिवास मिश्र
सदस्य, राज्य सभा
सदस्य, प्रसार भारती बोर्ड
न्यासी, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

पता : 1/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
फोन : 3253233
फैक्स : 3253233
E-mail : Sahityaamrit@mdranabooks.com

डॉ. मिताली देव ने 'कुण्डरत्नावली' पाण्डुलिपि का विधिवत् सम्पादन करके मंजूषा टीका के साथ प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ रामचन्द्र दीक्षित द्वारा रचित है। इस ग्रन्थ की रचना 18वीं शक शताब्दी के प्रारम्भ में भाद्रपद एकादशी की श्रीकाशी विश्वेश्वर के सन्निधि में हुई। यह ग्रन्थ यज्ञ-कुण्डों के निर्माणविधि का विस्तृत व्याख्या है और इसमें प्राचीन ज्यामिति का निदर्शन मिलता है। इस ग्रन्थ के साथ मञ्जूषा टीका भी सम्पादित हुई है, जो अर्थ को विवृत करती है। श्रीमती मिताली देव सेन ने सम्पादन का कार्य बड़ा परिश्रम से किया है और यह विद्या आज लुप्तप्राय है। है भी तो केवल कुछ-कुछ अनुश्रुति में है। इस ग्रन्थ के द्वारा शास्त्रविधि का परिज्ञान होगा और वैदिक विद्वानों ने किस प्रकार विराट् ब्रह्माण्ड को सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में स्थापित किया है। कुण्डनिर्माण का प्रयोजन केवल हवन के लिए एक गर्त बनाना ही नहीं, इसका प्रयोजन उसके सभी कोणों के बीच में सम्बन्ध को समझ कर उसी प्रकार का सम्बन्ध मनुष्य और देवता के बीच में भी समझना है। इसका बीज शुल्ब सूत्रों में है, लेकिन उसका अध्ययन अध्यापन बहुत कम हो रहा है। सूत्रों को समझना बहुत आसान नहीं है। श्री रामचन्द्र दीक्षित के इस ग्रन्थ में बहुत से उलझे हुए प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा।

मैं श्रीमती मिताली देव सेन को इस उत्तम काम के लिए आशीर्वाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे निरन्तर संस्कृत विद्या के अनुसन्धान में तत्पर रहेंगी।

विद्यानिवास मिश्र

(विद्यानिवास मिश्र)

Res. : 0542-2369334
Off : 0542-2307424

डॉ. सुदर्शन लाल जैन
एम.ए., पी.एच.डी., आचार्य
(साहित्य, जैनदर्शन एवं प्राकृत)
प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष
संस्कृत-विभाग, कला-संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005, (भारत)
कार्याध्यक्षः श्री अ.भा.जैन विद्वत्परिषद्



Dr. Sudarshan Lal Jain
M.A.Ph.D., Āditya (Sāhitya jaina Darsana Evaṃ Prākita)
Professor and Head
Department of Sanskrit, Faculty of Arts
Banaras Hindu University
Varanasi-221005 (INDIA)
E-mail : Sljain@banaras.ernet.in

आशीर्वचनम् (शुभाशंसा)

मीमांसाशास्त्रेषु 'यागादिरेव धर्मः' प्रतिपादितः। यतः पुरुषार्थचतुष्टयेषु धर्मपुरुषार्थ एव ऐहिकामुष्मिकफलसिद्धिप्रदः। तत्रावश्यकमङ्गोपाङ्गादिसहित-यज्ञादीनां क्रियमाणेऽपि हवनकुण्डनिर्माणदोषाद् यज्ञो यजमानविनाशकृदपि भवति, यथा श्येनयागः परमार्थतोऽनर्थकृद्भवति। तस्माद् होमार्थमग्न्याधारे सम्यग् निर्मितकुण्डे एव हविःद्रव्यं हवनीयम्, तदा एव अपूर्वोत्पत्तिर्भवति।

कुण्डते रक्ष्यते इति कुण्डशब्दस्य व्युत्पत्तिः। अतः कुण्डविषयकं ज्ञानमतीवावश्यकम्। अद्य एतद्विषयज्ञानधौरेयाः कनिष्ठिकाधिष्ठिताः। वास्तुशास्त्रदृष्ट्याऽपि कुण्डनिर्माणस्य वैज्ञानिकं महत्त्वं वर्तते। कुण्डरत्नावल्यां चतुरस्रादिकुण्डानामुद्धारक्रमो निरूपितः। अष्टादशशताब्द्यां श्रीरामचन्द्रदीक्षितविरचिता 'कुण्डरत्नावली' मञ्जूषाटीकासहिता पाण्डुलिपिमधिकृत्यान्येषां गुरूणामाशीर्वादप्रभावेण सम्यक् सम्पादिता डॉ. श्रीमती-मिताली-देव्या। पाण्डुलिप्याः सम्पादनकार्यमतीव दुरूहम्।

अतोऽहं तस्या अभ्युदयार्थं कामये।

सुदर्शन लाल जैन

(सुदर्शनलालजैनः)

प्रास्ताविकम्

काशीश्वरं सुरगुरुं करुणैकमूर्तिं
सच्चित्सुखं सकलमङ्गलमूलमेकम्।
सर्गादिहेतुमभयं शिवमद्वितीयं
वन्दे गिरीन्द्रतनयाञ्चितविग्रहं स्वम्।।१।।

पितामहं धर्मपरायणं तं
रमेशचन्द्रं खलु चन्द्रतुल्यम्।
अनुग्रहाद् यस्य निबन्धपारं
अगामहं नौमि भृशं विनम्रा।।२।।

अरूपदेवं पितरं महान्तं
महाशयं नौमि विशुभ्रकीर्तिम्।
तदङ्घ्रिसेवानिरतां दयाब्धिं
अम्बाञ्च देवीमरुणां सतीं ताम्।।३।।

नत्वा गुरुं ज्ञानगुणैकसिन्धुं
वाग्देवतां विघ्नहरं गणेशम्।
विद्वत्प्रसादाप्तमतिर्मिताली
करोत्यपूर्वं मखकुण्डबोधम्।।४।।

पृथ्वीराजपतिव्रता श्रुतिमती प्रज्ञावती श्रीमती
श्रौतस्मार्तसमस्तयज्ञविधितः श्रीकुण्डरत्नावलीम्।
मञ्जूषासहितां करोति विवृतां प्रामाणिकीं सम्मतां
मिताली भवताच्चिरं बुधजनप्रीतिप्रदा सा सदा।।५।।

सच्चित्रं यज्ञकुण्डानां विविधानां विधानतः।
निर्माणविधयो ग्रन्थे सम्यगत्र विवेचिताः।।६।।
याज्ञिकानां प्रविदुषां वेदमार्गानुयायिनाम्।
उपकारकरो ग्रन्थो मया विस्तरशः कृतः।।७।।

भारतीयसंस्कृतेः प्राणभूतेषु वेदेषु पुराणेषु च यज्ञानामपारं माहात्म्यं निरूपितमस्ति। यज्ञैः विश्वात्मानं सर्वेश्वरं सन्तर्पयन्ति कर्मकाण्डतत्पराः याज्ञिकाः। **'देवा यज्ञमतन्वत'** (यजु. १९/१२) **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त.'** (यजु. १९/१६) **'यज्ञोऽध्ययनं दानम्'** (छान्दोग्य.) इत्यादिश्रुतिभिः **'अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक्'** (मनु. ३/७६) **'इज्याध्ययनदानानि.'** (याज्ञ. १/५/११८) इत्यादिस्मृतिभिश्च यज्ञः धर्मस्य सर्वश्रेष्ठं प्रथममङ्गं स्वीकृतम्। यज्ञपुरुषेण भगवता श्रीकृष्णेन गीतायामुद्घोषितम्—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

(भगवद्गीता, ३/१०)

तत्रैव गीतायां विवेचितं यद् यज्ञावशिष्टान्नभक्षणेन मनुष्याः सर्वविधपापात् मुच्यन्ते। ये जना आत्मकारणात् पचन्ति, ते पापाः पापमेव भुञ्जते। यथोक्तम्—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

मत्स्यपुराणे यज्ञस्य लक्षणं कथितम्। यथा—

देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते।।

श्रौतसूत्रकारैरपि **'अथ यज्ञं व्याख्यास्यामः'** इत्युक्त्वा **'द्रव्यदेवतात्यागः'** परिभाषयानया द्रव्यात्मकं देवतात्मकं त्यागक्रियात्मकञ्च त्रिविधं यज्ञस्य स्वरूपं निर्धारितम्। यदाग्निमुखेन देवेभ्यो हविरूपवस्तु प्रदीयते, तत्रानेकेषामुपकरणानामुपयोगो भवति तत्र कुण्डमपि एकमावश्यकमङ्गम्।

कुण्ड्यते रक्ष्यते जलं वह्निर्वा, तत्कुण्डम्। कुडि रक्षणे आधारे चेति धातो: कुण्डशब्दो निष्पद्यते। जलाधारे जलाशयेऽपि कुण्डशब्द: प्रयुज्यते, यथा—अगस्त्यकुण्डम्, सूर्यकुण्डम्, सप्तर्षिकुण्डञ्चेति। होमार्थमग्न्याधारे कुण्डशब्दस्य प्रयोगो भवति। यज्ञे कुण्डस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। न्यूनाधिकप्रमाणं कुण्डं यजमानस्य विनाशकृद्भवति। तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैव शुभमिच्छता कुण्डं करणीयम्। यथोक्तं वासिष्ठसंहितायाम्—

अनेकदोषदं कुण्डमत्र न्यूनाधिकं यदि।
तस्मात्सम्यक्परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छता।। इति।

क्रियासारेऽपि—

न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुण्डं कुर्युरमेखलम्।
शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत्।। इति।

कुण्डस्य महत्त्वं प्रतिपादयताऽऽचार्येण श्रीरामचन्द्रदीक्षितेन कुण्डरत्नावलीति ग्रन्थ: प्रणिनाय। तत्रानेकविधानां कुण्डानां स्वरूपं सुविस्तृतं निरूपितम्। कुण्डरत्नावलीं प्रशंसन् कथयति यद् येन पुरुषेणेयं कुण्डरत्नावली कण्ठे धारिता, स याज्ञिकसभायां पूज्येषूत्तम: स्यात्। कुण्डशास्त्रे तस्य समीचीना मति: गतिश्च भवति। यथा तेनैवोक्तम्—

कुण्डरत्नावली येन कण्ठे धृता
याज्ञिकानां समाजे स पूज्योत्तमः।
कुण्डशास्त्रे मणौ तस्य सूच्या इव
स्याद्गतिः सुन्दरा मण्डपादावपि।।

(कुण्ड., श्लो. १६३)

कुण्डरत्नावलीमहत्त्वम्

ग्रन्थेऽस्मिन् सर्वत्र यज्ञीयकुण्डानां विवरणमवलोक्यते। यज्ञे कुण्डानां विधानं विहितमस्ति, विषयोऽयं प्राय: सर्वे विद्वांसो जानन्ति एव नात्र संशय:। यज्ञस्य मानवजीवनेन सह घनिष्ठ: सम्बन्धोऽस्ति। यज्ञेनैव जीवनस्य सञ्चालनं भवति। यथा गीताब्रह्मसूत्रादिषु ग्रन्थेषु निरूपितमस्ति। यथोक्तं व्यासेन

दितिलोके श्रद्धासमन्वितयाहुत्या मेघः समुत्पन्नो भवति, मेघाद् वृष्टिः, वृष्टेः अन्नानि, अन्नेभ्यो वीर्यं, वीर्याज्जीवः। एवं यज्ञस्य साक्षात् सम्बन्धो जीवनेन सह वर्तते। यथोक्तम्—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। (गीता. ३/१४)

यतो हि पुरा देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त इति शाब्दं प्रमाणमधिकृत्यैव कुण्डरत्नावल्यां विविधकुण्डानां विवरणं मिलति। तत्र प्रकृतेऽस्मिन् ग्रन्थे कुण्डमण्डपः कीदृशः स्यादिति विवेकः सम्यक् प्रदत्तोऽस्ति। कुण्डमण्डपस्य विस्तारविषये तस्य दीर्घता पीनता चापि निर्दिष्टास्ति। यतो हि कुण्डसिद्धिः कुण्डमण्डपविवेकं विना कथमपि भवितुं नार्हति। अतस्तज्ज्ञानं समधिकमपेक्षितमस्ति।

फललाभाय एव यज्ञयागादीनां वैज्ञानिकं विधानं प्राचीनैर्विद्वद्वरेण्यैर्विहितम्। अत एव कस्मिन् यज्ञे कति कुण्डानां कस्यां दिशि निर्माणं स्यादिति विषयस्य ग्रन्थेऽत्र निरूपणं द्रष्टव्यमस्ति। इदं कस्माद् विहितं ग्रन्थकारेणात्र इति प्रश्ने भगवानेव उत्तरयति भगवद्गीतायाम्। एवं यज्ञानां कुण्डमण्डपेन सम्बन्धोऽस्ति, कुण्डानां च विहितयज्ञस्य फलेन इति सर्वं विषयमधिकृत्य 'कुण्डरत्नावली' इति ग्रन्थस्य आधुनिके युगे समधिकं महत्त्वं वर्तते। उक्तविषयाणां सम्पादनभूमिकायां सविस्तरं वर्णनं कृतमस्ति यद्धि बृहद्ज्ञानाय अपेक्षितमस्ति।

कुण्डरत्नावलेः प्रणेता

कुण्डरत्नावलीयं जड्योपनामकश्रीकृष्णदीक्षितस्य बाबूदीक्षितापरनामधेयस्य सूनुना श्रीमद्रामचन्द्रदीक्षितेन विरचिता। इयं मञ्जूषाटीकया स्वोपज्ञया विभूषिता। अस्या रचनाकालो नवत्युत्तरसप्तदशशततमः शालिवाहनशकोऽस्ति। यतो हि तस्मिन् शाके भाद्रपदमासस्य कृष्णपक्षस्यैकादश्यां तिथौ समाप्तिं प्राप्तेयं कुण्डरत्नावली श्रीविश्वेश्वरस्य कण्ठे अर्पिता तेन विदुषा। यथा तेनैवोक्तम्—

खनन्दमुनिभूशाके भाद्रकृष्णे शिवे तिथौ।
समापिता चार्पिता च कण्ठे विश्वेश्वरस्य सा।। (कुण्ड., श्लो. १६५)

श्रीरामचन्द्रदीक्षितस्य जन्म सुविस्तृते भारद्वाजकुलेऽभवत्। तस्य वृद्ध-प्रपितामहो विट्ठलनामासीत्, प्रपितामहश्च विश्वनाथदीक्षितः श्रौतस्मार्तकर्मभिः सुरेन्द्रान् अप्रीणयत्, तस्य पुत्रः कान्तिमान् भास्कराख्यो ग्रन्थकर्तुः पितामहः। विदुषां मुकुटमणिः जडोपनामा श्रीकृष्णदीक्षितस्तस्य पिता। ग्रन्थसम्पूर्तौ स्वपूर्वपुरुषान् वर्णयता तेनैवोक्तम्—

भारद्वाजान्ववाये महति समभवद्वैष्ठलिर्विश्वनाथोऽ-
पीष्टापूर्तौ सुरेन्द्रान् प्रतिदिनमिह योऽप्रीणयत्तस्य पुत्रः।
भास्वांश्छ्रीभास्करो वै तदनु समुदितस्तत्सुतोऽभूद्वरिष्ठो
जड्योपाह्वस्तु विद्वन्मुकुटमणिरसौ दीक्षितः कृष्णशर्मा।।

(कुण्ड., श्लो. १६१)

श्रीरामचन्द्रदीक्षितो वेदशास्त्रसिद्धान्तपारगात् श्रीवंशीधरनाम्नो गुरोः व्याकरणादिशास्त्रान् अधीत्य सर्वशास्त्रपारगामित्वमभजत्। स्वपितुः श्रीकृष्णदीक्षिताद् वेदशास्त्रस्याध्ययनं कृत्वा कर्मकाण्डेऽतिनैपुण्यं प्राप्तवान्। सर्वविधयज्ञानां विषये तस्य ज्ञानमतिप्रशंसनीयमासीत्। कुण्डरत्नावली-ग्रन्थस्यावलोकनेन तस्य यज्ञीयज्ञानं पुष्णाति। तस्य सर्वशास्त्रज्ञतायाः पुष्टिः ग्रन्थेनानेन भवति। यतो हि तीक्ष्णमतिवेदनीयं यज्ञीयं ज्ञानं ललितविन्यासपूर्णविविधछन्दोनिर्मितश्लोकैर्विवेचितं दीक्षितमहोदयेन।

अनुमीयते यद् दीक्षितमहोदयस्यान्येऽपि ग्रन्था आसन्; परन्तु सम्प्रति कुण्डरत्नावलीग्रन्थेनैव तस्य कीर्तिर्जीवति। यज्ञीयकुण्डविषये स्वविमलमत्या सम्यग् विवेचनं कृत्वा दीक्षितो वैदिकसमाजस्य महदुपकारं कृतवानित्यत्र नास्ति सन्देहलेशः। अत्र लघुकाये ग्रन्थे कुण्डविषयकं समग्रं ज्ञानं प्रत्यपादि। तत्रावशिष्टं विषयमपि स्वोपज्ञया मञ्जूषया टीकया टीकितवान्। कुण्डरत्नावलीविषये सः स्वयमेव कथयति यद् इयं कुण्डरत्नावली येन पुरुषेण स्वकण्ठे धृता, स याज्ञिकानां समाजे पूज्येषूत्तमो भवति। पुनश्च कुण्डशास्त्रे तस्य समीचीना गतिर्भवति। यथोक्तशब्देनावलोकयन्तु सुधियः—

कुण्डरत्नावली येन कण्ठे धृता
याज्ञिकानां समाजे स पूज्योत्तमः।
कुण्डशास्त्रे मणौ तस्य सूच्या इव
स्याद्गतिः सुन्दरा मण्डपादावपि।।

(कुण्ड., श्लो. १६३)

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य विश्वविश्रुते सरस्वती-भवनपुस्तकालये लक्षाधिकाहस्तलिखितपाण्डुलिपीनां सङ्ग्रहो विस्मयावहो विषयः विज्ञजनमानसमाश्चर्यचकितीकरोति। तत्र ताडपत्रेषु लिखिता ग्रन्था विविधविषयका अद्यापि विराजन्ते। तत्र विविधाः पाण्डुलिपयो दृष्टा मया। मीमांसाशास्त्रे ममानुरागः, तत्रावलोकनक्रमे कुण्डरत्नावलेः पाण्डुलिपिः मम दृष्टिमावर्ज्य सम्पादनाय प्रेरणास्त्रोतस्य हेतुरभवत्। वर्तमानपरिवेषे दुर्लभज्ञाननिगूहितानां पाण्डुलिपीनां सम्पादनमत्यावश्यकम्, येन सर्वे सरलतया तत्रस्थानां विषयाणां ज्ञानेन लाभान्विता भवेयुः। एवं मनसि दृढां धारणां विधाय ग्रन्थस्यास्योद्धाराय प्रवृत्ताऽभवम्। संस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतीनां सहृदयवर्य्याणां **प्रो. राजेन्द्रमिश्राणाम**नुग्रहेण तस्य छायाप्रतिर्लब्धा। एतदर्थं तेषां महानुभावानामाधमर्ण्यं बिभर्मि प्रणमामि च।

ग्रन्थस्यास्य सम्पादने मतिमास्थाय प्रथमं मूलपाठस्य संशोधनप्रकारो मया प्रदर्शितः, यत्र मूलपाठस्य भ्रामकतया विषयानुसारमर्थानुसारं च परिवर्तनं विधाय विषयसङ्गतिरपि प्रदर्शिताऽस्ति। पाठान्तरमनुस्मृत्य पाण्डुलिखित-पाठोऽपि प्रदत्तः। यत्र तत्र पाण्डुलिप्यक्षराणामप्यस्पष्टतया तत्र विधिपूर्वकं संशोधनं विधाय पाठकजनानां कृते सौविध्यं समुपस्थापितम्। विषयस्य व्याकरणादिकस्य च भ्रान्तिसमुपस्थिते गुरव एवैकमात्रं शरणम्। इत्थमत्र सम्पादने सम्यगालोच्यैव सर्वं सम्पादनकार्यं मया कृतमस्ति। एतादृशे महनीये कार्ये मन्दबुद्धिरहं साफल्यमधिगतं तत्र हेतुः पूज्यपादानां गुरुवर्य्याणामहैतुकी दयैव। तस्मात्तेषां चरणकमलेषु मामकीनां श्रद्धाकुसुमाञ्जलिमेवार्पयितुं क्षमा।

तत्र सर्वप्रथमं मातापित्रोः **प्रो.अरूपदेव-डॉ.अरुणादेव्योः** प्रातः-स्मरणीयेषु चरणकमलेषु नतमस्तकीभूय प्रणमामि निवेदयामि स्नेहेनाङ्गुलि-ग्राहपूर्वकमुच्चाध्ययनाय मां प्रेरितवन्तौ। परमपूज्यानां कीर्तिकाया-वशेषाणामाचार्यवर्य्याणां महामहोपाध्यायानां **पण्डितश्रीमण्डनमिश्रमहाशयानां** सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य पूर्वकुलपतीनां पादपद्मेषु प्रणामाञ्जलिं विनिवेद्य नैजां सम्पादितां कुण्डरत्नावलीं समर्प्यात्मानं कृतज्ञं मन्ये।

परमपूज्यानां गुरुवर्याणां कृतज्ञताज्ञापनक्रमे पीठद्वयाधीश्वराणां शङ्कराचार्याणां **श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीमहोदयानां**, भारतसर्वकारस्य मानव-संसाधनविकासमन्त्रालयस्य मन्त्रिपदभाजां मान्यमान्यानां **श्रीमुरलीमनोहरजोशी-**महाशयानाम्, प्राच्यप्रतीच्योभयविधविद्याविभूषितानां प्रशासनमर्मज्ञानामुत्तर-

प्रदेशस्य महामहिमराज्यपालानां **प्रो. विष्णुकान्तशास्त्रिमहामान्यानाम्,** पद्मभूषणविभूषितानां राज्यसभासदस्यानां विद्याश्रयभूतानां पण्डित-**श्रीविद्यानिवासमिश्रमहाभागानां** कृतज्ञतां शिरसोढ्वा तेषां पादपद्म-परागेणात्मानं विभूषयामि। क्रमेऽस्मिन् **प्रो. सुदर्शनलालजैनमहोदयानाम्,** उत्तरप्रदेशसंस्कृत-संस्थानस्याध्यक्षाणां **डॉ. नागेन्द्रपाण्डेयमहाभागानां** चरण-कमलेषु साभारं प्रणामाञ्जलिं विनिवेदयामि। एषां महापुरुषाणां प्रोत्साहनेन स्वकीयामूल्यपरामर्शणाशीर्वचोभिश्च सम्पादनकर्मणि साफल्यमधिगतम्।

महामनापण्डितमदनमोहनमालवीयस्य पुण्यपावनतपोभूमेः काशीहिन्दू-विश्वविद्यालयस्य कुलपतीनां **प्रो. पी. रामचन्द्ररावमहाशयानां** साभारं कार्तज्ञ्यं स्वीकरोमि, यैः मौलिकरचनायै स्वाध्यायपरायणतायै आशीर्वचनं समये समये प्राप्यते।

यज्ञकुण्डनिर्माणविषयकस्याद्यावध्यप्रकाशितस्य कुण्डरत्नावलीग्रन्थस्य प्रकाशने निरन्तरं नैजाशीर्वचोभिः सत्प्रेरणाभिश्च कृतार्थयतां प्रकाशनसंस्थानस्य यशस्विनिदेशकानां **डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठि**वर्य्याणामुपकारं स्मारं स्मारं तेषां पादपद्मेषु स्वकीयां प्रणामाञ्जलिं समर्प्यात्मानं धन्यं मन्ये। सम्पादनकर्मणि साहाय्येनोपकृतवन्तं प्रकाशनसंस्थानस्य सहायकसम्पादकं **डॉ. ददन-उपाध्यायमहाशयं** प्रति कृतज्ञतां विनिवेद्यान्यानपि प्रकाशनसंस्थाने कर्मरतान् प्रति धन्यवादं वितनोमि। ग्रन्थस्यास्याकर्षकमुद्रकाय श्रीजीकम्प्यूटर-प्रिण्टर्ससञ्चालकाय **श्री-अनूपनागरमहोदयाय** साधुवादं प्रददामि।

अन्ते सान्नपूर्णस्य श्रीकाशीविश्वनाथस्य चरणकमलेषु देवदीपावल्याः मङ्गलोत्सवे ग्रन्थमिमं समर्प्य भूयो भूयो नतिपरम्परां समर्पयामि।

वाराणसी
कार्तिकी पूर्णिमा
२०६० तमे वैक्रमाब्दे

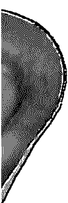
मिताली देव
एच.९, एच.आई.जी., फ्लैट्स
विकास प्राधिकरण
रवीन्द्रपुरी, एक्टेंसन, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

भूमिकाभागः

ग्रन्थभागः

●



भूमिका

यज्ञेन यज्ञमयजन्त पुरापि देवा
यज्ञार्थमेव निगमागमसम्प्रवृत्तिः।
ते कुण्डमण्डपविवेकभृतेन साध्या-
स्तस्मादयं परिकरोऽखिलकुण्डसिद्ध्यै।।

इह जगति निजनिजप्राक्तनप्रारब्धायत्तैर्भ्रमिमत्संसारचक्रपरिवर्तन-परवत्त्वेन सम्प्राप्तैर्वर्णिकैर्विशेषतश्च ब्राह्मणैर्निश्रेयससाधनीभूतपुरुषार्थ-चतुष्टयसिसाधयिषुभिरखिलजीवातुत्वेन धर्म एव समादरणीयः। धर्मव्यवस्थायां चैहिकामुष्मिकफलदत्वेन निर्णीताः श्रौतस्मार्तयज्ञा एव, धर्म-सेतुबन्धैकबद्धपरिकरैर्महर्षिभिरिति निर्विवादम्।

तत्र श्रौतकाण्डमग्न्याधानादिचयनान्तं स्वतन्त्रमेवैतरेयब्राह्मणाश्वलायन-श्रौतसूत्रादिषु शुक्लयजुर्वाजसनेयिसंहितायामप्यामूलान्तमखिलं व्यक्तं दरीदृश्यते। इष्टापूर्तादिकर्मकाण्डं श्रुतिनिर्दिष्टमपि विशेषतः स्मृत्याद्युपजीवित्वात्स्मार्तत्वेन जेगीयते। श्रौतस्मार्तोभयविधमपि यज्ञजातमुपक्रम्य श्रीमद्भगवद्गीतासु तत्र तत्र—

'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र', 'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तः', 'यज्ञो दानं तपश्चैव' 'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा', 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः', 'इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः' इत्यादि प्रमाणैर्यज्ञमेव प्रशशंस श्रीभगवान्।

तत्सिद्धं निखिलैर्निश्रेयसार्थिभिर्यज्ञा एवाचरणीया इति। यज्ञप्रवृत्तावपि तत्रावश्यकमङ्गोपाङ्गद्रव्यदेवताग्न्यायतनकुण्डवेदिकास्थण्डिलमण्डपाद्युपकारक-ज्ञानमतीवावश्यकम्। यदन्तरा न यज्ञादीनां प्रतिपत्तिः। यद्यपि कुण्डादि-

विषयप्रतिपादका निबन्धाः कुण्डार्कादयः प्राचीनाः सन्ति, तत्र च केचन वृत्तसाध्याः कतिपये चतुरस्रसाध्यास्तथापि तेषां दुरूहत्वात्सर्वै-र्विशेषतश्चाल्पधीबलैर्नहि ते यथावदाकलयितुं शक्याः सन्ति। यथावदन-वगमादङ्गवैकल्ये तावन्न ह्याचिरकर्मणां फलसिद्धिः किन्त्वनर्थापत्तिरेवापतेत्।

तथा च वसिष्ठसंहितायाम्—

अनेकदोषदं कुण्डमत्र न्यूनाधिकं यदि।
तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छता।। इति।

क्रियासारे—

न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुण्डं कुर्युरमेखलम्।
शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत्।। इति।

इत्याद्यनेकशो दोषा यथोक्तमानन्यूनाधिक्ये तत्र तत्र निर्दिष्टाः सन्ति। अतः सुकुमारमतीनामपि कुण्डमण्डपादिज्ञानायायं समुद्यम आवश्यकः। वृत्तचतुरस्रोभयविधयोर्वृत्तपद्धतिरेव ज्यायसीति महाशयैः कुण्डार्ककारादिभिः प्रतिपादितमदोनाम्नि ग्रन्थे। सैवेतद्ग्रन्थप्रणेत्रोरीकृता सत्सु नैकशः कुण्डप्रतिपादकग्रन्थेषु कुतोऽयं ग्रन्थप्रणय नाडम्बर इति न शक्यम्। किञ्चिज्ज्ञेष्वस्य चारितार्थ्यात्।

अत्र च सौलभ्याय सूत्रपातनिकादितत्तदाकृतिवृत्तानि कृत्वा तत्तदाकृत्यनुकूलरेखाविन्यासादियथावद्विहितमस्ति। सर्वा अप्याकृतयः साधकानामाकलनाय सूत्रविशिष्टाः पूर्वं विन्यस्यानन्तरं रेखामार्जनेन सिद्धाश्चेत्येवमुभयविधा अप्याकृतयस्तत्तदुदाहरणसमकालं महता परिश्रमेण निर्माय योजिताः सन्ति, यासामालोचनेनाल्पाभ्यासा अपि कुण्डमण्डपादिं विधातुं पारमेयुः।

अयं ग्रन्थः सव्याख्यः अतः तद्व्याख्याने सर्वं स्पष्टीकृतं तथापि प्रसङ्गतया पूर्वापरं कुण्डतन्त्रं विचार्य्य यथामतिरहं कुण्डशास्त्रोक्तविमर्शं

विदधामि। तत्र कुण्डपरिभाषा—पादस्याग्रे तिष्ठतीति स चासौ उद्वाहुर्यस्य कर्तुर्यजमानस्य शरलवः (पञ्चमो भागः) करः हस्तः, इषवः पञ्चेत्यादि संज्ञा लोकप्रसिद्धा, तस्य हस्तस्य सिद्धांशश्चतुर्विंशतितमो भागो अङ्गुलम्। तस्य गजांशोऽष्टमांशो यव उच्यते, यवस्य अष्टमांशो यूका तस्या नागांशोऽष्टमांशो लिक्षेत्यादिः। प्रकृतग्रन्थे एवमुत्तरोत्तरा अपि बालाग्रादिसंज्ञाः सन्ति।

पादाग्रतिष्ठदुद्वाहोः कर्त्तुः शरलवः करः।
तत्सिद्धांशोऽङ्गुलं तस्य गजांशो यव उच्यते।।८।।

यूका तस्याष्टमस्तस्या लिक्षा नागांशको मता।
कण्ठादौ चतुरस्रस्य जिनांशोऽङ्गुलमिष्यते।।९।।

कुण्डतन्त्रविमर्शः

कुण्डते रक्ष्यते जलं वह्निर्वा, कुडि रक्षणे आधारे, जलाधारे वृत्ताकारे च अत्सरुका कुण्डप्रतिरूपाश्चमसाः (कात्यायनश्रौतसूत्रे २४/४/४)

अत्सरुकाः अवृन्तकाः कुण्डप्रतिरूपा वृत्ताकाराः (कर्कसंहिता २/५/१) जलाशयेऽपि अगस्त्यकुण्डं सप्तर्षिकुण्डं सोमकुण्डं तथा होमार्थमग्न्याधारे अत्र प्रकृतविषयः।

वेदिपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नवपञ्च वा।
वेदास्राण्येव तानि स्युर्वर्त्तुलान्यथवा क्वाचित्।। (भविष्यपु. ६/१२८)

वेदास्राणि चतुरस्राणीत्यर्थः।

कुण्डानि चतुरस्राणि वृत्तनालाकृतीनि या।
नवपञ्चाथ वा चैकं कर्त्तव्यं लक्षणान्वितम्।।

नव कुण्डविधाने तु दिक्षु कुण्डाष्टके स्थिते।
नवमं कारयेत् कुण्डे पूर्वेशानदिगन्तरे।।

विधाने पञ्च कुण्डानामीशाने पञ्चमं भवेत्।

(आम्नायरहस्ये १/१४)

दिक्षु वदास्त्रवृत्तानि पञ्चमं त्वीशगोचरे।

(ज्ञानरत्नावली-प्रथमपटले)

यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्त्रमर्द्धचन्द्रश्च वृत्तं पद्मनिभं तथा।।

कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
कुण्डे यद्यन्तरञ्चैव सपादकरसम्मितम्।।

पीठवर्द्धन्तु यत्कुण्डं सुप्रमाणं सुगर्तकम्।

(नारदीयपुराणे ४/२८)

भुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्धारे विशेषतः।
सदा होमे तथा शान्तौ वृत्तं वरुणदिग्गतम्।।

(कुण्डपरिशिष्टे)

कुण्डार्केऽपि तत्तद्दिक्षु तत्तत्फलार्थं कुण्डोक्तिर्यथा—

ऐन्द्र्यां स्तम्भे चतुष्कोणमग्नौ भागे भगाकृति।
चन्द्रार्द्धं मरणे याम्ये नैर्ऋते हि त्रिकोणकम्।।

वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षडस्युच्चाटनेऽनिले।
उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्र्यामष्टास्त्रमुक्तिदम्।।

सर्वषु चैतेषु होमानुसारेण हस्तादिमानं क्षेत्रफलमुपकल्पनीयम्।

तथा च—

मुष्टिमानं शतार्द्धे तु शतं चारत्निमात्रिकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुर्यात् कुण्डं करात्मकम्।।

द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम्।
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्।।
(भविष्य.पु. ८/१२)

मुष्टिमानं वद्धमुष्टिहस्तमात्रमित्यर्थः।

कुण्डरत्नावल्यां चतुरस्रादिकुण्डानामुद्धारक्रमोऽभिधीयते।

कृत्वा प्राक् सूत्रमर्द्धाङ्कं दक्षिणोत्तरमत्स्ययोः।
न्यस्य सूत्रं ततः कोणैरङ्कितैश्चतुरस्रकम्।।

पूर्वं केनाप्युपायेन प्राचीं निश्चित्य प्राक्पश्चिमायातां रेखामालिख्य तामर्द्धभागे लाञ्छयित्वा दक्षिणोत्तरदिशोर्मत्स्यद्वयं कुर्यात्—सूत्रोपरि सूत्रान्तरनिपातनात् स्वस्तिकमध्याकृतिः शिल्पशास्त्रेषु मत्स्य इत्युच्यते। मत्स्यद्वयनिष्पत्तिश्चात्रैवं कार्या, पूर्वोक्तरेखापरिमितस्य सूत्रस्यादिं तस्यैव रेखाया मूले निधाय तत्सूत्रान्तरं परिभ्राम्य वृत्तं रचयेत् तस्यैव रेखाया अपरप्रान्ते तस्यैव सूत्रस्यादिं निधाय तत्सूत्रान्तं परिभ्राम्य द्वितीयान्तं कुर्यात्, एवं वृत्तद्वये कृते दक्षिणोत्तरदिशोर्मत्स्यद्वयं निष्पद्यते। अथ मत्स्यद्वये पूर्वोक्तरेखालाञ्छने चैके सूत्रं निष्पात्य दक्षिणोत्तरायतां रेखां लिखेत्। एवं दिक्षु साधितासु विदिक् साधनार्थं कोणान् लाञ्छयेत्। तत्रायं प्रकारः—

पूर्वनिष्पन्ने रेखाप्रान्तचतुष्टयस्य प्रत्येकं पार्श्वद्वये चिकीर्षितपरिमाणस्यार्द्धमर्द्धं निधाय तत्सन्धौ कोणलाञ्छनानि कुर्यात्, ततः कोणलाञ्छनेषु सूत्रचतुष्टयनिपातनात् पूर्वदिक्ष्युदङ्मुखयोनिकं चतुरस्रं कुण्डं कुर्यात्। योन्याकारादीनामुद्धारश्चतुरस्रप्रकृतिकस्तु कामिकशास्त्रात्—

पञ्चमांशं पुरो न्यस्य मध्ये वेदांशमानतः।
भ्रमादश्वत्थपत्राभं कुण्डमाग्नेयरुच्यते।।

क्षेत्रस्य पञ्चमभागं पुरः प्राच्यां दिशि विन्यस्य मध्ये कोणसूत्रस्येति शेषः वेदांशः तुरीयांशः। भ्रमात्—सूत्रान्तरपरिभ्रमणेन अश्वत्थपत्राकारं कुण्डमाग्नेयदिशि कुर्यादिति।

कुण्डनिर्माणप्रकारः

पूर्वोक्तन्यायेन समचतुरस्त्रीकृतस्य क्षेत्रस्य पश्चिमरेखामध्यात् पूर्वरेखा—मध्यभेदिनीं क्षेत्रसूत्रपञ्चमांशाधिकां गर्भरेखामालिख्य नैऋत्यदेशे कोणसूत्रं तुरीयांशे लाञ्छयित्वा तल्लाञ्छनोपरि विन्यस्तादेः सूत्रस्य पूर्वोक्तगर्भरेखामूलविन्यस्तं प्रान्तं परिभ्राम्य बहिर्वृत्तार्द्धं निष्पाद्य वायव्यकोणेऽप्येवमेव वृत्तार्द्धं रचयेत्। ततो गर्भरेखाप्रान्ताद् वृत्तद्वयप्रान्तस्पर्शि सूत्रद्वयं निपात्य पीपलपत्राकारमाग्नेयदिश्युदङ्मुखयोनिकं योनिकुण्डं विदध्यात्।

चतुरस्त्रे ग्रहैर्भक्ते त्यक्ताद्यन्तौ तदंशकौ।
मध्यसप्तांशमाने तु कुण्डं खण्डेन्दुवत्क्रमात्।।

चतुरस्त्रे क्षेत्रे ग्रहैर्नवभिर्विभक्ते आद्यन्तौ त्यक्त्वा अवशिष्टसप्तमांशमानेन सूत्रभ्रामणात् खण्डेन्दुसदृशं कुण्डं कुर्य्यात्। अत्रैवं कृतिः—चतुरस्त्रं क्षेत्रं नवधा विभज्य तत्र प्रथमोऽन्तिमश्चेति भागद्वयं परिमृज्य अवशिष्टसप्त-भागादिमरेखागर्भदेशे सूत्रादिं निधाय तस्यैव भागसप्तकस्यान्तिमरेखागर्भदेशे सूत्रान्तं निवेश्य तत्सूत्रपरिभ्रामणेन प्रथमरेखातुल्यं विश्रान्तप्रान्तवृत्तार्द्धं विरचयेदिति ग्रन्थस्य निर्णयः। प्रथमरेखाप्रान्तद्वयमपि वृत्तार्द्धे संयोज्य दक्षिणदिगवस्थितमुत्तराशाभिमुखयोनिकं कुण्डं चन्द्रखण्डं विदध्यात्।

'त्रिभागवृद्धितो मत्स्यैस्त्रिभिर्नैशाचरं भवेत्' स्थानत्रये तृतीयांशत्रयं वृद्ध्या मत्स्यत्रयेण नैशाचरं नैर्ऋत्यादिक् सम्बन्धि कुण्डं कुर्यात्। पूर्वंयत्समचतुरस्त्रं क्षेत्रं निर्म्माय तत्तिरश्चीनपश्चिमरेखामध्यात् तिर्यगवस्थितं पूर्वरेखामध्यमेदिनीं क्षेत्रसूत्रं तृतीयभागाधिकां गर्भरेखामालिख्य पूर्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्रषष्ठीयभागादिकं कुर्यात् ततो गर्भरेखाप्रान्तात् पूर्वोक्तं पश्चिमरेखाप्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्रतृतीयभागाधिकं करणीयम्। ततो गर्भरेखाप्रान्तात् पूर्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयस्पर्शिसूत्रद्वयं

निपात्य नैर्ऋत्यदिशि पूर्वाभिमुखयोनिकं त्रिकोणं कुण्डमुत्पादयेत्। एवञ्च विधीयमाने स्थानत्रये तृतीयांशत्रयवृद्धिस्तत्रैव मत्स्यत्रयमपि निष्पद्यतेति।

कर्मार्द्धाष्टांशसंन्यासाद्वृत्तं कुण्डमिहोदितम्। कर्मसूत्रार्द्धस्य योऽष्टमांशस्तस्य संन्यासात् सम्यक् न्यासाद् वृत्तं कुण्डे स्यादिति।

अथ कुण्डरचनाप्रकारः

चतुरस्रे क्षेत्रे कोणात् कोणान्तरगामिनः सूत्रस्यार्द्धं कोणार्द्धशब्दवाच्यमष्टधा विभज्य यावानष्टमो भागस्तावन्तं भागं चतुर्दिक्षु बहिर्न्यसेत्। ततः क्षेत्रगर्भदेशे सूत्रादिं निधाय वहिःस्थिताष्टमभागविन्यस्तं तस्यैव सूत्रस्य प्रान्तं सर्वतः परिभ्राज्य पश्चिमदिशि पूर्वाभिमुखयोनिकं वृत्तकुण्डं करणीयम्। 'षड्भागवृद्धितो मत्स्यैश्चतुर्भिः स्यात् षडस्रकम्' क्षेत्रपार्श्वयोः प्रत्येकं षष्ठभागवृद्धं कृत्वा अवशिष्टदिशोर्मत्स्यचतुष्टयमुत्पाद्य सूत्रण्डकपातात् षडस्रकुण्डनिष्पत्तिरिति।

सम्प्रदायभेदे—समचतुरस्रक्षेत्रे षोढा विभज्य यावान् षष्ठो भागस्तावता मानेन क्षेत्रस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वे समन्ताद्वर्द्धयित्वा तदेव क्षेत्रमायतचतुरस्रं सम्पादनीयम्। अथानन्तरोक्तपार्श्वद्वयरेखास्पर्शिनी दक्षिणोत्तरायतां गर्भरेखां रचयेत्। ततः क्षेत्रमध्यादुत्तरपार्श्वरेखामध्याच्च पूर्वोक्तगर्भरेखार्द्धपरिमितमेकैकं सूत्रं निपात्य पूर्वेशानदिशोरन्तराले मत्स्यमुत्पाद्य तेनैव प्रकारेण पश्चिमवायव्ययोरन्तराले मत्स्यं कुर्यात्। अथ भूयोऽपि क्षेत्रमध्याद्दक्षिणपार्श्वरेखामध्याच्च प्रागुक्तगर्भरेखा प्रान्तद्वयात् लाञ्छनचतुष्टयस्पर्शि सूत्रचतुष्टयं निपातयेत्। एवं लाञ्छनानन्तरालस्थित-सूत्रद्वयेन सह सूत्रषट्कयोगाद्वायव्यदिशि प्राङ्मुखयोनिकं षट्कोणकुण्डं कुर्यादिति।

चतुरस्राष्टभागेन कर्णिका स्याद्द्विभागशः।
तद्बहिःस्तोकभागेन केसराणि प्रकल्पयेत् ।।

तृतीये दलमध्यानि तुरीये दलकोटयः।
भ्रामणात् पद्मदलं स्याद्दलाग्रं दर्शयेद्बहिः।।

चतुरस्रस्याष्टधा विभक्तस्य मध्ये अष्टभागेन कर्णिका स्यात्, कर्णिकाया बहिः परिधिस्थे द्वितीये अष्टमभागे विन्यासे केसराणि भवति। केसराद्बहिः परिधिस्थिते तृतीये अष्टमभागे विन्यासे दलमध्यानि कल्पयित्वा चतुर्थे दलकोटीं विधाय चतुरस्राद्बहिर्दलाग्राणि दर्शयेत्। अत्राप्यष्टमभागेनेति सम्बध्यते। विभागशः विभागे सर्वदिग्भागेष्विति ग्रन्थस्याभिप्रायः। भ्रामणात् सूत्रस्येति शेषः, एतच्च पद्मदलं सर्वत्र योजनीयम्। चतुरस्रं क्षेत्रं प्रागग्राभिरुदग्राभिश्च रेखाभिरष्टधा विभज्य मध्यदेशे लाञ्छयित्वा क्षेत्राद्बहिश्चतुर्दिक्षु समन्तादपरमष्टभागं विन्यसेत् सत्येवं लाञ्छनात् परितः प्रतिदिशं पञ्चपञ्चाष्टमभागावधिरेखा भवन्तीति। ततः पूर्वोक्तलाञ्छनोपरि विन्यस्तादेस्तत्तद्रेखाविन्यस्तप्रान्तस्य च सूत्रस्य परिभ्रामणात् पञ्चवृत्तानि सम्पाद्य वृत्तातिरिक्तरेखा परिमार्जयेत्।

वृत्तव्यासस्याऽष्टौ प्रकाराः

प्रथमे वृत्ते कर्णिका द्वितीये केसराणि तृतीये दलमध्यानि चतुर्थे दलकोटयः पञ्चमे दलाग्रानिति कृत्वा अष्टदलं पूर्वाभिमुखयोनिकं पद्मकुण्डमुत्तरदिशि करणीयम्।

वृत्तकुण्डं समं चान्यदथवान्यप्रकारतः।
वृत्तकुण्डं पुरा कृत्वा चतुर्द्वाऽऽमेखलं भजेत्।।
उत्सेधञ्च तथा कृत्वा कर्णिका सार्द्धका भवेत्।
अवशिष्टं दलं वेददलमष्टदलं तु वा।।

(कुण्डार्कनिर्णये १८-१९)

यथा प्रतीच्यां दिशि वृत्तकुण्डमभिहितमिहापि तथैव कृत्वा तन्मध्ये यथाविभागं पद्मकुण्डं कुर्यादिति। अथवेत्यादिना ग्रन्थकृता तृतीयः प्रकार उच्यते

पूर्व वृत्तकुण्डमेव आमेखलं मेखलमवधीकृत्य अन्तश्चतुर्द्धा भजेत्। वृत्तकुण्डमध्ये अन्यस्यापि समभागस्य वृत्तत्रयस्य करणाच्चतुर्थक्षेत्रविभाग: कार्यमित्यर्थ:। तत: क्षेत्रमध्ये सार्द्धभागेन विस्तृता कर्णिका विधेया। उत्सेधञ्च तथा कृत्येति कर्णिकाया उच्छ्रयमपि सार्द्धभागेन कृत्वेत्यर्थ:? अवशिष्टेन सार्द्धभागद्वयेन केसरव्यतिरिक्तानि दलान्येव कुर्यात्। एतच्चतुर्दलमष्टदलं वा पद्मकुण्डं कुर्यात्।

द्वादशधा विभक्तस्य क्षेत्रस्य यावान् द्वादशो भागस्तावन्तं भागं चतुर्द्दिक्षु विन्यस्य तदन्तरे तस्य क्षेत्रस्य अन्तरे बहि: प्रदेशे ज्ञापकादनन्तरं शब्दोऽत्र बहिर्वचन: तत् प्रमाणेनेति तस्य बहिर्विन्यस्तद्वादशभागस्य परिमाणेन अपरं द्वितीयं तुर्यास्रं नयेत्। तुर्यास्रमिति स्वार्थिकोऽत्र पूरणप्रत्यय:। तस्य कर्णप्रमाणेनेति। कोणात् कोणान्तरस्पर्शिसूत्रं शिल्पशास्त्रेषु कर्ण इति प्रसिद्धम्। इह तु क्षेत्रगर्भादारभ्य चतुष्कोणगामिन: पृथगेव चत्वार: कर्ण इत्यभिप्रायेण कर्णार्द्धमपि कर्णशब्देनोक्तं तेनायमर्थ:। बाह्यस्थितचतुरस्रस्य गर्भदेशावधिर्यावान् कर्णस्तावता मानेन तद् भुजासु तस्य कर्णस्य भुजासु लाञ्छयेत्, अत्र बाह्यचतुरस्रसूत्राण्येव कर्णोभयपार्श्ववर्त्तीनि निजभुजाकारतया भुजशब्देनोच्यन्ते।

ग्रन्थकारस्य अयमाशय: बाह्यचतुरस्रबन्धिन्येकस्मिन् कोणे कर्णार्धपरिमितस्य सूत्रस्यादिं विधाय तत्सूत्रं चतुरस्ररेखोपरि प्रसार्य सूत्रप्रान्ते लाञ्छयेत्। एवं प्रतिकोणं सूत्रादिं निधाय प्रातिलोम्यानुलोम्येन सूत्रप्रसारणात् तत्तत्प्रान्ते लाञ्छयन् प्रतिदिशं लाञ्छनद्वयकरणात् दिक्चतुष्टयेन लाञ्छनेषु सूत्राष्टकनिपातनादष्टास्रं कुण्डं कुर्यात्। तत: निर्माणप्रकार: पूर्ववच्चतुरस्रीकृतस्य क्षेत्रस्य बहिश्चतुर्दिक्षु द्वादशतमं भागं विन्यस्य तत्परिमाणेन अपरं चतुरस्रं कुर्यात्। तत: तदीयकर्णार्द्धपरिमितस्य सूत्रस्य प्रतिकोणमादिं विधाय चतुरस्ररेखोपरि प्रसारणात् तत्तत्प्रान्तेषु लाञ्छयन्

दिक्चतुष्टयेन लाञ्छनाष्टकं कृत्वा तल्लाञ्छनोपरि सूत्राष्टकनिपातना-दैशानदिशि पूर्वाभिमुखयोनिकमष्टास्त्रं कुण्डं कुर्यात्।

कुण्डनिर्माणे दिङ्नियमः

दिङ्नियममन्तरेणैव तत्तत्कर्मोपयोगितया विज्ञानललितोपदिष्टं कुण्डं विविच्यते—

सप्तभागं बहिर्न्यस्य कृत्वा वृत्तमिह भ्रमात्।
चतुर्थभागन्यूनेन पूर्वक्षेत्रेण सम्मितैः।। (वि.ल. २/८)
धनुर्ज्याकृतिभिः पञ्चसूत्रैः पञ्चस्त्रकुण्डकम्।
होमे प्रशस्यते भूतशाकिनीग्रहनिग्रहे।।

चतुरस्त्रस्य क्षेत्रस्य बहिःप्रदेशे चतुर्दिक्षु, क्षेत्रं सप्तभागं विन्यसेत्। ततः क्षेत्रगर्भविन्यस्तादेः बाह्यस्थितसप्तमांशोपरि विन्यस्तप्रान्तस्य सूत्रस्य सर्वतः परिभ्रामणात् वृत्तं निष्पादयेत्। पूर्वक्षेत्रेणेति बहिस्थितवृत्तापेक्षया पूर्वक्षेत्रशब्देन आन्तरचतुरस्त्रक्षेत्रं, आन्तरचतुरस्त्रस्य यद्दैर्घ्यं ततः स्वकीयचतुर्थभागान्न्यूनं कृत्वा यन्मानं भवति तावता मानेन परिमितं सूत्रं निधाय तादृशानि पञ्चसूत्राणि बाह्यवृत्तस्यान्तर्विन्यस्य सूत्रसन्धौ कोणं करणीयम्। तानि च पञ्चसूत्राणि प्रत्येकं प्रान्तद्वयसंस्पृष्टत्वात् धनुर्ज्याकृतीनि धनुरारूढमौर्वीसदृशानि स्युः। ततः पञ्चसूत्रातिरिक्तं सर्वं परिमृज्य पञ्चास्त्रकुण्डं रचयेत्।

ग्रहनिग्रहादिहोमे ग्रहपीठाकारा कुण्डवृत्तव्यासाः प्रयोज्यम्। उत्कलिकानामनुक्तभुजानां व्यासाः चतुरस्त्रस्य क्षेत्रस्य दशमभागं चतुर्दिक्षु बहिर्विन्यस्य पूर्ववद् वृत्तं करणीयम्। पूर्वक्षेत्रं चतुःषष्ट्या विभज्य तेषां चतुःषष्टिसंख्यानां भागानां मध्ये त्रयस्त्रिंशत्संख्यैर्भागैः परिमितं सूत्रं कृत्वा तादृशानि सप्तसूत्राणि वृत्तस्यान्ते विन्यस्य सप्तास्त्रं कुण्डं कुर्यात्। तत्रापि

सूत्राणां धनुर्ज्याकरत्वं सूत्रसन्धौ कोणनिर्माणं सप्तसूत्रातिरिक्तं परिमार्जनञ्चेति पूर्ववदेव वेदितव्यम्।

एतच्च कुण्डमभिचारदोषोपशमनहोमेषु प्रयोज्यम्। तदुक्तं विश्वकर्मा 'यावन्मात्रः कुण्डविस्तार उक्तस्तावत् खातस्यापि मानं प्रदिष्टम्। यादृक् कुण्डस्याकृतिः सम्प्रदिष्टा तादृग्रूपं मेखलाया विदध्यात्।

'स्थापने सर्वकुण्डानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः'।

सर्वेषु चैतेषु प्रोक्तमाद्वृद्धाङ्गुलयवादिन्यूनमतिरिक्तं वा विधाय ध्वजायः साधनीयः। विस्तारे दैर्घ्यगुणिते अष्टभिर्विभक्ते यद्येकः परिशिष्यते तदा ध्वजाय इति।

खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः।
वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं भिन्नमेखले।।
मेखलरहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विनाकृते।।
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम्।

(कुण्डार्के ७४-७६)

'खाते हीने भवेद्रोगः' इत्यादिना खातादिलक्षणरहितस्य कुण्डस्या-निष्टफलत्वदर्शनादिदानीं ग्रन्थस्याभिप्रायः।

खातादीनां लक्षणम्

चतुर्विंशतिमं भागमङ्गुलं परिकल्प्य तु।
चतुर्विंशाङ्गुलं हस्तं कुण्डानां परिकल्पयेत्।।
हस्तमात्रं खनेत्तिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह।

(मोहचूडोत्तरशास्त्रे १/५)

सृष्टिमानं शतार्द्धेत्वित्यादिना प्रसिद्धेनैव हस्ताङ्गुलव्यवहारेण होमानुसारात् कुण्डमानमुक्तम्। इयन्तु खातादिमानं कथनार्थं ग्रन्थकृता परिभाषा क्रियते। चिकीर्षितकुण्डक्षेत्रं चतुर्विंशतिधा विभज्य यावान् चतुर्विंशतितमो भागस्तावत् परिमाणमङ्गुलं परिकल्प्य चतुर्विंशत्या अङ्गुलैर्हस्तं परिकल्पयेत्। ततस्तेन हस्तेन परिमितं सर्वकुण्डानां तिर्यक्खातमानं विधाय मेखलासहितस्य खातस्य तेनैव हस्तेन परिमितमूर्ध्वमानं विदध्यात्। प्रथमे उक्ते 'कुण्डं जिनाङ्गुलम् तिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह' जिनाङ्गुलं चतुर्विंशत्यङ्गुलम्। प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहेऽपि—'पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्'।

'व्यासात् खातः करः प्रोक्तो निम्नतिथ्यङ्गुलेन तु'।

(विश्वकर्मसंहितायाम्- १२)

तिथ्यङ्गुलानि पञ्चदशाङ्गुलानि खातस्य निम्नत्वम्। उन्नता सा नवाङ्गुलैरिति, वक्ष्यमाणत्वान्मेखलात्रयपक्षे नवाङ्गुलं प्रथममेखलयोत्सेध इत्युभयोश्चतुर्विंशत्यङ्गुलम्।

कण्ठमाननिर्णयः

खाताद्बाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः'। (कालोत्तरसंहिता) खातमेखलयोरन्तराले अङ्गुलमानेन कण्ठमोष्ठापरपर्यायं कुर्यात् (इति सारसमुच्चयः)

खाताद्बाह्याङ्गुलः कण्ठस्तद्बाह्ये मेखला क्रमात्।

मेखलालक्षणम्

क्षेत्रार्कांशेन तस्यौष्टः स्यात्तद्वेदर्त्तुभागतः।
मेखलापृथुतोच्छ्रामः कुण्डाकारा तु मेखला।।
सर्वेषान्तु प्रकर्तव्या मेखलैकात्र लाघवात्।

क्षेत्रस्य अर्कांशेन—द्वादशांशेन कुण्डस्यौष्टः कण्ठशब्दवाच्यः स्यात् तद्वेदभागतः कुण्डचतुर्थांशतो मेखलायाः पृथुता विस्तारः। तथाश्चतुर्भागतः षड्भागेन मेखलोच्छ्रायः कार्यः। पिङ्गलामतेऽपि।

खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत्।
मेखलैकाथवा तिस्रो भूतसंख्याथवा प्रिये।।

भूतसंख्याः—पञ्चसंख्या।

कण्ठाङ्गुलाद्बहिः कार्या मेखलैका षडङ्गुला।
चतुस्त्रिशदङ्गुला यद्वा तिस्रः सर्वत्र शोभनाः।।

यदा एका मेखला तदा सा विस्तारोत्सेधाभ्यां षडङ्गुला विधेया **'एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तारा मेखला मतेति' (पिङ्गलः)** यथा तु मेखलात्रयपक्षस्तदा क्रमेण चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलमानाः कर्तव्या मोहचूडोत्तरे 'मेखलात्रितयं कार्यं कोणरामयमाङ्गुलैः। कोणः चत्वारः, रामाः—त्रयः, यमौ द्वौ, तत्र सूर्यान्तिमा द्व्यङ्गुला। मध्यस्था त्र्यङ्गुलाः। कुण्डकण्ठसन्निहिता चतुरङ्गुला इति। सत्येवं प्रथममेखलायाः कुण्डकण्ठादारभ्य नवाङ्गुलमुत्सेधः स्यात्।

लक्षणसङ्ग्रहेऽपि—

प्रथमाष्टाङ्गुलाव्यासादुन्नता सा नवाङ्गुलैः।
मध्या तु त्र्यङ्गुला बाह्ये तृतीया तु यमाङ्गुला।।
मेखला पञ्च वा कार्याः षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकैः।

प्रथमा कुण्डसन्निहिता आन्तरोत्सेधनवाङ्गुला बाह्ये तु चतुररङ्गुलैव।

अब्ध्याङ्गुल—चतुरङ्गुला अब्धयः—चत्वारः, पक्षौ—द्वौ।

योनिलक्षणनिर्णयः

मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्द्धात्त्र्यंशविस्तृता।
अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा कार्याश्वत्थदलाकृतिः।
प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखा।
पूर्वमुखाः स्मृता शेषा यथाशोभं समन्विताः।।

मेखलाया गर्भदेशे कुण्डार्द्धदीर्घा कुण्डतृतीयांशविस्तृता योनिः कार्या अत्रौष्ठशब्देन योन्यग्रमुच्यते, कण्ठशब्देन च योनिमेखला अङ्गुष्ठशब्दः अङ्गुलपर्यायः। एकाङ्गुलपरिमाणेन योनेरग्रं मेखलाञ्च कुर्यादित्यर्थः। 'विस्तारोऽष्टाङ्गुलो योनेरग्रमङ्गुलसम्मितमिति पिङ्गलः, नारदीय— कुण्डत्र्यंश प्रविस्तारा योनिरुच्छ्र्यताङ्गुलम्। कुण्डार्द्धेन तु दीर्घा स्यात् कुण्डोष्ठी बोधिपत्रवत्। कुण्डोष्ठीति यथा कुण्डे द्वादशांशेन ओष्ठोविहित एवं योनेरपि द्वादशभागेन ओष्ठः कार्य इत्यर्थः। तथा कुण्डे प्रविष्ट ओष्ठो यस्याः, बोधिपत्रम्—अश्वत्थपत्रम्।

दोर्वात् सूर्याङ्गुला नाभिस्त्र्यंशो वा विस्तरेण तु।
एकाङ्गुलोच्छ्रीता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा।।
(त्रैलोक्यसारे २२)

कुम्भद्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता।
अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिस्तथा।।

दक्षस्था पूर्वयाम्ये तु वामस्था पश्चिमोत्तरे।
नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदलस्थिता।।

सूर्याङ्गुला—द्वादशाङ्गुलेत्यर्थः। त्र्यंशेनेति दैर्घ्यतृतीयांशन्यूनविस्तारा। एकेनाङ्गुलेनोच्छ्रिता तथा, एकेनाङ्गुलेन कुण्डमध्ये प्रविष्टा। कुम्भद्वयसमायुक्तेति पूर्वोक्ताग्नेयकुण्डस्य तुल्याकृतेर्योनेर्तुक्षदेशस्थितं वृत्तद्वयं गजकुम्भाकृतित्वात् कुम्भशब्देनोक्तम्। तेनात्र कुण्डस्थलाकृतिर्वटद्वयं मृतपिण्डद्वयं वा स्थाप्यमिति तदद्याहम्। अङ्गुष्ठमेखलेति एकाङ्गुलमानया

मेखलया परिवेष्टितेत्यर्थः। मध्ये त्विति यथा श्रुचि घृतधारणया विलं क्रियते तथा योनिमध्येऽपि विलं कर्त्तव्यम्। दक्षस्थेति, पूर्वाग्नेययाम्यकुण्डेषु दक्षिणभागे उत्तराभिमुखा योनिः कार्या नैर्ऋत्यादिकुण्डेषु तु पश्चिमभागे प्राङ्मुखा विधेया। नवम इति अष्टदिक्षु कुण्डाष्टकं विधाय पूर्वेशानदिशोरन्तराले यन्नवमं कुण्डं चतुर्दिक्षु वा कुण्डचतुष्टयं कृत्वा ईशानदिशि यत् पञ्चमं कुण्डं तयोरपि दक्षिणभागेऽपि योनिः कार्येत्यर्थः।

विशेषक्षेत्रफलादिकं कुण्डोद्योते उक्तं यथा शारदातिलके—

अष्टास्वाशासु रम्याणि कुण्डान्येतान्यनुक्रमात्।
चतुरस्रं योनिरर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रञ्च वर्त्तुलम्।
षडस्रं पङ्कजाकारं अष्टास्रान्तानि नामतः।
आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः।।

सिद्धान्तशेखरे—

पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरस्रकम्।
तदाचार्यं विनिर्दिष्टमिति अयमुत्तमपक्षः प्रतीयते।

पञ्चकुण्ड्येककुण्डनिवेशनम्

आशेषकुण्डैरिह पञ्चकुण्डी
चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे।
वेद्याः सपादेन करेण यद्वा
पदान्तरेणाखिलकुण्डसंस्था।।

आशा—दिक् तत्र कुण्डानि चतुरस्रवृत्तार्द्धवृत्तपद्मानि ईशानदिशि कुण्डं चतुरस्रं वृत्तं वा पञ्चकुण्डी निवेशनं स्यात् यदा चैकमेव कुण्डं तदा पश्चिमे उत्तरे वा ऐशान्यां वा स्यात्, परन्तु चतुरस्रं वेद्याः सकाशात्तानि सर्वाणि कुण्डानि सपादेन करेण त्रिंशदङ्गुलान्तरेण वा पादान्तरेण द्वादशाङ्गुलान्तरेण

वा वेदीपादान्तरेण वेद्याश्चतुर्थांशेन वा मण्डपे नवकोष्ठे कृतेऽष्टसु भागेषु मध्ये भवतीति व्याख्या नारदीये—

यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्रमर्द्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिभं तथा।।

चतुःकुण्डपक्षे खातो नास्तीति इत्युक्तं नारदीये—

पीठवद् वर्तयेत् कुण्डं सुप्रमाणमगर्तकम्।
कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।।

पञ्चमं कारयेत् कुण्डमीशदिग्गोचरं द्विजेति 'अयं मध्यमः पक्षः कैश्चित् पूर्वेशयोरिति लिखितं तदसत्, सोमशम्भौ—

'एवं वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां कारयेद्बुधः', आचार्या अपि 'अथवा दिशि कुण्डमुत्तरस्यां प्रविदध्याच्चतुरस्रमेकमेव' इयं कनिष्ठः पक्षः।

नवग्रहाधिकारे वसिष्ठसंहितायाम्—

कुण्डतन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम्।
वितस्तिद्वयखातं तत् कुण्डं तु चतुरङ्गुलम्।। इति।
वेदीपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि पञ्च च।। इति।

नारदीये—कुण्डवेद्यन्तरञ्चैव सपादकरसम्मितम्।

कैश्चित् त्रयोदशाङ्गुलमप्यन्तरमुक्तं तत्र मण्डपानुसारेण व्यवस्था।

अथ वर्णविशेषस्य स्त्रीणाञ्च कुण्डविशेषनिर्णयः

विप्राञ्छुत्यस्रं च वृत्तं च वृत्तार्द्धं त्र्यस्रं स्याद्वेदकोणानि वापि।

सर्वस्याहुर्वृत्तपाणि चान्ये योन्याकाराण्यङ्गनानां मतानि।

विप्रादारभ्य विप्रक्षत्रियविट्शूद्राणां चतुःकोणवृत्तवृत्तार्द्धकोणानि भवन्ति। अथवा विप्रादिवर्णेषु चतुःकोणानि वर्त्तुलानि वा सर्वाणि कुण्डानि

भवन्ति, यदा स्त्री यजमाना तदा योन्याकाराण्येव कुण्डानि भवन्तीति निर्णयः। शारदायाम्—

विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम्।।

चतुरस्त्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।

पञ्चरात्रे—'**सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्त्राणि वा सदा।**

सनत्कुमारः—**स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र! योन्याकाराणि कारयेत्।**

प्राच्यादिकुण्डेषु फलविशेषनिर्णयः

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छिदे।
वृष्टिमारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके।।

प्राच्यादिकुण्डेष्वष्टस्वष्टौ फलानि स्युः।

शारदायाम्—

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्त्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेश्वाभं शुभप्रदम्।।

शत्रुक्षयकरं त्र्यस्त्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
च्छेदमारणयोः षष्ठं षडस्त्रं पद्मसन्निभम्।

वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्त्रमीरितम्।।

कामिके तु फलान्तरम्—

ऐन्द्र्यास्तम्भे चतुष्कोणमग्नौ भोगे भगाकृति।
चन्द्रार्द्धं मारणे याम्ये द्वेषे त्र्यस्त्रं तु नैर्ऋते।।

वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षटस्त्रमुच्चाटनेऽनिले।
उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्र्यामष्टास्त्रं भुक्तिदम्।। इति।

होमसंख्यया कुण्डमाननिर्णयः

शतार्द्धे रत्निः स्याच्छतपरिमितेऽरत्निविततः,
सहस्रे हस्तः स्यादयुतहवने हस्तयुगलम्।
चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षट्करमिभैः ८
ककुभिर्वा १० कोणैर्नृपकमपि प्राहुरपरे।।

शतार्द्धमिते—पञ्चाशन्मिते होमे रत्निमितं कुण्डं, शतमिते अरत्निमितं सहस्रमिते होमे हस्तमितं दशसहस्रमिते द्विहस्तं, लक्षहोमे चतुर्हस्तमितं दशलक्षहोमे षड्ढस्तमितं, कोटिहोमे अष्टहस्तमितं दशहस्तमितं वा कुण्डमानम्।

केचित् षोडशकरमपि प्राहुरिति व्याख्यातं भविष्यपुराणे—

मुष्टिमानं शतार्द्धे तु शते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षमाने चतुःकरम्।।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते।।
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्।।

शारदायाम्—

दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि शस्यते।

स्कान्दे—

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुर्हस्तं समन्ततः।
योनिवक्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्।। इति।

इदं प्रायः स्थूलहव्यविषयम्।

केषाञ्चिन्मते कुण्डमानम्

लक्षैकवृद्ध्यादशलक्षकान्तं
करैकवृद्ध्या दशहस्तकञ्च।
कोण्यर्द्धदिग्विंशतिलक्षलक्ष-
दले मुनीवष्वर्तुकृशानुहस्तम्।।

लक्षस्यैकवृद्ध्या—दशलक्षकाणामन्तं समाप्तीकृत्यादशलक्षकान्तं एकलक्षमारभ्य लक्षवृद्ध्या दशलक्षपर्यन्तमिति करस्य एकवृद्ध्यादश-हस्तकं पर्यायीकृत्येत्यादशहस्तकं, एककरमारभ्य एककरवृद्ध्या दशहस्तं यावत्कुण्डं प्राहुरिति, कोटेरर्द्धे पञ्चाशल्लक्षे दशविंशतिलक्षे लक्षदले पञ्चाशत्सहस्रे क्रमात् सप्तपञ्चषट्त्रिकरं कुण्डमिति व्याख्या शारदायाम्—

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्द्धयेत्।।

सिद्धान्तशेखरे—

लक्षार्द्धे त्रिकरं कुण्डं लक्षहोमे चतुःकरम्।
कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमात्।।
षड्ढस्तं लक्षविंशत्यां कोट्यर्द्धे सप्तहस्तकम्।।

इदमेव कुण्डमानाङ्कामिकादिमतं सिद्धान्तशेखरशारदाहेमाद्रिप्रमुखैः प्राचीनैः राघवभट्टरामवाजपेयिकुण्डरत्नाकरकुण्डकौमुदीकुण्डरत्नावली-कारादिभिर्नवीनैश्च लिखितं कुत्रचिदन्यथापि कुण्डमानान्युक्तानि तानि तत्तत् प्रकरणवशात्तत्कर्मविशेषे द्रष्टव्यानि।

अथैकहस्ताद्दशहस्तान्तं यावत्कुण्डेषु भुजकोटिमानम्।

वेदाक्षोणियुगाग्नयः शशियुगान्यष्टाब्धयस्त्रोषवोऽ-
ष्टाक्षावह्निरसारसाङ्कमितानेत्रर्षयोऽक्षस्वराः।
अङ्गुल्योऽथ यवाः खमभ्रमिषवः खं पञ्चषट्सागराः
सप्ताभ्रं मुनयस्त्वमो निगदिता वेदास्त्रके बाहवः।।

(कुण्डरत्नाकरे १७८)

एकहस्ते कुण्डे चतुर्विंशत्यङ्गुलान्यायामविस्तारौ, द्विहस्ते चतुस्त्रिंशदङ्गुलानि। इमानि पादोनलिक्षाचतुष्टयन्यूनानि अल्पान्तरत्वात् पूर्णान्येव धृतानि। त्रिहस्ते एकचत्वारिंशदङ्गुलानि। चतुर्हस्ते अष्टचत्वारिंशदङ्गुलानि। पञ्चहस्ते पञ्चयवाधिकानि त्रिपञ्चाशदङ्गुलानि। षड्ढस्ते त्रिपदोनैकोनषष्टिः, सप्तहस्ते सार्द्धत्रिषष्टिः। अष्टहस्ते यवोना सप्तषष्टिः। नवहस्ते द्विसप्ततिः दशहस्ते यवोनाषट्सप्ततिरिति षोडशहस्ते षण्णवतिः चतुर्भुजे कुण्डे भुजा उक्ता इति व्याख्या।

अत्रोपपत्तिः एकहस्तस्य चतुर्विंशत्यङ्गुलात्मकस्य भुजकोटिघातः क्षेत्रफलं तच्च षट्सप्तत्यधिकपञ्चशती ५७६। एतत्पदमेकहस्तक्षेत्राङ्गुलानि चतुर्विंशतिः। एवं क्षेत्रफलस्य द्वयादिगुणस्य मूलं चतुस्त्रिंशद्यङ्गुलानि भवन्ति।

अथ योनिनिवेशननिर्णयः

कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिरैन्द्र्या
सौम्याग्रकास्यादितराणि पञ्च।
पश्चाद्भगानीन्द्रदिगग्रकाणि
योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे।।

ऐन्द्र्याः—प्राच्या आरभ्य कुण्डत्रयी चतुरस्त्रयोनिवृत्तार्द्धरूपा दक्षिणयोनिः स्यात्, उत्तराग्रा अर्थाद्धोता उदङ्मुखः। इतराणि पञ्च कुण्डानि त्र्यस्त्रिवृत्तषड्स्त्रिपद्माष्टास्त्राणि प्रत्यग्योनीति, अर्थाद्धोता प्राङ्मुखः, नवममपि कुण्डं दक्षिणयोन्युदग्रम्। योनिः कोणे योनिकुण्डे न कार्येति।

स्वायम्भुवे—

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी।
पूर्वमुखा स्थिताः शेषाः यथाशोभं व्यवस्थिताः।।

त्रैलोक्यसागरे—

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदलस्थिता।। इति।

अन्यत्र—

नार्पयेत् कुण्डकोणेषु योनिं तान्तन्त्रवित्तमः।
योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं विवर्जयेत्।।

सर्वेषां कुण्डानि प्रकृतिभूतं चतुरस्रं निर्णयः।

द्विघ्नव्यासं तूर्यचिह्नं ममाशं
सूत्रं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि।
दत्वाकर्षेत् कोणयोः पाशतुर्यं
स्यादेवं वा वेदकोणे समानम्।।

इष्टव्यासाद् द्विगुणितं व्यासं चतुर्थांशकृतचिह्नं सपाशं सूत्रं पूर्वपश्चिमस्थयोः शङ्कोर्दत्वा दक्षिणोत्तरसूत्रमध्ये यथा मध्यचिह्नं भवति तथा कोणयोः पाशश्चतुर्थांशे आकर्षेत्, एवमन्यतोऽपि। एवं कृते समचतुरस्रं स्यात्, इदमेव सर्वेषां कुण्डानां मूलमिति ग्रन्थकारस्याभिप्रायः।

चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेषु कारणमिति, अत्र समश्रुतौ तुल्यचतुर्भुजे च तथाऽऽयते तद्भुजकोटिघातः क्षेत्रफलं षट्सप्तत्यधिकपञ्चशती ५७६ एतावदेव योन्यादिकुण्डेषु एकहस्तेषु यथा क्षेत्रफलं सम्पद्यते तथा यतितव्यमिति।

योनिकुण्डनिर्णयः

क्षेत्रे जिनांशे तु पुरःसरांशान्
संवर्ध्य च स्वीयरदांश२२युक्तान्।
कर्णाङ्घ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डे
प्रत्यक्पुरोऽङ्काद्गुणतो भगाभम्।।

चतुरस्रे क्षेत्रे चतुर्विंशतिधा भक्ते सति पञ्चाशान् स्वीयद्वात्रिंशदंशयुक्तान् अग्रे संवर्द्ध्य ततश्चतुर्धा विभक्तस्य क्षेत्रस्य पश्चिमचतुरस्रद्वयमध्याङ्कात् कर्णसूत्रस्य चतुर्थांशेन प्रत्यक् पश्चिमभागे इन्दुखण्डे वृत्तादर्कद्वयं विद्वन् लिख। ततः पूर्वाङ्काद् दक्षिणोत्तरसंलग्नं वृत्तार्द्धं यावन्नीयमानगुणद्वयतो भगाकारं योनिकुण्डं स्यादिति व्याख्यायाः निर्णयः।

क्षेत्रफलानयननिर्णयः

अत्र क्षेत्रत्रयं पूर्वाङ्कादक्षिणोत्तरसूत्राग्रं यावन्नीयमानसूत्रद्वयं त्रिकोणमेकं, तथा दक्षिणोत्तरसूत्राद्यात्पूर्वापरसूत्रान्तं यावन्नीयमानसूत्रद्वयादपरं त्रिकोण-मुभयवृत्तार्द्धे मिलित्वा एकं वृत्तमिति तृतीयं क्षेत्रत्रयफलयोगे पूर्णफलम्, तत्र प्रथमस्य क्षेत्रफलं यथा अत्र लम्बः अङ्गुलानि ७ यव; यूका २, भूः २४ लम्बेन निघ्नं कुमुखैक्यखण्डमिति अत्र मुखाभावाद् भूमध्यमेव लम्बेन गुणितं सञ्जातं प्रथमं क्षेत्रफलम्, अङ्गुलानि २०५ यवाः ७ अथापरस्य लम्बः २ भूः सैव अत्रापि तयैवं रीत्या क्षेत्रफलं १४४। अथ वृत्तार्द्धयोरेकं वृत्तं तत्फलं यथा तत्र वृत्तव्यासः ६,७,४ व्यासस्य वर्गे भमवाग्निघ्ने सूक्ष्मं फलं पञ्चसहस्रभक्ते इति व्यासवर्गः।

इमानि कुण्डानि कादिग्रन्थविरुद्धानीत्यादरणीयानि। तानि वचनानि तु तदाकारत्वमात्रसम्पादकानि न क्षेत्रफलपूर्तिकराणि तत्र शिव्यक्तेशोभा भूदिति स्थूलमार्गेण योन्याद्याकारमात्रं प्रतिपाद्यते। यो गणितानाभिज्ञस्तेन चतुरस्रं कुण्डं तण्डुलादिना पूरयित्वा तानेव तण्डुलान् योन्यादिकुण्डे धृत्वा तत्पूर्तौ

तोष्टव्यमिति। अङ्गुलयवयूकालिक्षाः कृत्वा गोमूत्रिकारीत्या गणयित्वा अष्टभिर्भागे गृहीते फले उपर्युपरि च योज्यमाने फलायुतपद्यते अंशसवर्णनादिकुण्डमात्रेष्विति ज्ञेयम्।

वृत्तार्द्धकुण्डम्

स्वशतांशयुतेषु भागहीनस्ववरित्रीमितकर्कटेन मध्यात्।
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधातीन्दुदलस्य साधुसिध्यै।।

स्वीयशतांशेन युतो य इषुभागः पञ्चमांशः अर्थात् क्षेत्रस्यैव, तेन हीना चासौ स्वभूमिः क्षेत्रं तन्मितेन कर्कटेन सूत्रेण वा मध्याङ्कात् कृतं यद्वृत्तार्द्धं तस्मिन् पूर्वापरां रेखाञ्जीवारूपां वृत्तार्द्धस्य सिद्ध्यै साधु स्याद्यथा, तथा करोतु विद्वान् इति निर्णयः।

त्र्यस्त्रिवृत्तकुण्डनिर्णयः

वह्न्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्चतुर्थांशक-
ञ्जिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्र्यस्त्रिकाञ्झितम्।
विश्वांशैः स्वजिनाङ्कितेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते
व्यासार्द्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद्वृत्तसञ्ज्ञं शुभम्।।

(इति सिद्धान्तशेखरनिर्णयः १२२)

क्षेत्रस्य तृतीयांशं पूर्वतो निधाय तत उभयत श्रोण्योश्चतुर्थांशं निधाय दक्षिणत उत्तरतश्च दत्त्वा त्रिचिह्नेषु सूत्रदानात् कष्टरहितं त्र्यस्त्रि जायते इति तृतीयांशोऽष्टाङ्गुलानि मध्यसूत्रे योजितानि जातो लम्बः पश्चिमभुज उभयतश्चतुर्थांशः षडङ्गुलानि योजितानि खातानि भूः ३६ अत्र मुखाभावात् भूमेरर्द्धं कृतम् १८ इदं लम्बेनानेन निघ्नञ्जातं अत्र क्षेत्रफलं ५७६ समभुजे क्षेत्रफलञ्च सिद्ध्यतीति कष्टोज्झितमित्युक्तम्। किञ्चद्भुजवैषम्यं न दोषाय, अत्रापि ध्वजाय एवेति। उत्तरार्द्धे वृत्ते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभक्ते सति त्रयोदशांशैः

सह चतुर्विंशत्यंशयुतैः मितेन व्यासार्द्धेन मण्डलं यद्वृत्तं तत वृत्तसंज्ञं कुण्डसुन्दरं स्यात्।

षडस्रकुण्डम्

भक्ते क्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकै स्वाक्षिशैलांशयुक्ते-
र्व्यासार्द्धं मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे सेन्दुदिक्तः।
षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकन्तु हित्वा
नाशे सन्ध्यंशदोषामपि च धृतिकृते नेत्ररम्यं षडस्रम्।।

(सि.शे.-२०१)

क्षेत्रे चतुर्विंशतिधा विभक्ते सति अष्टादशांशैः स्वद्वासप्ततितमांशयुक्तैस्तावता व्यासार्द्धेन वृत्ते कृते सति तेनैव व्यासार्द्धेन मिते गुणके सूत्रे सति कर्कटे वा उत्तरदिक्तो धृते सति परावर्तनेन षट्चिह्नानि भवन्ति तेषु षट्सु चिह्नेषु षट्सूत्राणि एकान्तरेण परस्परलग्नानि दद्यात् ततः सन्धौ ये अङ्गदोषाः षड्भुजास्तेषां नाशे धृते कृते मण्डलस्य विनाशे षडस्त्रि रमणीयं जायत इति। शेषं विशेषेण कुण्डरत्नावल्यां विशदीकृतम्। अस्मिन् षडस्रे व्यासः ३६/४/० अत्रोत्तराग्रं त्रिकोणमेकं महत् तद्भुजमानं त्रिद्व्यङ्काग्निनभश्चन्द्रैर्वृत्तव्यासे समाहते।

पद्मकुण्डनिर्णयः

अष्टांशाच्च युतश्च वृत्तशरके तत्रादिमे कर्णिका-
युग्मे षोडशकेशराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागे निते।
भक्ते षोडशकेशराणि च धृते स्युः कर्कटेऽष्टौ पुनः।।

छदाः सर्वास्तान् खन कर्णिकां त्यज निजायामौच्च्यकं स्यात् पङ्कजम्। क्षेत्रस्याष्टमांशादष्टांशवृद्ध्या च वृत्तपञ्चके कृते सति तत्र पञ्चकमध्ये प्रथमं तत्कर्णिका, द्वितीये षोडशकेशराणि, द्वितीयं केशरस्थानमित्यर्थः। अन्तिमे

पञ्चमे वृत्ते स्वस्य अङ्गुलत्रयात्मकस्याष्टत्रिंशदंशोमितस्य षोडशस्तु स्थानेषु दिक्षु विदिक्षु तदन्तराले च समतया भाजिते तस्मिन् वृत्ते पञ्चचिह्नान्तरे दिशि विदिशि च कर्कटके धृते सति परावर्तनेनाष्टौ पत्राणि जायन्ते सर्वास्तान् केशरवृत्ततृतीयचतुर्थवृत्तानि पत्राणि हे विद्वन्! खन कर्णिकां त्यज मा खन। कीदृशीं निजः स्वकीयश्चायामो विस्तारस्तत्तुल्यमौच्च्यं यस्यास्तां पङ्कजपद्मकुण्डं बहिर्वृत्तमार्जनेन स्यात्। क्षेत्रफलानयनम्, अत्रोपान्तिमस्य चतुर्विंशत्यङ्गुलस्य पूर्ववत् क्षेत्रं ४५/२/३/१ अन्तिमवृत्तस्यास्य २९/३/४ क्षेत्रफलं ६९९/४/५/० अनयोरवन्तरार्द्धम् १२३/४/६/० इदं पूर्वक्षेत्रफलं योजितं वा अन्तिमवृत्तक्षेत्रफलम्। इति कुण्डरत्नावल्यादतिरिक्तमतानि उद्धृतम्।

अष्टास्त्रकुण्डम्

क्षेत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः श्वाष्टाश्वि२८भागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्दिशोरन्तरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीयसक्तैरिदमष्टकोणम्।।

क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागे कृते सत्यष्टादशभागैः स्वीष्वाष्टाविंशेन युतैः कर्कटकेन वृत्ते कृते सति विदिग्दिशोर्मध्ये कृताष्टचिह्नेभ्यः अष्टभुजेभ्यस्तृतीयांशमिलितैश्चिह्नद्वयं विधाय तृतीयचिह्नेन योजितैरष्टकोणं वृत्तमार्जनान्मध्यस्थाष्टदोः खण्डभाजनाच्च भवतीति। सङ्क्षेपतः क्षेत्रपालानयनं व्यासार्द्धं १८/५/१/० व्यासः ३७/२/२/० अथ द्विद्विनन्देषुसागरैर्वृत्तव्यासे समाहते। खखखाम्नाकसम्भक्ते लभ्यन्ते क्रमशो भुजाः। एतद्बृहद्भुजमानं दक्षिणोत्तररेखा कोटिः आयते क्षेत्रे भुजकोटिघातः क्षेत्रफलम्। भुजकोटिज्ञानं तु बृहद्भुजतुल्यं मध्येऽन्तरम् १४/२/२ याम्योत्तररेखो भयप्रान्तवर्तिरेखा खण्डमाने योजितं सत्कोटि स्यात् यथा दक्षिणोत्तरपूर्वापररेखा खण्डयोगादूर्ध्वरेखातिर्यग्रे खे भुजकोटिरूपे तदग्रान्नीयमानो महाभुज एव कर्णः, अस्य वर्गार्द्धमूलं तिर्यग्रूपभुजकोटिकानं लघुः, यतोऽत्र भुटकोटिवर्गयोगः कर्णवर्गो भवति इदं कोटिमानम्।

प्रकारान्तरेण समाष्टभुजाष्टास्रकुण्डनिर्णयः

माध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजाद्व्यब्धिलवेन युक्तैः।
वृत्ते कृते दिग्विदिशोऽन्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाष्टकोणम्।।

माध्ये गुणे सूत्रे चतुर्विंशतिभक्ते खसप्तचत्वारिंशसहितैश्चतुर्दशभिर्व्यासार्द्धेन मण्डले कृते तत्र दिग्विदिशोर्मध्ये कृताष्टसूत्रैः परस्परसंलग्नैरष्टकोणम्। प्रकारान्तरेण प्राचीनकृतिरसिकाभिमतं कुण्डं वृत्तमार्जनाद् भवतीति निर्णयः।

खातलक्षणं कण्ठलक्षणञ्चाह

खातं क्षेत्रसमं प्राहुरन्ये तु मेखलां विना।
कण्ठो जिनांशमानः स्यादर्काऽश इति चापरे।।

कुण्डखननं क्षेत्रसमकुण्डस्य यावान् विस्तार आयामश्च तावत्खननमाद्यमेखलया सहितं कुण्डे कार्यम्, योन्यादिकुण्डेषु विस्तारयामयोर्नानात्वाच्चतुरस्रस्यैवायामविस्तरौ ग्राह्यौ। अन्ये तु मेखलां वर्जयित्वा भूमावेव तावत् खननं कार्यमित्याहुः। कण्ठोऽपि क्षेत्रविंशत्यंशमानः खाताद्बहिः कार्यः समन्तादेकाङ्गुलमितः। अन्ये क्षेत्रद्वादशांशपरिमित इति प्राहुः।

सिद्धान्तशेखरे **'खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह'।**

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—**पञ्चत्रिमेखलोच्छ्रायं ज्ञात्वाऽशेषमधः खनेत्।**

मोहमूलोत्तरे—**हस्तमात्रखनेत्तिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह।**

अथ पक्षान्तरे शारदातिलके—

'यावन् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्'।

प्रयोगसारे—

चतुरस्रञ्चतु:कोष्ठे सूत्रैः कृत्वा यथा पुरा।
हस्तमात्रेण तन्मध्ये तावन्निम्नायतं खनेत्।।

इत्यादिवचनात् होमाल्पत्वबहुत्वयोरन्यतरपक्षावाश्रयणीयाविति युक्तमुत्पश्यामः।

मेखलानामधमतादिपक्षनिर्णयः

अधमा मेखलैका स्यान्मध्यमं मेखलाद्वयम्।
श्रेष्ठास्तिस्रोऽथवा द्वित्रिपञ्चस्वधमतादिकम्।।

(सिद्धान्तसारे, १०८)

एकमेखलापक्षोऽधमो द्विमेखलो मध्यमः, त्रिमेखलः श्रेष्ठः। पक्षान्तरे द्विमेखलोऽधमः त्रिमेखलो मध्यः पञ्चमेखलः श्रेयान्। एकमेखलोऽधमाधम इति निर्णयः।

क्रियासारे—**'नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्'।**

कुण्डं द्विमेखलं मध्यन्नीचं स्यादेकमेखलमिति लक्षणसङ्ग्रहनिर्णयः मुख्यस्तु पञ्चषाः प्रोक्तामध्यमास्तिस्रः, द्वे स्यातां नवमे पक्षे एका सा त्वधमाधमेति। सोमशम्भुना तु विशेषः उक्तः—

'त्रिमेखलं द्विजे कुण्डं क्षत्रियस्य द्विमेखलम्'।

मेखलैका तु वैश्यस्येति' खातं समेखलं क्षेत्रसममिति स्पष्टं वदन् मेखलालक्षणं अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः मेखला विरचयेत्। मेखलालक्षणं नाभिलक्षणं—"रसांशकात् उन्नतविस्तृताश्च तिस्रोऽथवैका युगभागतुल्या, पञ्चाथवा षट्शरवेदसमद्व्यंशैस्तथा स्युर्नवभागपिण्डाः" क्षेत्रषडंशादुन्नता

षडंशेनैव विस्तृतास्तिस्रो मेखला भवन्ति, एकमेखलापक्षे गृहैकमेखला क्षेत्रचतुर्थांशो भवति तत्तृतीयांशविस्तृता च स्यात्।

पञ्चमेखला: कार्या: षट्पञ्चचतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पारिभाषिकैर्विस्तृता: पञ्चमेखलानामुच्चता—तत्रादिमा नवभाग: पिण्डष्यौच्च्यं यस्या: सा पारिभाषिकनवाङ्गुलोच्चा स्यात् अपरा मेखलास्तस्या आद्याया य: शरांश: पञ्चांशस्तेन हीना भवन्ति, यथा एकहस्ते कुण्डे प्रथममेखला नवाङ्गुलोच्चा भवन्ति। ता: मेखला: सर्वा: क्षेत्रचतुर्विंशतिभागमितात् कण्ठाद्बहिरेव भवन्ति कीदृश्य: कुण्डानुकारा: योन्यादिकुण्डेषु योन्याद्याकार एव स्यु:।

नाभिलक्षणं यथा—नाभिर्द्वादशांशेनोच्च: षडंशेन विस्तृत: कुण्डानुकार: यादृशश्चतुरस्राकारं कुण्डं तादृशो नाभि:। अथवा नाभिरम्भोजसम: कमलाकार: कार्य: अयं नाभिरब्जे पद्मकुण्डे सम्भवति तत्र नाभिरूपाया: कर्णिकाया: समत्वात्। पद्माकारकरणं नाभेरुच्यते दलाग्रे दलाग्रनिमित्तं द्वयङ्गुलोच्चैः चतुरङ्गुलविस्तारायामे नाभौ इनांशहानि-र्द्वादशांशत्याग: कार्य: शेषमवशिष्टं क्षेत्रं तस्मिन् वृत्तत्रयं समभागेन कार्यम्। तत्र मध्यचिह्नात् प्रथमं वृत्तं कर्णिका द्वितीयं वृत्तं केशरस्थानं तृतीयं पत्राणि तद्बहिरवशिष्टद्वादशांशेन दलाग्राणि रचयेदिति निर्णय:।

योनिलक्षणम्

योनिर्व्यासार्द्धदीर्घा विततगुणलवादायताब्धिद्विभागा-
त्तुङ्गा तावत् समन्तात् परिधिरुपरिगस्तावदग्रेण रम्यम्।
निम्नं कुण्डं विशन्ती बलयदलयुगेनान्विताधो विशाला
मूलात् सच्छिद्रनालान्तरवटरुचिराश्वत्थपत्राकृतिः स्यात्।।

(सि.शे. २२४)

योनिर्व्यासार्द्धेन दीर्घा विस्तारतृतीयांशेन विस्तीर्णा चतुर्विंशांशेनोच्चा चतुर्विंशांशेन परिधिर्मेखला यस्या सा तावतैवाग्रेण चतुर्विंशांशेन निम्नं यथा

तथा कुण्डं प्रति विशन्ती वलयदलयुगेन वृत्तार्द्धद्वयेन युता अधो विशाला अर्थादुपरि स्वल्पसङ्कोचनवतीमूलात् स्थलात् सकाशात् मध्ये सच्छिद्रं नालं यस्या: सा पद्मनालाकारत्वान्नालोक्ति:। अन्तर्मध्ये अतवोगर्त: स्त्रुचि घृतधारणार्थं यद्वत्तेन रुचिरा सुन्दरा सा अश्वत्थपत्राकृति: स्यात्। वायवीये, त्रैलोक्यसारे तावद्दीर्घां एकाङ्गुलोच्छ्रिता इत्यस्य विवरणं अङ्गुष्ठ-मेखलायुक्तेत्यत्र अङ्गुलद्वयमुच्छ्राय: कुत्रचिदुक्त: अङ्गुलं परिधिरिति द्वादशाङ्गुलोच्छ्राय: अयं न प्रायो बहुसम्मतपक्ष:, अतोऽस्मदुक्त एकाङ्गुलोच्छ्रायपक्षो बहुसम्मत: कार्य:, शारदायां—मेखलानां दशाङ्गुलैर्विस्तृता तिथ्यङ्गुलिदीर्घा योनि: स्यादिति। प्रयोगसारे—केचित् योनिक्षेत्रस्य दीर्घचतुरस्त्ररूपस्य यत् फलं तस्य मूलमानीय तावत् समचतुरस्त्रं संशोध्य योनिकुण्डवद् योनिं साधयेत्।

रसं पिबेत् कुमारोऽयं त्वत्प्रसादात् महाबल:।
बलं नागसहस्त्रस्य यस्मिन् कुण्डे प्रतिष्ठितम्।।

(म.मा.आ. १२८ अ.)

मितालीदेव

●

श्रीरामचन्द्रदीक्षितविरचिता स्वोपज्ञमञ्जूषाटीकोपेता

कुण्डरत्नावली[१]

वन्दे मोदकपाणिं मोदकरं मोदकप्रियं देवम्।
ईशेश्वरीकुमारं लेखशिरोमुकुटरत्नशोभितम्[२]॥१॥

मौलौ अस्य कलानिधेः किल कला शीर्षे च जह्नोः सुता
कण्ठे तद्गरलं करेष्वहिधनुर्बाणत्रिशूलस्तथा।
वामाङ्के गिरिजागजाननयुता दक्षे गुहो भैरवः
पार्श्वे द्वीप्यजिनाम्बरः स जयति श्रीसप्तकोटीश्वरः॥२॥

करुणार्द्रकटाक्षां तां तरुणादित्यसन्निभाम्।
बिम्बवर्णारुणां नौमि श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्॥३॥

।। श्रीगणेशाय नमः।।

पाशाङ्कुशेषुकोदण्डान् बिभ्रच्चारुचतुर्भुजैः।
जपाकुसुमसङ्काशं महः किञ्चिदुपास्महे।।१।।

ज्योतिर्वित्तमतां सूर्यं गणितामृतविग्रहम्।
दिवाकराब्जयो रूपं श्रीगौरीशङ्करं नुमः।।२।।

महाजननीं गणेशाख्यं वन्दे ज्योतिर्विदां वरम्।
यत्पादपङ्कजरजो बुधेभ्यो भूतिदं सदा।।३।।

---

१. हस्तलेखे (मूलपाण्डुग्रन्थे) प्रमादजन्याः पाठा अस्माभिः संशोध्य मूलपाठे निवेशिताः, प्रमादपाठास्तु तत्तत्स्थाने पादटिप्पण्यां निदर्शिताः।

२. शोभिपदम्।

आर्यादुर्गां नौमि धर्मानिलेन्द्रस्ववैंद्यानां सन्ततेः कौरवैश्च।
युद्धे पाण्डोः शूरपुत्रान् समृद्धिदात्रीं ब्रह्मेन्द्राग्निविष्णवीशवन्द्याम्।।४।।
शूलास्यब्जकरोटयश्च दधतीं दक्षादधस्तात्करै-
स्त्र्यक्षां पद्मगतां महाटविरतां स्वर्णोज्ज्वालाङ्गीं शुभाम्।
शीर्षोद्यद्भुजगादपिच्छमुकुटां पाण्डोः सुतान् कौरवाः
त्रायन्ती भजतामशेषसुखदामार्याख्यदुर्गां नुमः।।५।।

अथ प्रारिप्सितस्य विघ्नविघातपूर्वकं समाप्तिमिच्छुः शिष्टाचरितं मङ्गलं वितनोति—**वन्द इति।** देवं द्योतनशीलं वन्दे इत्यन्वयः ईशश्च ईश्वरी च तयोः कुमारम्। अथवा ईशः शिवस्तस्येश्वरी नियन्त्री त्रिपुरसुन्दरीत्यर्थः। तस्याः कुमार अनन्तकोटिब्रह्माण्डसार्वभौमस्य श्रीकामेश्वरशिवस्य युवराजं महागणपतिमित्यर्थः। ललितोपाख्यानादौ तथैवोक्तत्वात्। तथा च 'कुमारस्याच्छुके स्कन्दे युवराजे' इति मेदिनी लेखा देवास्तेषां मुकुटरत्नैः शोभि शोभायुक्तं पदकमलं यस्येत्यर्थः 'लेखा अदितिनन्दनी' इत्यमरः। मोदकः खाद्यविशेषः 'मोदकः खाद्यभेदेऽस्त्रीति' कोशात्, सः करे यस्य, मोदो हर्षः स्वभक्तानां हर्षं करोतीति मोदकः प्रियो यस्य मोदकः हर्षुकः प्रियो यस्येति वा। अत्र सर्वविघ्नाटवीरूप-श्रीगजाननवन्दनत्वान्नमनात्मकं मङ्गलमिति।।१।।

अथ कुलदेवतां सप्तकोटीश्वराख्यं शिवं शार्दूलविक्रीडितेन स्तौति—**मौलाविति।** तत्प्रसिद्धं हालाहलाख्यं गरलं विषं, जयतीत्यर्थे नमस्कार आक्षिप्यते, शेषं सुगमम्।।२।।

अथ स्वेष्टदेवतामनुष्टुभा नमति—**करुणेति।** करुणया कृपया आर्द्रौ पूरितौ कटाक्षौ अपाङ्गदर्शने यस्याः। तरुणो य आदित्यस्तद्वत्सन्निभां आसमन्तात्तेजोभिर्व्याप्तामित्यर्थः। विम्बवर्णवदरुणा कान्तिर्यस्याः। 'बिम्बं तु प्रतिबिम्बे स्यान्मण्डले पुंनपुंसकम्'। बिम्बिकायाः फले क्लीबमिति' मेदिनी। तां त्रिपुरसुन्दरीं नौमि नमस्कारं करोमीत्यर्थः।।३।।

अथ कुलदेवतां शालिनीवृत्तेन नमति—**आर्यादुर्गामिति।** धर्मादीनां यमादीनां सन्ततिः पाण्डवाः समृद्धिदात्रीं युद्धे जयदात्रीं, शेषं स्पष्टम्।।४।।

पुनः शार्दूलविक्रीडितेन च स्तौति—**शूलेत्यादि।** स्पष्टम्।।५।।

भक्ताभीष्टकरं वेदशास्त्रसिद्धान्तपारगम्।
परब्रह्ममहः किञ्चिद्वंशीधरमुपास्महे॥६॥

कृष्णाख्यतातपदपद्मयुगं च नत्वा
ध्यात्वा गुरोर्हृदि मुदापदपद्मयुग्मम्।
ज्ञात्वा च पूर्वविदुषां सुकृतीः समस्ता
वक्ष्येऽत्र कुण्डकरणं सह मण्डपेन॥७॥

पादाग्रतिष्ठदुद्बाहोः कर्तुः शरलवः करः।
तत्सिद्धांशोऽङ्गुलं तस्य गजांशो यव उच्यते॥८॥

अथ गुरुमनुष्टुभा स्तौति—**भक्तेति।** भक्त्याः[१] शिष्या अस्मदादयस्तेषां नानाशास्त्राध्यापनेनाभीष्टं करोतीति। वेदशास्त्रेषु ये सिद्धान्तास्तेषां पारगं, सर्वज्ञमिति यावत्। वंशीधरं एतन्नामविशिष्टं; परब्रह्ममहः गुरुदेवपरं ब्रह्मेत्यादिवाक्यैर्गुरुरूपं तेजः किञ्चिदनिर्वचनीयमुपास्महे उपासनां कुर्म इत्यर्थः। अथ कृष्णपक्षे भक्ताः पूजकास्तेषामभीष्टं वरदानादि वेदशास्त्रसिद्धान्तस्तेषां पारगं, यः सर्वज्ञः सर्वविदित्युक्तत्वात् शेषं सुगमम्॥६॥

एवं मङ्गलानि विधाय पितृवन्दनपूर्वकं स्वकरणीयं वसन्ततिलकया प्रतिजानीते—**कृष्णेति।** कृष्णेत्याख्या यस्य तत्पदयुगमेव पद्मयुगं नत्वा प्रणम्य तथा गुरोरपि पदपद्मयुग्मं मुदा हर्षेण हृदि ध्यात्वा पूर्वाचार्याणां सुकृतीः कुण्डनिबन्धान् ज्ञात्वा मनस्यवधार्य कुण्डानां एककुण्ड्यादिनवकुण्ड्यन्तानां तथा ग्रहकुण्डानां द्विमुखदशमुखशतमुखादीनां तथा प्रसङ्गाच्छ्रीधर्यादिवेदीनां ग्रहपीठानां च करणं करणप्रकारं मण्डपेन त्रिहस्तादिशतहस्तान्तेन सह वक्ष्ये वक्ष्यामीत्यर्थः। नन्वत्र सम्बन्धचतुष्टयाभावात्कथं प्रेक्षावत्प्रवृत्तिरिति चेन्न कुण्डमित्यादिना विषयः। करणं प्रयोजनं, तद्वक्ष्ये इति सम्बन्धः। एतज्जिज्ञासुरधिकारीत्यतो नाप्रवृत्तिरिति॥७॥

अथ वक्ष्यमाणोपयोगिनीं परिभाषामनुष्टुप्चतुष्टयेनाह— **पादेति।** पादस्याग्रे तिष्ठतीति स चासौ उद्बाहुरूर्ध्वौ बाहु यस्य कर्तुर्यजमानस्य

---

१. भक्ताः।

यूका तस्याष्टमस्तस्या लिक्षा नागांशको मता।
कण्ठादौ चतुरस्रस्य जिनांशोऽङ्गुलमिष्यते॥९॥
मण्डपादौ तु हस्तस्य तदेवांशोऽपि कथ्यते।
कुण्डादौ वृत्तकरणे व्यासो व्यासार्धमिष्यते॥१०॥

शरलवः पञ्चमो भागः करो हस्त इत्यर्थः। इषव पञ्चेत्यादिसंज्ञा लोकप्रसिद्धा ज्ञेयाः। तस्य हस्तस्य सिद्धांशश्चतुर्विंशतितमो भागोऽङ्गुलम्। तस्य गजांशोऽष्टमांशो यव उच्यते। प्राचीनैरिति शेषः॥८॥

यूकेति। तस्य यवस्याष्टमोऽष्टमांशो यूका तस्या नागांशोऽष्टमांशो लिक्षेत्यादि एवमुत्तरोत्तरा अपि बालाग्रादिसंज्ञाः सन्ति ता अनुपयुक्ता अतो नोक्ताः। तथा चादित्यपुराणे—

बालाग्रमष्टलिक्षा तु यूका लिक्षाष्टकं मतम्।
अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम्॥ इति।

तथा चतुर्विंशत्यङ्गुलको हस्त इत्याद्यन्यत्र 'कण्ठादौ आदिपदेन योनिनाभिमेखलानां सङ्ग्रहः' चतुरस्रस्य एकहस्तादिचतुरस्र-कुण्डस्य चतुर्विंशांशः अङ्गुलं, मण्डपादौ त्वादिपदेन ध्वजपताकास्तम्भादीनां सङ्ग्रहः।

तत्र हस्तस्यैव जिनांशोऽङ्गुलं तदेवाङ्गुलमंश इत्यपि कथ्यते। अंशो भागो लवोङ्गुलमिति च पर्यायाः। एवं द्विहस्तकुण्डादौ कुण्डचतुर्विंशांशोऽङ्गुलमित्यादि ज्ञेयम्। उक्तं च कामिके—

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुलसंज्ञकः।
विभज्यानेन कर्तव्या मेखला कण्ठनाभयः॥ इति।

सिद्धान्तशेखरेऽपि 'चतुर्विंशतिमो भागः कुण्डानामङ्गुलं स्मृतम्' इति॥९॥

कुण्डादाविति। कुण्डानामादिपदेन पीठादौ च यद्वृत्तकरणं तस्मिन्, वृत्तं वृत्तिगेलिं वलयमित्यनर्थान्तरम्। व्यासः व्यासार्धं ग्राह्यं 'व्यासो विस्तृतिर्विस्तारस्ततिरिति च' पर्यायाः। स तु सर्वकुण्डव्यासकथनावसरे वक्ष्यामः॥१०॥

दिक्साधने च यश्शङ्कुस्तच्छङ्कोर्द्विगुणां स्तृतिः।
अनुक्तौ मध्यतो वृत्तमित्येतत्पारिभाषिकम्॥११॥

देशे सम्भाविते प्राग्विधिवदिह समां संविधायाथ भूमिं।
सम्पूज्यात्रैव मध्ये विरचितवलये रोपयेत्साग्रशङ्कुम्।
तच्छायाग्रं च यस्मिन् विशति च वलये याति यस्माच्चदेशा-
त्तौप्रत्यक्पूर्वदेशौ तदनुगतगुणः प्राग्गुणोऽसौ प्रदिष्टः॥१२॥

दिगिति। दिक्साधने प्राच्यादिर्दिक्साधनार्थे यः शङ्कुस्तच्छङ्कोर्मानात् द्विगुणा स्तृतिर्दिक्साधनवृत्तव्यासः स्यात्। यत्र कुत्रचिद् वृत्तं कार्यमित्यत्र कस्मात्कार्यमित्यपेक्षायाः सत्त्वान्मध्यतः मण्डपकोष्ठमध्यतः मण्डपे यस्मिन् कोष्ठे कुण्डं विवक्षितं तस्य मध्यतः कोष्टमध्य एव कुण्ठमध्य इति कुण्डोद्योतादा-वुक्तत्वात्तस्मात्कार्यमित्यर्थः। अत्र शङ्कुमानाद् वृत्तमानं गणितविपरीतं तद्वचन-बलात्स्वल्पान्तरत्वाल्लाघवाच्चोन्नेयम्।

तथा च कात्यायनशुल्वे—'समे शङ्कु निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र रेखयोः शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कुं निहन्ति सा प्राचीति।

परशुरामोऽपि—

प्रमाणमङ्गुलस्योक्तं शङ्कुः स्याद्द्वादशाङ्गुलः।
एकाङ्गुलप्रमाणं तु शङ्कुः भुवि विनिक्षिपेत्।।
रज्ज्वा तन्मितया वृत्तं कृत्वास्मिंश्छङ्कुभा यतः।
शङ्कुद्वयं पुनर्देयं प्राह्णापराह्णकालिकम्।।
तयोरुपरि सूच्यस्था प्राची ज्ञेया समश्च मा।।इति॥११॥

अथ वक्ष्यमाणोपयोगि भूशुद्धिपूर्वकदिक्साधनं स्रग्धरया[१]ह— **देश इति।** प्राक्पूर्वं सम्भाविते कल्पिते देशे विधिवदित्यनेन दहनखननसंप्लावनादिभिर्भूमिं समां विधाय कृत्वा, अथानन्तरं

---

१. स्रग्धरा।

तस्यां ताभ्यां द्वौतिमी पार्श्वतोऽत्र तद्वद्यत्सूत्रकं केन्द्रलग्नम्।
तेन स्यातां याम्यसौम्यौ स्फुटौ स्युः सूत्रन्द्वाग्रात्तु मत्स्यैर्विकाष्ठाः॥१३॥

विधिवदित्यनुवर्तते तेन भूमिं वराहानन्तकूर्मादींश्च सम्पूज्य, अत्रैव भूम्यां मध्ये विरचितं कृतं यद्वलयं तस्मिन् साग्रशङ्कुं अग्रेण सहितं शङ्कुं रोपयेद् दृढं स्थापयेत्। तस्य शङ्कोः छायाग्रं वलये वृत्ते यस्मिन् देशे विशति प्रवेशं करोति। तथा यस्माद् देशाद्याति निर्गच्छति तौ देशौ प्रत्यक्पूर्वदेशौ स्तः। तद्देशानुगतगुणो योऽसौ प्राग्गुणः कथित इत्यर्थः। शारदातिलके—

नक्षत्रराशिवाराणामनुकूले शुभेऽहनि।
ततो भूमितले शुद्धे तुषाराङ्गारवर्जिते।।
पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम्।।इति।

भूम्यादिपूजा मात्स्ये—

वाराहं कूर्मशेषौ च क्षितिं चैव विधानतः।
पूजयेद् वास्तुकार्येषु विधिना साधकोत्तमः ।।इति।

शङ्कुलक्षणं वाजपेय्याम्—

सूच्यग्रः सरलः शङ्कुः पृथुर्मूले धृतः स्थिरः।
अधोऽपि वा सूक्ष्ममुखो निहितः प्रविशेद् भुवि ।।इति॥१२॥

एवं प्राचीं प्रतीचीं च संसाध्य दक्षिणदिक्साधनं विदिक्साधनं च शालिन्याह—

तस्येति। तस्य सूत्रस्य प्राग् गुणस्य यौ अन्तौ पूर्वपश्चिमचिह्ने ताभ्यां सकाशाद् वृत्तपार्श्वतः द्वौ तिमी मत्स्यौ कार्य्यौ पूर्वचिह्ने कर्कटस्य सूत्रस्य वा एकं प्रान्तं निधायापरप्रान्तेन द्वितीयां काद्धनुरूत्पाद्यैवं पश्चिमचिह्ने प्रान्तं निधाय पूर्वचिह्नाद्धनुरुत्पादयेत्। तयोर्यौ सम्पातौ तावेव लोके मत्स्यसंज्ञौ। तयोर्यत् क्राद्यत्सूत्रं केन्द्रलग्नं वृत्तमध्यः केन्द्रसंज्ञः तेन सूत्रेण याम्यसौम्यौ दक्षिणोदग्दिशौ स्फुटौ प्रकटीभूतौ स्याताम् तथा सूत्रद्वन्द्वं प्राग्गुणोदग्गणरूपं तयोरग्रान्मत्स्यानुत्पाद्य तैर्मत्स्यैः पूर्वोक्तवद्विकाष्ठाः विदिशाः स्फुटाः स्युरित्यर्थः[१]॥१३॥

१. द्रष्टव्यम्—चित्रं परिशिष्टे चित्रसंख्यायाः-१,२।

वृत्ते चिह्नान्यष्टदिक्षुरष्टौ तेषु प्राचीपश्चिमे वक्त्रपुच्छे।
वक्त्राद्दक्षा दोःशिरः पार्श्वकट्यः पुच्छाद्वामाः श्रोणिपार्श्वांसकाश्च॥१४॥

स्यात्पञ्चयूकायवसप्तसंयुतै-
र्व्यासोऽङ्गुलीभिर्गुणवह्निभि-३३/७/५ बुधैः।
प्राक्तोऽब्धिकोणे हवने सहस्त्रके
योनौ खरामैर्यवयुग्म ३०/२ केन॥१५॥

यूकात्रिकोणसहितैर्यवयुग्मकेन
नागाग्निभिश्च ३८/२/३ स भवेदिह चार्धचन्द्रे।
त्र्यस्रे तु विद्धि स यवेन यमाब्धिभिश्चा-४२/१
न्ये सार्धषट्कदहनै ३६/४ स्त्रिभुजेऽन्यवृत्ते॥१६॥

षड्यूका सहभै २७/०/६ रथ षड्य-
वसहगैयमैः २९/६ सऽस्त्रेऽब्जे।
त्रियवतयुतभूमिरामै ३१/३ रथ-
वस्वस्रे च सार्धगजनेत्रैः २८/४॥१७॥

अथ वृत्ताष्टधाकरणं तच्चिह्नसंज्ञाश्च शालिन्याह— **वृत्त इति।** वृत्ते कृते तस्मिन्नष्टषु चिह्नानि कुर्यात्। तेष्वष्टषु चिह्नेषु ये प्राची पश्चिमचिह्ने ते वक्त्रापुच्छेस्तः। प्राच्या वक्त्रं पश्चिमायां पुच्छमित्यर्थः। ततो वक्त्राद्दक्षिणाः प्रादक्षिण्येन प्रथमं दोः शिरः भुजसंज्ञम्। ततो दक्षिणपार्श्वस्ततो दक्षिणश्रोणिः। ततः पुच्छात्प्रादक्षिण्येन वामाः वामश्रोणिः वामपार्श्वः वामोंऽसो भुजश्चेत्यष्टचिह्नसंज्ञाः तेन प्राच्यादीनां वक्त्रादिसंज्ञान्तराणीति फलितम्। 'स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्रीत्यमरः'॥१४॥

अथ वक्ष्यमाणप्राकृतनवकुण्डानां वृत्तव्यासान् इन्द्रवज्रावसन्ततिलकोपगीतिभिराह— **स्यादिति।** अत्राङ्कलेखनमेव व्याख्या। अथ चतुरस्रव्यासः ३३/७/४ योने ३०/२ अर्धचन्द्रस्य ३८/२/३ त्र्यस्रस्य ४२/१ अन्यत्र्यस्रस्य ३६/४ वृत्तस्य २७/०/६ षडस्रस्य २९/६ पद्मस्य ३/१/३ अष्टास्रस्य २८/४ इति नवकुण्डीवृत्तव्यासाः॥१५-१७॥

ग्रहाणां मखे खेटपीठाभकुण्डेऽ-
गयूको न सार्धाष्टरामै ३८/३/२ स्तु चाद्ये।
अथ स्याद्द्वितीयेऽङ्गयूकायुतैश्च
नवोषर्बुधेः ३९/०/६ शूर्पकुण्डेऽथ चापे॥१८॥

सवेदयूका द्वियवाङ्कयुग्मैः २९/२/४
सवेदयूकैकयवाष्टबाणैः५८/१/४।
ध्वजेऽथ सार्धर्तुगुणैर्वियूकै ३६/३/७
गुरोर्नवाक्षैर्वियवैः ५८/७ शराभे॥१९॥

उत्कलिकानां व्यासः शरास्त्रकादिमगजास्त्रकान्तानाम्।
अन्तर्बहिर्वृतीनां वक्ष्यन्तेऽमी क्रमात्सम्यक्॥२०॥

अथ ग्रहपीठाकारकुण्डवृत्तव्यासान् भुजङ्गप्रयातोपेन्द्रवज्राभ्यामाह—

ग्रहाणामिति। अथ सूर्यशशिभौमानां वृत्तचतुरस्रत्र्यस्रकुण्डानि तेषां व्यासाः पूर्वमेव तत्तद्वृत्तव्यासकथनावसरे उक्ता, अतः पुनर्नोक्ता इति पञ्चास्त्रिवृत्तव्यासस्तूत्कलिककुण्डवृत्तव्यासकथनावसरे वक्ष्यमाणत्वादत्र नोक्त इति।

अथ राहोः शूर्पाकारकुण्डस्य ३८/३/२ द्वितीयशूर्पाकारस्य ३९/०/६ शनेर्धनुराकारकुण्डस्य २९/२/४ केतोर्ध्वजाकारकुण्डस्य५८/१/४ गुरोर्बृहस्पतेदीर्घचतुरस्रस्य ३६/३/७ बुधस्य ध्वजाकारकुण्डस्य ५८/७ इति ग्रहपीठाकारकुण्डवृत्तव्यासाः॥१८-१९॥

अथोत्कलिकानामनुक्तसमभुजकान् च व्यासान् इन्द्रवज्राभुजङ्ग-प्रयातैराह—**उत्कलिकेति।** उत्कलिकानामुत्फुल्लकलिकेव यानि तेषां शरास्त्रकं पञ्चास्त्रमादिर्येषाम्। तथा गजास्त्रकमष्टास्त्रमन्ते येषां, पञ्चषट्सप्ताष्टास्त्राणामित्यर्थः।

अन्तर्बहिर्या वृत्तयः वृत्तानि तेषां व्यासाः क्रमात् सम्यग् वक्ष्यन्ते। पञ्चास्रान्तवृत्तस्य २० बहिर्वृत्तस्य ३९/२ षडस्रान्तर्वृत्तस्य २० बहिर्वृत्तस्य

अन्तस्थवृत्तेषु नखो २० न्मितोऽसौ

बाह्यस्थवृत्तेषु तु पञ्चकोणे।

अङ्काग्निभिः स्याद् ३९/२द्वियवैर्धितैश्च

विवाणयूकैः सदलाष्टरामैः ३८/३/३॥२१॥

षडस्रे तथा षट्गुणैः ३६ सप्तकोणे

वस्वग्निभि ३८ श्चैव तथाष्टकोणे।

समे बाणकोणे यवाख्यैः कुरामैः ३१/१

तथैवाङ्कपक्षै २९ रगास्ते समे स्यात्॥२२॥

व्यासस्य वर्गद्रवि१२गो९ जिना२४ ब्धि-

४ तत्वां २५ ग ६ नागां ८ ग६युगैर्४विनिघ्नात्।

पीठस्तृतिः स्यात्फलभक्तमूलं

वेद्या जिनां २४ शोऽङ्गुलमत्र चेष्टम्॥२३॥

३८/३/३ सप्तास्रान्तर्वृत्तस्य २० बहिर्वृत्तस्य ३६ अष्टास्रान्तर्वृत्तस्य २० बहिर्वृत्तस्य ३८ तथा समपञ्चास्रे समसप्तास्रे चेत्यर्थः। समभुजपञ्चास्रस्य ३१/१ समभुजसप्तास्रस्य २९ इति कुण्डवृत्तव्यासाः॥२०॥

अथ सूर्यादीनां पीठवृत्तव्यासानयनप्रकारमिन्द्रवज्रयाह—**व्यासस्येति**। व्यासस्य ग्रहकुण्डवृत्तव्यासस्य वर्गः वक्ष्यमाणग्रहकुण्डक्रमेण ख्याद्यङ्कैर्विनिघ्नः गुणितः फलभक्तः फलं षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतं एकहस्तसर्वकुण्डानां प्रसिद्धं तेन भक्तः तस्मान्मूलं तदेव पीठस्तृतिः व्यासः स्यादित्यर्थः। अत्र पीठव्यासादिषु ग्रहवेद्याश्चतुर्विंशांशोऽङ्गुलमिष्टं स्यादित्यर्थः। पीठानि देहलब्धाङ्गुलैर्न स्युरिति, किन्तु ग्रहवेद्याश्चतुर्हस्तैकहस्तादेश्चतुर्विंशाशोऽङ्गुलं परिकल्प्य तदङ्गुलैः कार्याणीति भावः।

अत्रोदाहरणं यथा—

सूर्यकुण्डव्यासः—२७/०/६ अस्य वर्गः ७३४/०/४ अयं रविनिघ्नः ८८०८/६ फलेनानेन ५७६ भक्तो लब्धः सूर्यपीठवृत्तव्यासवर्गः १५/२/३ अस्य मूलं ३/७/२/३ इदमेव सूर्यपीठव्यासः।।

अथ शुक्रस्य—अत्र तत्कुण्डान्तर्वृत्तव्यासः २० अस्य वर्गः ४०० अयं नवगुणः ३६०० फलभक्तः ६/२ अस्य मूलं २/४/२/५ इदमेव शुक्रपीठान्तर्वृत्त व्यासः।।

अथ शुक्रकुण्डबहिर्वृत्तव्यासः—३९/२ अस्य वर्गः १५४०/४/४ अयं नवगुणः १३८६५/०/४ फलभक्तः २४/०/४/४ अस्य मूलं ४/६/२ इदमेव शुक्रपीठबहिर्वृत्तव्यासः।

अथ समपञ्चास्त्रशुक्रकुण्डवृत्तव्यासः—३१/१ अस्य वर्गः ९६८/६/१ अयं नवगुणः ८७१८/७/१ फलभक्तः १.५/१/०६ अस्य मूलं ३/७/१/०/६ इदमेव समपञ्चास्त्रशुक्रपीठवृत्तव्यासः।

अथ चन्द्रपीठवृत्तव्यासः—३३/७/५ अस्य वर्गः ११५२/६/४ अयं चतुर्विंशत्या गुणितः २७६६७/४ फलभक्तः ४८/०/२/१ अस्य मूलं ६/७/३/४ इदमेव चन्द्रपीठवृत्तव्यासः।

अथ भौमपीठवृत्तव्यासः—४२/१ अस्य वर्गः १७७४/४/१ अयं चतुर्गुणः ७०९४/०/४ फलभक्तः १२/२/४/५ अस्य मूलं ३/४/२/५ इदमेव भौमपीठवृत्तव्यासः। अयमेवान्यत्र्यस्त्रस्याद्यवृत्तव्यासोऽपि।

अथ द्वितीयत्र्यस्त्रस्य वृत्तव्यासः—३६/४ अस्य वर्गाः १३३२/२ चतुर्गुणः ५३२९ फलभक्तः ९/२ अस्य मूलं ३/१/२ जातोऽयमन्यत्र्यस्त्राकारपीठ-वृत्तव्यासः।

अथ राहुपीठवृत्तव्यासः—तत्र तत्कुण्डवृत्तव्यासः ३८/३/२ अस्य वर्गः १४७५/०/२ पञ्चविंशत्या गुणितः ३६८७५/६/२ फलभक्तः ६४/०/१ अस्य मूलं: ८ इदमेव राहुपीठवृत्तव्यासः।

अथ द्वितीयशूर्पकुण्डवृत्तव्यासः ३९/०/६ अस्य वर्गः १५२८/२/४/४ पञ्चविंशतिगुणः ३८२०८ फलभक्तः ६६/२/५/३ मूलं ८/१/४ इदमेव द्वितीयशूर्पकुण्डवृत्तव्यासः।

जिना २४ कृति २२ नखै २० र्धृति १८ क्षितिपती १६ न्द्र १४-
तुल्यैस्तथा दिनेश १२ हरि १० दष्टभिः ८ प्रवरमध्यमाल्पाः करैः।
अमी गदितमण्डपास्तदवनेः करेणोच्चता
तदर्धमथवा कुरु त्वमिह नन्द ९ खण्डानि वै ॥२४॥

अथ शनिपीठवृत्तव्यासः—अत्र तत्कुण्डवृत्तव्यासः २९/२/४ अस्य वर्गः ८५९/१/६ षड्गुणितः ५१५५/२/४ फलभक्तः ८/७/४/६/४ अस्य मूलं २/७/७/३/६ इदमेव शनिपीठवृत्तव्यासः।

अथ केतुपीठवृत्तव्यासः—तत्र तत् कुण्डवृत्तव्यासः ५८/१/४ अस्य वर्गः ३३८५/६/२ अष्टगुणः २७०८६/२ फलभक्तः ४७/०१/५ अस्य मूलं ६/६/७ इदमेव केतुपीठवृत्तव्यासः।

अथ गुरुपीठवृत्तव्यासः—तत्र तत्कुण्डवृत्तव्यासः ३६/२/२ अस्य वर्गः १३१६/२/५ षड्गुणितः ७८९७/७/६ फलभक्तः १३/५/५/४ अस्य मूलं ३/५/५/४ इदमेव गुरुपीठवृत्तव्यासः।

अथ बुधपीठवृत्तव्यासः—तत्र तत् कुण्डवृत्तव्यासः ५८/७ अस्य वर्गः ३४६६/२/१ चतुर्गुणितः १३८६५/०/४ फलभक्तः २४/०/४/४/४ अस्य मूलं ४/७/२/०/३/५ इदमेव बुधपीठवृत्तव्यासः। इति सूर्यादीनां पीठवृत्तव्यासानयनप्रकारः॥२१-२३॥

अथ वक्ष्यमाणकुण्डानां स्थलसापेक्षत्वादादौ मण्डपविस्तारं भूमेरुच्चतां च पृथ्वीवृत्तेनाह—**जिनेति।** जिनाश्चतुर्विंशतिः २४ आकृतिर्द्वाविंशतिः २२ नखानि विंशतिः २० एतद्भस्तैस्तथा धृतिक्षितिपतीन्द्रतुल्यैः अष्टादश १८ षोडश १६ चतुर्दशभिः १४ करैः तथा द्वादश १२ दशा १०ष्ट ८ हस्तैश्च श्रेष्ठमध्यमकनिष्ठा मण्डपास्तेषामवनेर्भूमेः उच्चता करेण हस्तेन स्यादथवा तदर्धं करार्धं उच्चता

नख २० नृप १६ रवि १२ काष्ठा १० नाग ८ हस्तैः
क्रमेण द्विजनृपतिविशां वै ह्यङ्घ्रिभूहीनयोश्च।
अथ च हरि १० दिनै १२र्वा सूर्य १२ शक्रै १४ स्तथा वा
नृपति १६ धृति करैर्वा स्वल्पमध्योत्तमास्ते॥२५॥

स्यात्। अत्र मण्डपे नवानि खण्डानि कुरु। मण्डपं समनवभागं कुर्वित्यर्थः। भो इति सम्बुद्धि। रुद्रप्रसादे—

पूर्णहस्ताश्चतुर्द्वाराश्चाष्टहस्तादितः क्रमात्।
चतुर्विंशतिहस्तां ता हीनमध्योत्तमाः क्रमात्॥ इति।

कपिलपञ्चरात्रे मण्डपं प्रकृत्य।

'उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात्सुसमं च सुशोभनम्॥ इति।

सिद्धान्तशेखरे—

स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्॥ इति॥२४॥

अथ वर्णपरत्वेन मण्डपाञ्छालिन्याह—**नखेति।** विंशति-षोडशद्वादशाष्टहस्तैर्यथाक्रमेण ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्राणां हीनवर्णानां च मण्डपाः स्युरिति शेषः।

अथानन्तरं दशद्वादशहस्तैः स्वल्पः हीनः द्वादशचतुर्दशहस्तैर्मध्यमः षोडशाष्टादशहस्तैरुत्तम इत्यर्थः। तदुक्तं विश्वकर्मणा—

विप्राणां मण्डपः कार्यो हस्तैर्विंशतिसम्मितैः।
राज्ञां षोडशभिर्हस्तैस्तैर्द्वादशभिर्विशाम्॥
शूद्राणां दशभिर्हस्तैरष्टाभिर्हीनवर्णिनाम्॥ इति।

पञ्चरात्रे—

दशद्वादशहस्तास्तु स्वल्पाः प्रोक्ता मनीषिभिः।
रवीन्द्रहस्ता मध्याः स्युः सर्वकर्मसु शोभनाः॥

तुलादाने नखै २० र्वापि धृतिभि १८र्वा नृपै १६ श्च सः।
यदि चेदपरोऽपि स्यात्पूर्वतुल्यान्तरे भवेत्॥२६॥
गेहे वा यदि मण्डपो गृहसमं पञ्चघ्नमत्रान्तरं
प्रसादेऽपि च तत्समं हि विवरं त्यक्त्वाल्पदेशे तयोः।
संश्लिष्टं युगुलं जलाशयविधौ सोपानतो दिक्करे
शक्रेशाम्बुपसोमदिक्षु रचयेदन्यत्र तं वेश्वरे॥२७॥

तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः।।

मन्त्रमुक्तावल्यामपि—

उत्तमं मानमित्याहुर्हस्तषोडशकं पुनः।।इति।

तथा

श्रेष्ठाः प्रोक्ताः कलाहस्ता धृतिहस्ताश्च मण्डपा।। इति॥२५॥

अथ तुलादाने मण्डपमानमनुष्टुभाह **तुलेति।** तुलादाने कर्तव्ये विंशतिहस्तैर्वाष्टादशहस्तैः षोडषहस्तैः स मण्डपः स्यादिति। यदि चेदपरो मण्डपः स्यात्तदा पूर्वमण्डपतुल्यमन्तरं त्यक्त्वा भवेदित्यर्थः। लिङ्गपुराणे तुलादानप्रकरणे—

विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा।
तथाष्टादशस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः ।।इति।

वास्तुशास्त्रे—

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्तव्यं मण्डपान्तरम्।।इति॥२६॥

अथ गेहादौ मण्डपप्रकरणे विशेषं शार्दूलविक्रीडितेनाह—**गेह इति।** यदि गेहे मण्डपः स्यात्तदा गेहसममथवा गेहपञ्चगुणमन्तरं त्यक्त्वा तं मण्डपं रचयेत्। प्रासादेऽपि तत्समं प्रासादसमं विवरमन्तरं त्यक्त्वा तं रचयेत्। अल्पदेशे सङ्कीर्णदेशे यदि तयोर्युगलं तदा संश्लिष्टं संलग्नं रचयेत्। अपि च जलाशयविधौ जलाशयोत्सर्गविधौ सोपानतो दशकरे पूर्वेशानपश्चिमोत्तरदिक्षु, वा रचयेत्। अन्यत्र

कनिष्ठाद्यास्ते वा रवि[१२] करमिताद्धस्तयुगुलैः[२]
प्रवृद्धा ह्यानागद्वय[२८] मितकरास्ते च रुचिराः।
कनीयान् कृत्ये स्युस्त्र्यु[३] दधि[४] शर[५] तर्का[६] चत्व[७] गजा[८]
र्क[१२] विश्व[१३] क्ष्माभृद्भिः[१६] क्वचिदिह मता वापि च करैः॥२८॥

गृहप्रासादादिषु ईश्वरे ईशान्यां वा रचयेदित्यर्थः। वेति विकल्पेन पूर्वोत्तरे वेति।

तदुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

हर्म्याग्रे मण्डपं कुर्यात् त्यक्त्वा हर्म्यसमां क्षितिम्।
हर्म्यात्पञ्चगुणं वापि सोपानाद् दशहस्तकान्।।इति।

सोपानादिति तु तडागादिप्रतिष्ठाविषयमिति कल्पलता।

रुद्रयामले—

गृहे देवालये वापि सङ्कीर्णं यत्र दृश्यते।
तत्र कार्यं मण्डपज्ञैः संश्लिष्टं मण्डपद्वयम्।।इति।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

वापीकूपतडागानां पश्चिमे यागमण्डम्।।इति।

अपराजितपृच्छायाम्—

तडागाग्रेऽथ वैशाने उत्तरे यागमण्डपम्।।इति।

मात्स्ये—

गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः।। इति॥२७॥

अथ प्रकारान्तरेण कनिष्ठादिकत्वं स्वल्पकृत्ये मण्डपमानं च शिखरिण्याह—**कनिष्ठेति।** द्वादशहस्तादारभ्य हस्तयुग्मैः क्रमेण प्रवृद्धा अष्टाविंशतिकरास्ते कनिष्ठाद्याः मण्डपा रुचिराः स्युरित्यर्थः। तत्र द्वादशचतुर्दशषोडशहस्ताः कनिष्ठाः। अष्टादशविंशतिद्वाविंशतिकराः मध्यमाः। चतुर्विंशतिषड्विंशतिः, अष्टाविंशतिहस्ता उत्तमा इति ज्ञेयम्। अथवा कनिष्ठकृत्ये स्वल्पहोमे शान्त्यादौ एककुण्डपक्षे वा त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः सप्तभिरष्टाभिर्वा दशभिस्त्रयोदशभिः षोडशभिर्हस्तैः क्वचित्ते वा

अथवाऽभ्रमराम[३०] नख[२०] दिङ्मित[१०] हस्तै-
र्मखपूर्तिकृद्भवति यैरपि तैर्वा।
सकलाश्च वा सकलवर्णजनानां
समकोणबाहुयुतसागरकोणाः॥२९॥

मताः स्युरित्यर्थः। अत्रापि सप्तहस्तान्ताः कनिष्ठाः, अष्टद्वादशत्रयोदशहस्ता मध्यमाः षोडशहस्ताद्या उत्तमा इति ज्ञेयम्।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—

स्वल्पो द्वादशहस्तोऽयं द्विद्विवृद्ध्या ततः क्रमात्।। इति।

रुद्रप्रसादे—

यद्वा द्वादशहस्ताद्या द्विहस्तवृद्धितो नव।।
अष्टाविंशतिहस्तान्ताः कैश्चिदुक्ता मनीषिभिः ।। इति।

वसिष्ठसंहितायां मूलशान्तिमभिधाय—

ईशान्यामथ वा प्राच्यामुदीच्यामथ कल्पयेत्।
मण्डपं चाष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वा समन्ततः ।। इति।

तथा तत्रैव—

षट्द्वादशाष्टभिर्हस्तैः षोडशैर्वापि सम्मितम् ।। इति।

कल्पलतायामपराजितपृच्छायाम्—

त्रिपञ्चसप्तहस्तं वा न वैकादशभिस्तथा।
त्रयोदशकरं वापि द्विरष्टौ वा तथोत्तमम् ।। इति॥२८॥

अथ मण्डपविशेषान्नवनन्दिन्याह—**अथेति।** अथवा त्रिंशद्धस्तैरुत्तमः। विंशतिहस्तैर्मध्यमः। दशहस्तैः कनिष्ठ इति। अथवा मखस्य यागस्य पूर्तिकृत् समाप्तिकृद्यैर्हस्तैर्भवति तैर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिति। अथवा य उक्ता मण्डपास्ते सर्वे सर्ववर्णानां यथासम्भवं स्युः। ते सर्वेऽपि मण्डपाः समकोणाः समभुजैश्च युताश्चतुष्कोणा भवन्तीत्यर्थः। सिद्धान्तशेखरे—

त्रिषूत्तमेषु चैवोक्तस्त्रिंशद्धस्तप्रमाणतः।
विंशत्या मध्यमेषूक्तस्त्वन्यषु दशभिः करैः।।इति।

तथा तत्रैव—

कामतो मण्डपो वा स्यादिति मण्डपविस्तृतिः।।इति।

कात्यायनोऽप्यर्थात्परिमाणमिति। विश्वकर्मा—

सर्वे वा सर्ववर्णानां कार्याः कार्यानुसारतः।।इति।

अपराजितपृच्छायाम्—

चतुरस्त्रं समं शुद्धं भुजकर्णविशोधितम्।।इति।

मण्डपप्रकरणे उक्तम्। तथा सिद्धान्तशेखरे—

चतुरस्त्रचतुर्द्वारं चतुस्तोरणभूषितम्।।इति।

गौतमीयतन्त्रेऽपि—

चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्त्रं समन्ततः।। इति।

स च मण्डप आयामविस्ताराभ्यां चतुरस्त्र उक्त इति कल्पलता। अथैतेषां श्रेष्ठादित्रैविध्यमुक्तं मन्त्रमुक्तावल्याम्—

अथ मण्डपनिर्माणं ब्रह्माण्डे ब्रह्मणोदितम्।
श्रेष्ठमध्यमहीनैस्तु मानैस्तच्च त्रिधा मतम्।। इति।

पञ्चरात्रेऽपि—

मण्डपाः कर्मसु प्रोक्ता अल्पा मध्यास्तथोत्तमाः।
यथादेशं यथाकालं प्रयोज्यास्ते विचक्षणैः।। इति।

तेषां व्यवस्था हयशीर्षपञ्चरात्रे—

हीनस्तु मण्डपः कार्यो हीने चायतने सदा।
उत्तमे तूत्तमः कार्यो मध्यमे मध्यमस्तथा।।

पञ्चरात्रेऽपि—

अथवाल्पेषु मध्याः स्युर्मध्येष्वल्पा भवन्ति हि।
उत्तमेषूत्तमाः कार्या मध्यमा वा विचक्षणैः।
अधमेषूत्तमाः कार्या मण्डपास्तत्त्ववेदिभिः।।इति।।२९।।

कोट्याहुतौ स्युः शतवक्त्रपक्षे
दशास्यपक्षे द्विमुखेऽपि वा स्युः।
खव्योमचन्द्रैः[१००] खशरैश्च[५०] तत्त्वै[२५]-
राद्ये त्रयो वापि वरादिकास्ते[४]।।३०।।

अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं ग्रहाधिवासश्च तदा प्रधानम्।
ईशानदेशे च ततस्त्ववाच्यां श्रीखेटवेदिः करविस्तृतोच्चा।।३१।।

एवं प्रतिष्ठादिकर्मसु मण्डपानुक्त्वा ग्रहाणां कोटिहोमादौ तानुपजातिकयाह—**कोट्याहुताविति।** कोटिहोमे कर्तव्ये यथासंख्यं शतकुण्डपक्षे शतहस्तैः दशकुण्डपक्षे पञ्चाशत्करैर्द्विकुण्डपक्षे पञ्चविंशतिकरैः। आद्ये शतमुखे एवोक्तास्त्रयो मण्डपाः अपि श्रेष्ठादिकाः श्रेष्ठमध्यमाधमा वा स्युरित्यर्थः।

तदुक्तमपराजितपृच्छायाम्—

शुभे काले प्रकुर्वीत मण्डपं च शतानने।
पङ्क्त्येधितैः शतकरैर्मापयित्वा समन्ततः।।

दशधा विभजेत्प्राज्ञ इति। तथा दशाननमुपक्रम्य पञ्चपञ्चाशता हस्तैः पञ्चाशद्भिस्तथापि 'वे'ति। तथा 'द्वयाननेति' पञ्चविंशतिहस्तैस्तामित्यादिकल्पलतायाम्। तथा भविष्यपुराणे शतमुखादिहवनं प्रकृत्य।

ततस्तु सहितो विप्रैः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम्।
उत्तमं शतहस्तेन तदर्धेन तु मध्यमम्।।
जघन्यं तु तदर्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ।।इति।।३०।।

अथ वेदिं वक्तुं तद्देशमुपजात्याह—**अथेति।** यत्र प्रधानावाहनात्पूर्वं ग्रहाधिवासः ग्रहस्थापनं तत्रेशानदेशे प्रधानं प्रधानवेदिः। ततः प्रधानवेद्याः सकाशादवाच्यां दक्षिणस्यां दिशि श्रीखेटवेदिर्ग्रहवेदिः। सा करेण हस्तेन विस्तृता उच्चा च स्यादित्यर्थः। यथा महारुद्रवास्तुशान्त्यादौ प्रधानमीशान्यां तद्दक्षिणे ग्रहा इत्याद्युक्तं भट्टकृतमहारुद्रपद्धतौ।।३१।।

रुद्रादौ हवनेऽथ वेदिरथ वा वे[४] दाङ्ग[६] नागैः[८] करै-
रेक[१] द्वि[२] त्रि[३] भिरङ्गुलैश्च कथिता राजादिषु न्यूनता।
पादोच्चाथ तुलाविधौ तु नवभि[९] र्नागैः[८] खरै[७] र्वापि सा
द्वाभ्यां सार्ध[१/२] करेण हस्त[१] विमिताप्युच्चाथ वाप्यादिषु।।३२।।

अथ कर्मविशेषे वेदिमानं शार्दूलविक्रीडिताभ्यामाह—**रुद्रादाविति।** अथ वेदिः रुद्रादौ महारुद्रादिहवने चतुःषड्सप्तकरैर्दीर्घा विस्तृता च कथिता ब्राह्मणानाम्। राजादिषु राजविट्शूद्रादिषु तु यथासंख्यमेकद्वित्रिभिरङ्गुलैः न्यूना सा पादोच्चा स्वविस्तृतेः पादोच्चा स्यादित्यर्थः।

अथ तुलविधौ तु नवभिरष्टाभिः सप्तभिः करैर्दीर्घा विस्तृता च। अपि वा सा क्रमेण द्वाभ्यां हस्ताभ्यां सार्धकरेण हस्तेन च उच्चा स्यात्। अथ वाप्यादिष्वग्रे वक्ष्यत इति शेषः।

अथ वेदिलक्षणं सुबोधिन्याम्—

इष्टकाभिश्चिता रम्या समन्ताद् ब्राह्मणस्य च।
एक द्वित्र्यङ्गुलैर्न्यूना सैव क्षत्रादिषु त्रिषु।।

महामण्डपवेदिः स्याच्चतुःषडष्टहस्तका।
सकृत्सार्धं द्विहस्तोच्चा हीनमध्योत्तमाः क्रमात् ।।इति।

लिङ्गपुराणे तुलाप्रकरणे—

कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः।
अष्टहस्तेन वा कुर्यात्सप्तहस्तेन वा पुनः।।

द्विहस्ताध्यर्धहस्तां वेति। अत्र वेदित्रयस्य द्विहस्तः सार्धहस्तो हस्तश्चेत्युच्छ्रायो विधेय इति कल्पलता। तथा द्विहस्ताध्यर्धहस्ततः। विस्तारश्चोच्छ्रयो वापि कामिकेऽपि।।३२।।

वेदैरिति—सा वेदी चतुर्भिः पञ्चभिरथ वा सप्तभिर्हस्तैर्मिता। अथवा मध्ये मण्डपमध्ये मण्डपनवमांशेन विमिता तुल्या हस्तोच्चकेति

वेदैः[४] साथ सरैः[५] स्तथाप्यथ हयैः[७] र्हस्तैर्मिता वाथवा
मध्ये मण्डपरन्ध्रभाग[९] विमिताब्ध्यस्त्रापि हस्तोच्चका।
भूपानां प्रवराभिषेचनविधौ स्यात्सर्वतोभद्रिका
ज्ञेया पद्मनिभा जलाशयविधौ पाणिग्रहे श्रीधरी॥३३॥

प्रतिष्ठादिविषये ज्ञेयम्, सापि सर्वत्र चतरस्त्रेत्यर्थः। अथ च सा भूपानां प्रवरं यदभिषेचनं राज्याभिषेकस्तद्विधौ सर्वतोभद्रिका ज्ञेया। जलाशयविधौ जलाशयोत्सर्गादौ पद्मिनी पद्माकारा, पाणिग्रहे श्रीधरी स्यादित्यर्थः। तदुक्तं राजकौस्तुभधृतमात्स्ये—

पञ्चसप्तः चतुर्वापि करां कुर्वीत वेदिकाम्।। इति।

क्रियासारे—**त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागस्तु वेदिका।।** इति।

पूर्वपश्चिमोदग्—दक्षिणत्रित्रिसूत्रैस्त्रिभागं मण्डपं कृत्वा तेन मण्डपनवमांशो वेदिरिति तात्पर्यम्। क्रियासारे वेदिं प्रकृत्य

हस्तमात्रं तदुत्सेधं चतुरस्त्रं समन्ततः।। इति।

तथा—

हस्तोन्नता च विस्तीर्णा चतुर्हस्तैः समन्ततः।। इति।

सामान्येन स्वस्तिकापरपर्यायाश्चतुरस्त्रवेद्या मानमुक्तम्। सिद्धान्तशेखरे तु वेद्याश्चातुर्विध्यमुक्तम्।

वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्त्रा च पद्मिनी।।

श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।
चतुरस्त्रा चतुःकोणा वेदी सर्वफलप्रदा।।

तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।
राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने।।

विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्त्रसमन्विता।
दर्पणोदरसङ्काशा निम्नोन्नतविवर्जिता।।इति।

वेदीफलं स्वाब्धिकरां[३४] शकेनाऽष्टघ्नेन युक्तं च पुनर्द्विनिघ्नम्।

तन्मूलमित्यावलयं तु वेदिस्थलस्य मध्यात्प्रविदेहि तस्मिन्।।३४।।

चतुर्विधवेद्या आकार उक्तः। तथा वर्णपरत्वेनापि चतुर्विधवेद्या मानमुक्तं वास्तुशास्त्रे—

चतुर्विधा भवेद्वेदी सर्वशान्तिकरी नृणाम्।

स्वस्तिका भद्रिका चान्या श्रीधरी पद्मिनी तथा।।

स्वस्तिकां चतुरस्रा च भद्रिका भद्रसन्निभा।

श्रीधरी विंशतिः कोणा पद्मिन्यष्टदलान्विता।।

विप्रेषु सप्तहस्ता च षड्ढस्ता क्षत्रियेषु च।

पञ्चहस्ता भवेद्वैश्ये शूद्रे वेदाः प्रकीर्तिता।।[१] इति।३३।।

अथोक्तवेदित्रयकरणप्रकारेषु प्रथमं द्वादशास्रां भद्रिकावेदिं सार्धोपजातिवृत्ताभ्यामाह—**वेदीति।** यद्धस्ता इष्टवेदिस्तस्या भुजकोटिघातेन फलं विधाय ततस्वचतुर्विंशांशेनाष्टगुणेन युक्तं कृत्वा द्विगुणं कार्यम्। तस्माद्यन्मूलं भवति तन्मानेन वेदिस्थलमध्याद्वृत्तं प्रविधेहि कुर्वित्यर्थः। तस्मिन् वृत्ते दिक्कोणकं चतुरस्रं प्रविधाय तत्र चतुरस्रे विदिक्कोणकं चतुरस्रं कृत्वा तत आद्यं पूर्वं कृतं यच्चतुरस्रं तस्य ये भुजास्तेषु प्रति चतुर्थांशे चिह्नं कृत्वा तस्माच्चिह्नात्संलग्नो योऽपरो भुजस्तच्चतुर्थांशचिह्ने सूत्रं दद्यादेवं चतुर्षु भुजेषु ज्ञेयम्।

ततो बाह्ये यान्यर्थकोष्ठानि भ्रमिः वृत्तं तेषां मार्जनेन नाशेन सूर्यास्रा द्वादशास्रा भद्रिकावेदिः स्यादित्यर्थः। अत्र चतुर्भद्राभिषेचने भद्रिका भद्रसन्निभेत्यादिवचनात्समास्रोत्कलिकयोर्निवृत्तिः। शेषं स्पष्टम्।

अथास्याः फलानयनम्। तत्र भद्रिकावेदी राज्याभिषेक उक्तत्वात् षड्ढस्ता क्षत्रियेषु चेति वचनात् षड्ढस्तोदाह्रियते। तत्रेष्टषड्ढस्तवेदिफलं हस्तात्मकं ३६ तथाङ्गुलात्मकं फलं २०७३६ अस्य चतुर्विंशांशः ८६४ अष्टगुणाः ६९१२ अनेन युक्तं फलं २७६४८ द्विगुणं ५५२९६ अस्य मूलं २३५/१/२ अयं व्यासः। अनेन कृतवृत्ते उक्तवद् यच्चतुरस्रमुत्पद्यते

१. द्रष्टव्यम् - चित्रं परिशिष्टे चित्रसंख्यायाः ३,४।

दिक्कोणकं वारिधिकोणमेकं[४] तस्मिन् विकाष्ठास्रकमब्धिकोणम्।
विधाय चाद्यस्य भुजाङ्घ्रिचिह्नात्सूत्रं च संलग्नभजाङ्घ्रिचिह्ने॥३५॥

बह्यार्धकोष्ठभ्रमिमार्जनेन स्यात्सूर्यकोणा किल भद्रिकैवम्।
राज्याभिषेके नृवराधिकानां प्रोक्तां मुनीन्द्रैरपि वास्तुशास्त्रे॥३६॥

इष्टवेदीफलं वह्निभि[३]र्व्याहतं लोचनाभ्यां[२] हृतं तस्य मूलं ततिः।
मण्डलं चानया यच्च तस्मिन् समं वेदकोणं विकाष्ठास्रकं कुर्वथो॥३७॥

पूर्वदिङ्नागकोणज्यकाद्व्यन्ततः सूत्रयुग्मं विधेह्यापरज्यान्तकम्।
दक्षिणोदग्ज्यकाप्रान्तयुग्मे तथा तेन वेदी भवेत्सूर्यकोणाथवा॥३८॥

तस्य फलं वृत्तव्यासवर्गार्धतुल्यं २७६४८ अस्मादुक्ताष्टगुणितचतुर्विंशांशोने सर्वं फलं २०७३६ युक्तफलं २७६४८ अस्य द्वात्रिंशदंश ८६४ अष्टगुण: ६९१२ अनेनोनं युक्तफलं २०७३६ जातं सर्वं फलम्।

अथात्र युक्तफलस्य २७६४८ द्वात्रिंशदंश: ८६४ अष्टगुण: ६९१२ अनेनोनं युक्तफलं २०७३६ जातं सर्वं फलम्। अथात्र किञ्चिदुच्यते। भद्रिकावेद्यां समानावयवानि चतुर्विंशतिकोष्ठानि सन्ति, परन्तु करणप्रकारे तादृशकोष्ठसमान्यष्टौ कोष्ठान्यधिकानि सन्ति अतश्चतुर्विंशांशोऽष्टगुणा: वेदीफले युक्तस्तेनैककोष्ठतुल्यानि। द्वात्रिंशत्कोष्ठानि भवन्ति। अतो युक्तफलस्य द्वात्रिंशदंशोऽष्टगुणो युक्तफलाद्गुणितश्चेज्जायते सर्वं फलमिति स्पष्टम्॥३४-३६॥

अथ प्रकारन्तरेण भद्रिकावेदिं स्रग्विणीवृत्ताभ्यामाह—**इष्टेति।** इष्टवेद्या: द्वादशास्रायां फलं वह्निभिस्त्रिभि: गुणितं तथा लोचनाभ्यां द्वाभ्यां हृतं सद्यत्तन्मूलं ततिर्व्यास: स्यात्। अनया तत्या व्यासेन यन्मण्डलं वृत्तं भवेत्तस्मिन् वृत्ते विदिक्कोणकं चतुष्कोणं कुरु॥३७॥

अथो अनन्तरं पूर्वदिशि या नागकोणस्याष्टकोणस्य ज्या तस्या: द्व्यन्तत: द्वयोरन्तयो: सकाशात्सूत्रयुग्मं अपरज्या पश्चिमदिग्ज्या तदवधिकं

वेदीफलं स्वाभ्ररसां ६० शर्कनार्क १२ घ्नेन युक्तं च पुनर्द्विनिघ्नम्।
तन्मूलमित्यादिविदिक्स्थकोणवेदास्त्रकान्तं तनुयात्ततश्च॥३९॥

विधेहि विस्तारयेति भावः। तथैवाष्टकोणस्य ये दक्षिणोदग्ज्ये तयोर्यत्प्रान्तयुग्मं दक्षिणज्याप्रान्तयुग्ममुदग्ज्याप्रान्तयुग्मं चेति तस्मिन्नपि सूत्रयुग्मं विधेहीति। तेन सूर्यकोणा द्वादशकोणा वेदी भवेदित्यर्थः। अथवेति प्रकारान्तरार्थः।

अथ फलानयनम्। तत्रेष्टवेदीफलं २०७३६। गुणकेनानेन ३ गुणितं ६२२०८ भाजकेना २ नेन भक्ते लब्धं ३११०४ अस्य मूलं व्यासः १७६/३ व्यासवर्गार्धं मध्यचतुरस्रफलं १५५५२ अस्य मूलं वृत्तस्थचतुरस्रज्या १२४/५/६ अनयो न व्यासः ५१/५/२ अस्यार्धं बृहच्छरः २५/६/५ अथ व्यासवर्गस्य सप्तमांशः ४४४३/३/४ अस्य चत्वारिंशदंशः १११/०/६ सप्तमांशे युक्तः ४५५४/४/२ अस्य मूलं वृत्तस्थाष्टास्त्रिज्याभुजः ६७/४/३, अथ ज्याव्यासयोगः २४३/७ अन्तरं च १०८/७ द्वयोर्घातः २६५५२ मूलं १६३ अनेनोनव्यासः १३/३ दलितो लघुशरः ६/५/४ अनेनोनो बृहच्छरः कोटिः १९/१/१ भुजकोटिघातः १२९६ चतुर्गुणः ५१८४/१ मध्यचतुरस्रफले युक्तः २०७३६/१ जातं सर्वं फलं। अत्र किञ्चिन्न्यूनं फलमायाति। अतः सम्पूर्णफलार्थे भुजकोटी किञ्चिद्वर्धिते इति ज्ञेयम्[1]॥३८॥

अथ श्रीधरीवेदिं द्वाभ्यामिन्द्रवज्रावृत्ताभ्यामाह—**वेदीति।** वेदीफलं स्वषष्ट्यंशेन द्वादशगुणेन युक्तं कृत्वा द्विगुणं कार्यम्। ततो मूलमित्याद्युक्तवच्चतुरस्रद्वयोत्पादनान्तं कृत्वा तत आद्यचतुर्भुजस्य भुजार्धं त्रेधा विभज्य भुजार्धस्य समानानि त्रीणि खण्डानि कृत्वा मध्यचिह्नद्वयात् पूर्वोक्तवत्सूत्रपाता द्विंशत्यस्रा श्रीधरीवेदिर्भवेत्। नयने अभिरमयतीति सुन्दरेत्यर्थः॥३९॥

अथ फलानयनम्। तत्र कन्याहस्तैः पञ्चभिः सप्तभिर्वेति समानविकल्पोक्तत्वात्पञ्च-हस्तोदाह्रियते। तत्र पञ्चहस्तवेदीफलं १४४०० अस्य षष्ठ्यंशः २४०

१. द्रष्टव्यम् - चित्रं परिशिष्टे चित्रसंख्यायाः ५,६।

आद्याब्धिकोणस्य भुजार्धमत्र त्रेधा विभज्यापि च सूत्रपातात्।
पूर्वोक्तवच्छ्रीधरीवेदिरत्र (स्यादौ) भवेन्नखास्त्रा नयनाभिरामा॥४०॥

वेदीफलात्पञ्चनगाष्टराम ३८७५ निघ्नादहींभाङ्ककरा २९८८ प्तमूलम्।
व्यासः समाभ्राश्चिव २० मितास्त्रवेद्या व्यासाङ्गभागः स्वनृपांश१६ हीनः॥४१॥

द्वादशगुणाः २८८० वेदीफले युक्तः १७२८० द्विगुणः ३४५६० अस्य मूलं १८५/७/२ अनेन कृतवृत्ते यच्चतुरस्रमुत्पद्यते तत्फलं १७२८० अस्मादुक्तद्वादशगुणितषष्ठ्यंशोने सर्वं फलं १४४०० अथ सप्तहस्ते उदाहरणम्। तत्रेष्टवेदिफलं हस्तात्मकं ४९ तथाङ्गुलात्मकं २८२२४ अस्य षष्ठ्यंशः ४७०/३/१/५ द्वादशगुणः ५६४४/६/३/४ इष्टफले युक्तः ३३८६८/६/३/४ द्विगुणः ६७७३७/४/७ मूलं २६०/२/१ अयं व्यासः अनेन कृतवृत्ते यच्चतुरस्रमुत्पद्यते तत्फलं ३३८६८/६/३/४ अस्मादुक्त-द्वादशगुणितषष्ठ्यंशोने सर्वं फलं २८२२४॥४०॥

अथ समविंशत्यस्त्रां श्रीधरीमिन्द्रवज्रावृत्ताभ्यामाह—**वेदीति।** इष्टवेद्या फलं पञ्चसप्तत्युत्तराष्टत्रिंशच्छतैर्गुणितं तस्मादष्टाशीत्युत्तरैकोनत्रिंशच्छतैर्विभक्ते यल्लभ्यते तन्मूलं समाभ्राश्चिवमितास्त्रवेद्या विंशत्यस्त्रवेद्याः व्यासो भवति तेन कृतवृत्ते व्यासस्य यः षष्ठांशः स्वषोडशांशेनः सा ज्या भवति तन्मितकर्काटकेन प्रोक्तः वृत्तं नखधा विंशतिधा विभज्य विंशतिचिह्नानि कृत्वेत्यर्थः। तत्र परस्परचिह्नस्पृक्ज्याविंशतिं समानां प्रदद्यात्तेन विंशत्यस्त्रा वितर्दिर्वेदिर्भवेदित्यर्थः। वेति पूर्वाकारेण विकल्प्यते। 'स्याद्वितर्दिस्तुवेदिकेत्यमरः'[1]॥

अथ फलानयनम्—तत्रेष्टफलं पञ्चहस्तवेद्या १४४०० गुणकेनानेन गुणितं ३८७५.५५८००००० भाजकेन २९८८ अनेन भक्ते लब्धं १८६७/५/४ अस्य मूलं १३६/५/२ अस्य षष्टांशः २२/६/१ अस्य षोडशांशः १/३/३ अनेनोनः १/३/३ अनेनोनः षष्ठांशः २१/२/६ जातेयं विंशत्यस्त्रिज्या॥[2]

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ७,८।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ९,१०।

जीवा भवेत्तन्मितकर्कटेन प्राक्तस्तु वृत्तं नखधा २० विभज्य।
ज्याविंशतिं तत्र समां प्रदद्याद्वितर्दिरेवं नखकोणका वा॥४२॥

फलमष्टयुगा ४८ हतं शराश्वि २५ हतं तत्पदमेव विस्तृतिः।
अनया कृतमण्डलं समं नख २० धा तद्विभजेत्तु पूर्ववत्॥४३॥

सुरराजदिगङ्गतः क्रमान्ननवमाङ्के गुणदानतो मुहुः।
नखसंख्यसमत्रिकोणकानि हि यावत्प्रभवन्ति मण्डलैः॥४४॥

वृत्तिमार्जनतोऽपि वा भवेन्नखकोणोत्कलिकावितर्दिका।
कुरुतां च विवाहसंस्कृतौ वरवध्वोर्विपुलर्द्धिवर्धिनीम्॥४५॥

अथ ज्याव्यासयोगः १५८ अन्तरं ११५/२/४ द्वयोर्घातः १८२१९/३ अस्य मूलं १३४/७/६ इदं गर्भसूत्रं अनेन ज्या गुणिता २८८०/६ जातमिदं चतुस्त्र्यस्रफलं। इदं पञ्चगुणं १४४०३/६ जातं सर्वं फलं, स्वल्पान्तरत्वाददोषः एवं सप्तहस्तादावपि॥४२॥

अथोत्कलिकविंशत्यस्रां श्रीधरीं वैतालीयछन्दसा त्रिभिः पद्यैराह— **फलमिति।** फलमिष्टवेदीफलमष्टचत्वारिंशता निघ्नं पञ्चविंशत्या भक्तं तस्य यन्मूलं तदेव विस्तृतिर्व्यासः स्यात्॥४३॥

सुरराजदिति। अनेन कृतं यन्मण्डलं तत्सूरराजदिक् प्राचीतच्चिह्नात्क्रमेण नवमनवमचिह्नैर्मुहुः वारं वारं गुणदानतः सूत्रदानेन विंशतिधा विभजेत्। यावद्विंशतिसमत्रिकोणानि मण्डलेन प्रभवन्ति तावदित्यर्थः॥४४॥

वृत्तिरिति। ततो वृतेर्वृत्तस्य मार्जनेन विंशत्यस्रोत्कलिका वितर्दिका वेदी भवेत्। तां विवाहसंस्कारे वरवध्वोर्विपुला पुष्कला या ऋद्धिः समृद्धिस्तां वर्धयतीत्येत्तादृशीं कुर्वित्यर्थः। अपिवेति पूर्वप्रकारेण विकल्पः।

अथ फलानयनम्—तत्रेष्टवेदीफलं पञ्चहस्ते १४४०० अष्टचत्वारिंशता ४८ गुणितं ६९१२०० पञ्चविंशत्या २५ भक्ते लब्धं २७६४८ अस्य मूलं १६६/२/२ अयं वृत्तव्यासः। अथ फलानयनार्थमस्य त्र्यंशः ५५/३/३ अनेनोनव्यासोऽशर्व्यासः ११०/६/७ अस्य षष्ठांशः १७/२/४/४ जातेयं मध्यवृत्तस्य विंशत्यस्त्रिज्यका। बहिर्व्यासः १६६/२/२ अनेन

वेद्याः फलं भूमिसमुद्र ४१ निघ्नं वेदाक्षि २४ भिस्तद्विभजेश्च लब्धेः।
मूलं व्यासः पद्मिनी वेदिकायाः सा दिक्कोणा पद्मकुण्डोक्तवत्स्यात्॥४६॥

वेदीफलाद्भूमिखभूमि १०१ निघ्नाद्वेदाब्धिचन्द्रै १४४ र्विहृताच्च मूलम्।
व्यासो भवेत्तेन च वक्ष्यमाणान् यत्पद्मकुण्डाकृति पद्मिनी स्यात्॥४७॥

गुणिते सति जातं त्र्यस्रचतुष्टफलं २८८०/२/२/३ पञ्चगुणमिदं जातं १४४०१/३/४ सर्वं फलं अधिकं ध्वजायः स्वल्पानन्तरत्वाददोषोऽपि॥४५॥[1]

अथ पद्मिनीवेदिमुपजातिवृत्तेनाह—**वेद्या इति।** इष्टवेद्याः फलं चैकचत्वारिंशता गुणितं तच्चतुर्विंशत्या भक्तं या लब्धिर्भवति तस्याः मूलं पद्मिनीवेदिकायाः व्यासो भवति। तेन व्यासेन वृत्तं कृत्वा पद्मकुण्डोक्तवद्वक्ष्यमाणपद्मकुण्डोक्तवत्सर्वकरणेन सा पद्मिनीवेदिः दिक्कोणकाऽष्टदिक्षु, कोणा यस्याः स्यादित्यर्थः। अत्र पद्मिनीवेद्याः दिग्विदिक्कोणकत्वं पद्मकुण्डस्य दिग्विदिगन्तरकोणकत्वमिति भेदः। अन्यत्सर्वं पद्मकुण्डोक्तवदित्याशयः।

अथ फलानयनम्। तत्रेष्टवेदिफलं २०७६३ एकचत्वारिंशता गुणितं ८५०१७६ अस्माच्चतुर्विंशत्या भक्ते लब्धं ३५४२४ अस्य मूलं १८८/१/५ इदमेव पद्मिनीवेदीव्यासः। अस्य सूक्ष्मचतुरस्रज्या १३३ अस्य वर्गः १७६८९ इदं मध्यचतुरस्रफलं अचतुरस्रबाह्यात्रिकोणफलं यथा चतुरस्रज्या १३३ अनयोनव्यासार्धं लम्बः। बहिस्त्रिकोणस्य भुजद्वयकोणद्वयस्य च समत्वात्तद्द्वयोर्योगे यच्चतुरस्रं तदपि समचतुष्कोणं अतस्तच्चुरस्रस्य कर्णावपि समावेवास्यार्धं ऊनव्यासार्धं च समानमेव भूम्यर्धमपि तत्समम्।

॥'तथा च न्यासः'॥

व्यासः अस्य सूक्ष्मचतुरस्रज्या १३३ अनयोनव्यासः ५५/१/५ अस्यार्धं २७/४/६/४ लम्बः भूम्यर्धमपि लम्बसमं २७/४/६/४ अनयोर्घातः ७६१/३/३/१ चतुर्गुणः ३०४७/३/०४ चतुरस्रफले युक्तं जातं सर्वं फलं २०७३६/३/०/४ स्वल्पान्तरत्वाददोषः॥४६॥[2]

अथ प्रकारान्तरेण वक्ष्यमाणपद्मकुण्डाकृतिपद्मिनीवेदीमिन्द्रवज्रावृत्तेनाह—

वेदीति। इष्टवेदी फलमेकोत्तरशतेन निघ्नं

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ११,१२।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - १३,१४।

दानोत्सर्गप्रतिष्ठासु वेदीमध्ये प्रकीर्तिता।
प्राच्यामुदीच्यां शान्तौ वा मुकुरोदरवत्समा।।४८।।

तस्माच्चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतेन भक्ताद्यन्मूलं तत् व्यासो भवेत्। तेन व्यासेन वक्ष्यमाणं यद्द्वितीयपद्मकुण्डं तदाकृतिः पद्मिनीवेदीः स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। तत्र गुणकः १०१ भाजकः १४४ इष्टवेदीफलं २०७३६ गुणकेन १०१ गुणितं २०९४३३६ भाजकेन भक्ते लब्धं १४५४४ अस्य मूलं १२०/४/६ अस्याष्टास्त्रिज्या द्विद्वीत्यादिना ४६/१/१ अस्या दलं २३/०/४/४ व्यासदलं ६०/२/३ अष्टास्त्रिज्यार्धवर्गः ५३२/२ व्यासार्धवर्गः ३६३५/५/६ वर्गयोरन्तरं ३१०३/२/३ अस्य सूक्ष्ममूलं लम्बः ५५/५/४ लम्बगुणमष्टास्त्रिज्यार्धं १२८४/५/६ अष्टगुणमिदं १०२७७/६ जातमिदं मध्याष्टास्त्रिफलं। अथाष्टास्त्रिज्यैव द्विगुणा धनुर्वृत्तव्यासः ९२/२/२ अस्य परिधिः २९०/०/४ अस्य त्र्यस्त्रिज्या त्रिट्वयङ्केत्यादिना ७९/७/२/६। अस्या दलं ३९/७/५/३ अष्टास्त्रिज्याचतुर्थांशोनो धनुर्वृत्तव्यास एव लम्बः ६९/१/५ लम्बगुणं धनुर्वृत्तान्तस्त्र्यस्त्रफलं २७६५/४/६/२ अथ वृत्तक्षेत्रे परिधीत्यादिना धनुर्वृत्तफलं ६६८९/४/४ अस्मात् त्र्यस्त्रफलमूनं ३९२४/ अस्य त्र्यंशः १३०८ इदमेव धनुः फलं अष्टगुणं १०२७७/६ अष्टास्त्रिफले युक्तं जातं २०७४१/६ अत्र पञ्चाङ्गुलमधिकं तददोषायेति।।४७।।[१]

अथ कर्मविशेषे वेदिस्थलान्यनुष्टुभाह—**दानेति।** दानं तुलापुरुषदानादि। उत्सर्गो नूतनकृतजलाशयादौ स्नानपानाद्यधिकारार्थं कर्मविशेषः। प्रतिष्ठा शिवादिस्थापनं एतेषु कर्मसु मण्डपमध्ये वेदी कथिता। तथा शान्तौ ग्रहयज्ञादौ प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि तथोदीच्यां वा। सा दर्पणोदरवत् सम्यगाभा यस्याः। दर्पणोदरवत्सुमतेत्यर्थः। तदुक्तं मात्स्ये दानान्युपक्रम्य—

सप्तहस्ता भवेद्वेदी मध्ये पञ्चकराथवा।। इति।

तथोत्सर्गं प्रकृत्य तत्रैव—

चतुर्हस्तां शुभां वेदिं चतुरस्त्रां चतुर्मुखाम्।

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - १५,१६।

स्तम्भाः षोडश यज्ञदारुजदृढा वेदेर्विदिक्ष्वायता-
श्चत्वारोऽष्टकरा बहिः शर ५ करास्ते खण्डकोणेष्विनाः।
चूडाभिः सहिताश्च तन्निखननं सर्वत्र पञ्चांशकं
द्वात्रिंशद्वलिकाः समाश्च सबिलाः कार्यास्ततोऽन्तद्वये॥४९॥

यथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।।
वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखला।। इति।

प्रतिष्ठाविधौ तत्रैव—

हस्तान् षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः।
मध्ये वेदिकाया युक्तं परिक्षिप्तः समन्ततः।। इति।

अथ ग्रहशान्तिं प्रकृत्य गोभिलः—

कुण्डस्य प्रागुदीच्यं वा प्राच्यामुत्तरतोऽपि वा।
चतुर्हस्तं चतुर्द्वारं कर्तव्यं ग्रहपीठकम्।।इति।

पीठं वेदी:।।४८।।

अथ मण्डपस्तम्भान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—**स्तम्भा इति।** यज्ञदारुः पलाशादि तस्माज्जाता उत्पन्नाश्च ते दृढा एतादृशाः स्तम्भा षोडशसंख्याकाः कार्या इत्यन्तेनान्वयः। ते वेदेर्विदिक्षु विदिशासु अग्न्यस्रपवाय्वीशानेषु आयता दीर्घाश्चत्वारोऽष्टकराः। तथा बहिः मण्डपबाह्यदेशे खण्डकोणेषु ते स्तम्भा इनाः द्वादशसंख्याकाः शरकराः पञ्चकरमिता इत्यर्थः। ते चूडाभिः शिखाभिः सहिताः मूलस्थूलत्वापेक्षयाग्रे सूक्ष्मा इत्यर्थः। तेषां स्तम्भानां निखननं भूमौ प्रवेशनं पञ्चांशकम्। पञ्चमांशभूमौ प्रवेशयेदिति यावत्। सर्वत्रेत्यनेन यत्र यत्र निखननं तत्र तत्र पञ्चांशकमित्यर्थः। ततस्तदनन्तरं द्वात्रिंशद्वलिकाः स्तम्भोपरि देयानि काष्ठविशेषाणि ताः अन्तद्वये द्वयोरप्यन्तयोः सविलाः विलेन सहिताः। सच्छिद्रा इत्यर्थः। समा इत्यनेन स्तम्भवत्सचूडका न भवन्तीति। यज्ञदारूण्याह ब्रह्मपुराणे—

पलाशाश्वत्थन्यग्रोधप्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः।
श्रीपर्ण्युदम्बरो बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा।।
शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः।। इति।

अन्तःस्तम्भमुखेषु ताश्च विककुप्प्रान्ताश्चतस्त्रस्तिर-
श्चीनाः ऊर्ध्वमुखा निधेहि सुदृढे काष्ठे तु कूटाह्वयोः।
सूर्या १२ श्चापि बहिःस्थितेष्विन १२ मितस्तम्भेषु पूर्वापरा
देया द्वादशदक्षिणोत्तरगता दिक्तः कृशानोः स्थिताः॥५०॥

शारदातिलकेऽपि—

षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यमाः।
अष्टहस्तसमुच्छ्रायसंख्याश्चूडासमन्विताः।।

अष्टहस्तसमुच्छ्रायाः संस्थाप्या द्वादशैव ते।
पञ्चहस्तप्रमाणा वै निश्छिद्रा ऋजवः शुभाः।। इति।

वास्तुशास्त्रे पञ्चमाशं न्यसेद्भूमौ सर्वसाधारणो विधिरिति॥४९॥

अथ स्तम्भोपरि बलिकानिवेशनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—**अन्तरिति।** ताः पूर्वोक्ता बलिकाश्चतस्रः विककुप्प्रान्ता विदिक्षु प्रान्ता यासां ताः अन्तः स्तम्भशिखासु वेदिकोणस्थस्तम्भचतुष्टये तथा चतस्रः तिरश्चीनाः कर्णाकारा इत्यर्थः। ऊर्ध्वमुखानि यासां ताः सुदृढ़े कूटाह्वये शिखराह्वये काष्ठे मध्यवेद्युपरि बलिकानिवेशनार्थं यत्काष्ठं तस्मिन्निधेहि। प्रवेशयेत्यर्थः। सूर्याः द्वादशबलिकाः बहिः स्थितेषु इनमितस्तम्भेषु द्वादशस्तम्भेषु पूर्वापराः प्राक्प्रत्यक्प्रान्ताः तथा द्वादशबलिका दक्षिणोत्तरगताः अवागुदक्प्रान्ता देयाः निवेशनीया इत्यर्थः। ता बलिकाश्च कृशानोरग्नेर्दिक्तः स्थिताः स्युरित्यर्थः। तदुक्तं कुण्डकल्पलतायाम्—

मध्यस्तम्भास्तु ये वेदसंख्याश्चूडान्वितास्तथा।
बलिकामूर्धतस्तेषां न्यस्य मध्योच्छ्रितं सृजेत्।।
द्वादशानामपि तथा चूडासु बलिका न्यसेत्।।
मण्डपायामविस्तारा मध्यस्तम्भाग्रतो न्यसेत्।।

कोणस्तम्भाग्रसंलग्नाश्चतस्रो बलिकाः पुरा।
द्वे द्वे तूभयतोऽन्ये च तासां स्तम्भग्रसंहिते।।
बलिका अपि संस्थाप्याः कृतोपर्पं कुशाकृतिः।।इति॥५०॥

स्तम्भानां नहि षोडशत्वकथनं खव्योमचन्द्रे १०० करे
तत्र स्युस्त्विह मण्डपार्धविमिता मध्यास्तु रामां ३ शतः।
बाह्याश्चेदपरास्ततोऽपि लघवः स्युश्चार्थतः स्यान्मिति-
स्तद्वद्द्वारमपीह मध्यलवतः स्यात्पञ्चमांशेन च॥५१॥

अथ शतहस्तमण्डपादौ स्तम्भव्यवस्था शार्दूलविक्रीडितेनाह— **स्तम्भानामिति।** शतहस्ते मण्डपे स्तम्भानां षोडशत्वकथनं तन्नहि। तत्र तु इह मण्डपार्धेन विमिताः। मध्याः मण्डपतृतीयांशेन। बाह्याः स्युश्चेदपरा अपि स्तम्भाः ते ततोऽपि पूर्वस्तम्भापेक्षया लघवः न्यूनाः स्युरित्यर्थः। अर्थतः मितिर्मानः स्यात्सर्वत्र। अर्थात्परिमाणमिति सूत्रात्। तद्वद् द्वारमपि वक्ष्यमाणं मण्डपद्वारमपि मध्यभागतः पञ्चमांशेन यथा शतहस्तमण्डपे मध्यभागो विंशतिहस्तः तत् पञ्चमांशश्चतुर्हस्तस्तन्मितं द्वारं स्यादित्यर्थः। तथा च कुण्डकल्पलतायां पञ्चरात्रे—

मण्डपार्धोच्छ्रितं वेदसंख्यांश्चूडासमन्वितान्।

तथा—

स्तम्भान्समं च संस्थाप्य स्तम्भद्वादशकं पुनः।
बाह्ये पीठप्रमाणेन तत्र तत्र विभागतः॥ इति।

अस्यार्थः कल्पलतायाम्—

मण्डपार्धप्रमाणेन मध्यस्तम्भनिवेशनं दशहस्तमारभ्य शतहस्तपर्यन्तं समानमेव। दशहस्ताद्यो वेति वाक्येन दशहस्तस्यैव विधानात्। तन्न्यूनेषु त्रिहस्तादिनवहस्तान्तेषु स्तम्भपरिमाणार्थिकम्। समवेधेन बाह्यस्तम्भ-परिमाणमाह—

स्तम्भद्वादशकमिति। द्वादशकमिति द्वादशेत्युपलक्षणम्। विस्तरे तु यथाशोभमपरा अपि धारका इति स्मरणात्। बाह्ये बाह्यपरिधौ। स च द्विभूमिके द्वितीयस्त्रिभूमिके तृतीयश्चतुर्भूमिके चतुर्थ इत्याद्यूह्यम्। तथा तत्रैव तन्निवेश-स्थानामाह गौतमीये। तत्र तत्र विभागत इति। अत्रापि पीठप्रमाणेनेत्यनुषज्यते। ततश्च पीठप्रमाणेन तृतीयांशेन विभागः। तत्र स्तम्भा निवेश्याः। सूत्रविभागत इति पाठे तु स्पष्टमेव। त्रिहस्तमारभ्य नवहस्तपर्यन्तं अर्थापरिमाणमिति न्यायेन

त्रिहस्तात्सप्तान्तं नहि भवति भूमेर्विभजनं
गजा ८ त्रेधा धृत्यन्त १८ मपि नखतो २० ष्टाश्वि २८ विमितम्।
शरै ५ स्तद्वत्खाग्नेः ३० शरहय ७५ मितान्तेऽपि च हयैः ७
शते हस्ते दिग्भि १० स्त्वथ च गुणसम्पातविमितान्।।५२।।

ऋत्विक्प्रचारयोग्यं स्तम्भपरिमाणं कल्पनीयम्। तथाग्रेऽपि तत्रैव। तथाऽपराजित-पृच्छायां दशानने कोटिहोमे—

मण्डपे मध्यमाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः।
समन्ततस्त्रिभागेन परितो द्वादशापरा।। इति।

भागेन चतुर्थांशेनेत्यनुकल्पः। द्वयानने च 'शालवृक्षोद्भवाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः'।

'समन्ततस्त्रिभागेन द्वादशान्ये च वेदितः' इत्युक्तत्वात्। षट्त्रिंशत्स्तम्भेषु तु मण्डपे बाह्यपरिधिस्थानां स्तम्भानां मण्डपत्रिभागेनैव परिमाणं मध्यस्तम्भचतुष्टयस्य मण्डपार्धेन मध्यपरिधिस्थानां तु मध्यस्तम्भापेक्षया न्यूनत्वं अन्त्यस्तम्भापेक्षया चाधिक्यं युक्त्या कल्पनीयमित्युक्तं प्राक्। एवं चतुर्भूमिकस्तम्भादावित्यन्तमुक्तम्। तथाग्रेऽपि तत्रैव।

अथ द्वारपरिमाणम्। मन्त्रमुक्तावल्याम्—

दिक्षु द्वाराणि चत्वारि विदध्यात्पञ्चमांशतः।।

पञ्चमांशो मध्यसूत्रस्येत्यारभ्य मध्येऽन्यमतमुकत्वाग्रे चत्वारीत्यस्य मन्त्रमुक्तावलीवाक्यस्य तदितरमण्डपविषयत्वमित्यन्तमुक्तम्। अन्यमण्डपः शतहस्तादिः।।५१।।

अथ कस्मिन् मण्डपे कति भूमिगाथा कियत् स्तम्भा इत्यादिशिखरिणी-वसन्ततिलकाशिखरिणीभिराह—**त्रीति।** त्रिहस्तमण्डपमारभ्य सप्तहस्तमण्डपान्तं भूमेर्मण्डपभूमेर्विभजनं भागो नहि भवति तथाष्टहस्तादष्टादशहस्तान्त त्रेधा विभागः प्रागपरोदग्दक्षिणसूत्राभ्यां त्रिधा विभागः। तथा विंशतिहस्तादाष्टाविंशतिहस्तान्तं पूर्ववत् शरैः पञ्चभिर्विभागः। तद्वत् त्रिंशद् हस्तात् पञ्चसप्ततिहस्तान्तं हयैः सप्तभिर्विभागः। शते हस्ते मण्डपे तु दिग्भिर्दशभिर्विभाग इत्यर्थः। अथ च उक्तवद्भागेषु कृतेषु ये सूत्रसम्पाता भवन्ति तद्विमितान् स्तम्भान् विनिवेशयेदित्युत्तरेणान्वयः।

तथा हि—सप्तहस्तान्तमण्डपे भूमिविभागात्सम्पाताभाव एव, तत्रापि बाह्याश्चत्वारः स्युः बाह्ये चेति वक्ष्यमाणत्वात्। तथाष्टाद्यष्टादशपर्यन्तं चत्वारः

सर्वांश्च पूर्वगदितेन सुलक्षणेन
ताँल्लक्षितान् हि गुणसन्धिषु मण्डपस्य।
बाह्ये च सूत्रपरिपूर्तिसमानदेशे
संवेशयेदथ च वच्मि मितिं हि तेषाम्।।५३।।

हयान्तं ७ चत्वारस्तदुपरि नृपा १६ हयाधृति १८ मितं
ततः षट्त्रिंशत्स्याद् वसुनयन २८ हस्तां तमपि च।
ततो बाणाश्वान्तं ७५ जलनिधिरसाः६४ स्युस्त्विह शते
[1]धरित्रीसूर्या १२१ स्ते कु १ यम २ गुण ३ वेदा ४ भ्रकु १० भुवः१।।५४।।

सूत्रसम्पाताः बाह्या द्वादशं विंशत्यारभ्याष्टाविंशतिपर्यन्तं षोडशसूत्रसम्पाताः बाह्या विंशतिः। त्रिंशदारभ्य पञ्चसप्ततिपर्यन्तं षट्त्रिंशत् सूत्रसम्पाताः बाह्या अष्टाविंशतिः। तेन सम्पातस्तम्भबाह्यस्तम्भयोगे या संख्या भवति साग्रे स्वयमेव वक्ष्यति।।५२।।

सर्वानिति। सर्वान् स्तम्भान् पूर्वगदितेन सुष्ठुलक्षणेन लक्षिता गुणसन्धिषु मण्डपस्य बाह्ये सूत्रसमाप्तिसमानदेशे च तान् स्तम्भान् संवेशयेत्। दृढं स्थापयेदित्यर्थः। अथ च तेषां उक्तस्तम्भानां मितिं संख्यां वच्मि कथयामीत्यर्थः।।५३।।

हयेति। सप्तहस्तमण्डपान्त चत्वारः स्तम्भाः। तदुपर्यष्टहस्ताद्यष्टादशान्त नृपाः षोडश। ततो विंशत्यारभ्याष्टाविंशतिपर्यन्तं षट्त्रिंशत्। ततः त्रिंशदारभ्य पञ्चसप्ततिपर्यन्तं जलनिधिरसाः चतुःषष्टिः स्यादित्यर्थः। शते हस्ते धरित्रीसूर्याः एकविंशत्युत्तरशतं स्तम्भाः स्युरित्यर्थः। तैः स्तम्भैः क्रमेण सप्तहस्तान्तं एकभूः। ततोऽष्टाद्यष्टादशान्तं द्विभुः। ततो विंशत्याद्यष्टाविंशत्यन्तं त्रिभूः। ततस्त्रिंशदारभ्य पञ्चसप्ततिपर्यन्तं चतुभूरित्यर्थः। शतहस्तमण्डपस्तु दशभुः सर्वमते स्यात्। तत्रापि मध्यकोष्ठचतुष्टयस्यैकीकरणेन पञ्चभूरपि सैव भवतीत्यर्थः। यदा कोष्टचतुष्टयैकीकरं तदा विंशत्युत्तरशतं स्तम्भा इति बुद्धिमतोह्यम्। तदुक्तं कल्पलतायाम्—

चतुरस्रं समं शुद्धं भुजकर्णविशोधितमित्यादि वाक्यैस्त्रिहस्तादयो नवहस्तान्ता मण्डपा उक्तास्तेषां मध्ये सप्तहस्तान्तानां नामाकारविशेषस्यानुक्तत्वात्षोडशादिस्तम्भनिवेशासम्भवादौचित्याच्च चतुःस्तम्भत्वमेव युक्तम्।

उक्तं च सिद्धान्तशेखरे—एकभौमं द्विभौमं वा त्रिभौमं पञ्चभूमिकमिति। वा शब्दाच्चतुर्भूमिकमपि। एकभौमत्वं चतुःस्तम्भमण्डपानामेव सम्भवति। अष्टहस्तमारभ्याष्टादशहस्तपर्यन्तं षोडशस्तम्भत्वम्। विंशतिहस्तमारभ्याष्टाविंशतिहस्तपर्यन्तं षट्त्रिंशत्स्तम्भत्वम्। त्रिंशद्धस्तमारभ्य चतुःषष्टिस्तम्भत्वं तादृशपरिमाणस्तम्भासम्भवे षोडशस्तम्भत्वमेव वा। सर्वेषां यथावचनं व्यवस्था। सा चाग्रे दर्शयिष्यते। तेषां नामान्यपि तत्रैवोक्तानि—

घनो घोषो विराजश्च काञ्चनः कामराजकः।
सुघोषो घर्घरो दक्षो गहनो नव मण्डपाः।। इति।

तथा—

चत्वरिंशत्करा भूमिः पञ्चाधिक्येन विभ्रमः।
पञ्चाशत्करविस्तारो विपुलो विपुलास्त्रयः।। इति।

विपुलास्त्रय इति पञ्चाशत्करपञ्चसप्ततिहस्तः शतहस्तश्चेति। तत्र पञ्चसप्ततिहस्तो जपाभिषेकं पञ्चसप्ततिहस्ते वेद्याम्नानात् सिध्यति। शतहस्तस्तु हेमाद्रौ शान्तिकाण्डेऽभिहितः—

भूमिभागे समे शुद्धे प्रागुदक्प्रवणे तथा।
पुण्याहं वायचेत्पूर्वं कृत्वा विप्रान् सुपूजितान्।।

ततस्तु सहितो विप्रैः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम्।
उत्तमं शतहस्तं तु तदर्धेन तु मध्यमम्।।

जघन्यं च तदर्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षयेत् ।। इत्यन्तमुक्तम्।

तथा तत्रैव सिद्धान्तशेखरमते तु षोडशहस्तादीनां मण्डपानां कनिष्ठत्वादिकमुक्त्वा स्तम्भसंख्यान्तरमप्युक्तम्।

षोडशस्तम्भसंयुक्तं षट्त्रिंशत्स्तम्भसंयुतम्।
चतुःषष्ट्यङ्घ्रिसंयुक्तं मण्डपावाधमादिकम्।। इति।

अङ्घ्रयः स्तम्भाः। शतहस्तादिना रचनाप्रकारस्तु प्रतिपदोक्त एव। प्रयोजनवशाच्छतहस्ताधिकप्रमाणे मण्डपे यथाशोभमधिका अपि स्तम्भाः कर्तव्या इत्युक्तम्। हेमाद्रौ भविष्यपुराणे—

१. क्विना १२१ वात्रेना क्व १ शिव २ गुण ३ निगमा ४ शा १० शुग ५ भुवः इति पाठान्तरम्।

दशाङ्गुलैः सम्मितसूत्रकेण मितस्तु संवेष्टशालिनस्ते।
अथापि सर्वे कुगुणेन ३१ तेन संवेष्ट्यमाना इति पद्धतिकृत्॥५५॥

यद्यप्ययुक्तं कल्पवल्लीकृतापि स्तम्भानां वै मण्डपार्धादिमानम्।
अत्युच्चत्वात्पद्धतिकृन्मते नो तस्मादत्र प्रोच्यते तन्मतेन॥५६॥

मण्डपं तु दशधा विभज्य वै यत्र यत्र च भवेद्गुणसन्धिः।
तत्र तत्र विनिवेशयेद् दशहस्तकानपि बहिः शरहस्तान्॥५७॥

चतस्रो धारिका कोणे द्वे द्वे द्वारेषु पार्श्वयोः।
विस्तारे तु यथाशोभमपरा अपि धारिका।। इति।

धारिकाः स्तम्भाः ते च स्तम्भा उक्ताः पञ्चरात्रे—

सारदारुद्भवान् स्तम्भान् दृढान् कुर्यादृजून्समान्।। इति।

कालोत्तरेऽपि—

स्तम्भा यज्ञियवृक्षस्य शोभना ऋजवः शुभाः।
अलाभे यज्ञकाष्ठानां सारदारुमया शुभाः।।

कर्तव्या दारुमात्रस्य तदलाभेऽपि यत्नतः।। इति॥५४॥

अथ स्तम्भस्थूलतामुपेन्द्रवज्रयाह—**दशेति।** ते सर्वे पूर्वोक्ता वक्ष्यमाण-तोरणस्तम्भा अपि दशाङ्गुलसूत्रेण संवेष्टनयोग्याः स्युरिति शेषः कुण्डोद्योतेऽप्येव-मेवोक्तम्। पद्धतीकृत् कोटिहोमपद्धतीकारः तेन, सूत्रेण कुगुणेनैकत्रिंशदङ्गुलात्मकेन वेष्टनयोग्याः स्युरित्याहुरित्यर्थः। तथा च शारदातिलके—

दशाङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः इति। तथात्र पद्धतिरपि। परिणाहो विशालता। ज्योतिःशास्त्रप्रकारेण चैकत्रिंशदङ्गुलपरिधिसूत्रेण स्थूलता ज्ञेयेति। अत्रोत्तमाधममण्डपेन व्यवस्था ज्ञेयेति मम प्रतिभाति॥५५॥

अथ पद्धतिकृन्मतेन शतहस्तमण्डपकरणं शालिन्युपजाति-काभ्यामाह—**यद्यपीति।** यद्यपि कुण्डलताकारेण स्तम्भानां मण्डपार्धादिमानं यत्पूर्वमुक्तं तदत्युच्चत्वात् कोटिहोमपद्धतीकारमते नो नः सम्मतमित्यर्थः। तस्मादत्र ग्रन्थे तन्मतेन पद्धतीकृन्मतेन तत्करणं प्रोच्यत इत्यर्थः॥५६॥

मण्डपमिति। मण्डपं शतहस्तमण्डपं दशधा पूर्वपश्चिमदक्षिणोदक्सूत्रैर्दशधा विभज्य तेन दशदशहस्तपरिमितानि शतकोष्ठानि भवन्ति। तेषु यत्र-यत्र स्थाने गुणसन्धिः सूत्रसम्पातो भवति तत्र-

द्वाराणि दिक्षु द्विकराणि चाल्पे मध्ये तु वेदाङ्गुलवर्धितानि।
श्रेष्ठे तु नागाङ् ८ गुलवृद्धिरुक्ता तं छादयेत्तानि तु वर्जयित्वा।।५८।।

वंशैस्ततश्च सरलैः सुकटैरथापि तं नारिकेलकदलैरथवापि पद्मैः।
स्थूणाः सुचामरसुदर्पणकैरथापि सम्भूषयेत्तु सुपटैरथ घण्टिकाभिः।।५९।।

तत्र तस्मिंस्तस्मिन् स्थाने दशहस्तान् स्तम्भान् विनिवेशयेत्। बहिरपि शरहस्तान् पञ्चहस्तान् स्तम्भान् विनिवेशयेदित्यर्थः।

तथा च कोटिहोमपद्धतिः। तत्र शतहस्ते मण्डपे बहिः पञ्चहस्तान् स्तम्भान् मध्ये स्तम्भचतुष्टयमष्टहस्तं दशहस्तं वा दत्त्वा मध्ये द्वादशहस्तोपरि मध्यस्तम्भसमांस्तम्भान् दत्त्वोपरि तिर्यक्काष्ठानि दद्यात्। ततो मध्यस्तम्भचतुष्कोपरि किञ्चिदुच्चं कुर्यात्। अस्या शास्त्रीयत्वेऽपि सौकर्यार्थत्वादिति। दशमुखद्विमुखादौ तु पूर्वोक्तवदिति ज्ञेयम्।।५७।।

अथ कनिष्ठादिमण्डपेषु द्वाराणीन्द्रवज्रयाह—**द्वाराणीति**। मण्डपस्य द्वाराणि दिक्षुपूर्वाऽवाक्प्रत्यगुदक्सु कुर्यात् मण्डपे तान्यल्पे कनिष्ठे द्विकराणि द्विहस्तोन्मितानि। मध्ये मध्यममण्डपे वेदाङ्गुलैश्चतुरङ्गुलैर्वर्धितानि। श्रेष्ठे उत्तममण्डपे तु नागाङ्गुलैरष्टाङ्गुलैर्वृद्धिर्वर्धनं उक्ता कथितेत्यर्थः। तानि द्वाराणि वर्जयित्वा तं मण्डपं छादयेदित्यर्थः। तदुक्तं पञ्चरात्रे—

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं चतुरङ्गुलवृद्धितः।।

मध्यमोत्तमयोरिति। क्रियासारे—

आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारजं तु सर्वतः।। इति।।५८।।

अथ मण्डपाच्छादनं वसन्ततिलकयाह—**वंशैरिति**। ततो द्वारकरणानन्तरं सरलैः ऋजुभिः वंशैर्वेणुभिः सुकटैः 'चटाई' इति भाषायाम्, इति ख्यातैस्तृणकृतपट्टिकाविशेषैरथापि नारिकेलकदलैः पत्रैरथवा पद्मैः कमलैः तं मण्डपमाच्छादयेदिति पूर्वेणान्वयः। स्थूणाः स्तम्भान् सुदर्पणकैः सुष्ठु आदर्शैः सुपटैः सुवस्त्रैर्घटिकाभिश्च सम्भूषयेच्छोभायुक्तान् कुर्यादित्यर्थः। तदुक्तं क्रियासारे—

नारिकेलदलैर्वापि पङ्कजैर्वाथ वेणुभिः।
आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जं तु सर्वतः।। इति।

वास्तुशास्त्रे—

"कटैः सद्भिश्च संछाद्या विजयाद्याश्च मण्डपाः" इति।

तस्मात्करे वा द्विकरेऽपि हस्तैर्दीर्घाणि वाहा ७ ङ्ग ६ शरै ५ स्तु काष्ठैः।
अश्वत्थयज्ञाङ्गजटीवटानां श्रेष्ठादिषु स्युः खलु तोरणानि॥६०॥

द्विकराण्यायतान्यल्पे मध्यमोत्तमयोरपि।
षट्द्वादशाङ्गुलैः कुर्याद् वर्धितानीह दिक्षु च॥६१॥

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रैर्विभूषयेत्॥ इति।

अथ "स्थूणाः स्यात् सूर्म्या स्तम्भे गृहस्य च, इति मेदिनी॥५९॥

अथ तोरणानीन्द्रवज्रयाह—**तस्मादिति।** तस्मान्मण्डपात्करे हस्तान्तरे द्विहस्तान्तरे वा पञ्चषट्सप्तहस्तैर्दीर्घाणि अश्वत्थः पिप्पलः यज्ञाङ्ग औदुम्बरः जटी प्लक्षः वटो न्यग्रोधस्तेषां काष्ठैः श्रेष्ठादिषु मण्डपेषु तोरणानि बहिर्द्वाराणि कुर्यादित्यग्रेणान्वयः।

उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः।

प्लक्षो जटी पर्कटी स्यात् तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारमिति चामरः। तदुक्तमाग्नेये—**पञ्चषट्सप्तहस्तानि खाताद्धस्ते स्थितानि तु॥** इति।

पिङ्गलामते—

हस्तद्वयं बहिस्त्यक्त्वा तोरणानि निवेशयेत्॥ इति।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि च।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्॥ इति।

द्वाराणि तोरणानि॥६०॥

अथ तोरणमध्यावकाशमनुष्टुप्वृत्तेनाह—**द्विकरेति।** तानि तोरणानि द्विकराण्यायतानि , द्विकरपरिमितायामानि . अल्पे कनिष्ठमण्डपे मध्यमोत्तममण्डपयोस्तानि षडङ्गुलैर्द्वादशाङ्गुलैश्च वर्धितानि दिक्षु चतुर्दिक्षु कुर्यादित्यन्वयः। मध्यमे मण्डपे षडङ्गुलोत्तरद्विहस्तानि। उत्तमे द्वादशाङ्गुलोत्तरद्विहस्तानीत्यर्थः। तदाह वसिष्ठः—

कनिष्ठमण्डपे कुर्याद्विकरायतिकानि च।
करपादार्धमानेन वृद्ध्या मध्योत्तमेषु च॥

इति कल्पलतायाम्॥६१॥

प्राच्यादिदिक्षुपरितो मनोज्ञं चूडासु ज्ञेयं फलकं हि तेषाम्।
तदर्धमानं तु निवेशनीया मध्ये सजातीयकदारूकीलाः॥६२॥

अल्पादिकेदि १० ग्रवि १२ शक्र १४ पर्वै-
र्दीर्घास्तताः स्वङ्घ्रिमिता मनोज्ञाः।
विष्ण्वा युधाभा अथ विष्णुयागे
शैवे त्रिशूलाश्च धरा१ङ्गुलोनाः॥६३॥

अथ तोरणे फलकत्रिशूलादिनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह—**प्राच्यादीति।** प्राच्यादिचतुर्दिक्षु तेषां तोरणानां चूडासु शिखासु उपरितः मनोज्ञं सुन्दरं फलकं काष्ठकृतफलकाकारं तस्मात्तोरणदैर्घ्यादर्धमानं मितिर्यस्य तद्देयं निवेशनीयम्। ततस्तदनन्तरं तोरणसजातीयकाष्ठानां कीलाः इह फलकमध्ये निवेशनीया इत्यर्थः। अर्थात्फलकस्येति। तदुक्तं शारदातिलके—

तिर्यक् फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्धमानतः।। इति।

महाकपिलपञ्चरात्रे—

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
सर्वविघ्नविनाशार्थं रक्षार्थं चाध्वरस्य च।। इति॥६२॥

अथ कीलानां मानमिन्द्रवज्रयाह—**अल्पेति।** अल्पमध्यश्रेष्ठमण्डपेषु दशद्वादशचतुर्दशपर्वैरङ्गुलीभिर्दीर्घाः स्वाङ्घ्रिणा स्वचतुर्थांशेन मितास्तताः विस्तृताः कीलाः। विष्णुयागे विष्णुयजने विष्ण्वायुधाभाः विष्ण्वायुधानि शङ्खचक्रगदाम्बुजानि तदाभास्तद्वदाकाराः। शैवे शिवयजने तु सर्वेऽपि त्रिशूलाकाराः धराङ्गुलोना एकाङ्गुलोनाः। विष्ण्वायुधापेक्षयेति शेषः।

एतादृशाः स्वजातीयकं तोरणकाष्ठजातीयकं यद्दारु काष्ठं तस्य कीलाः। निवेशनीया इति पूर्वेणान्वयः। तदुक्तं वास्तुशास्त्रे—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खचक्रगदाम्बुजम्।
मानादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।। इति।

पिङ्गलामते—

शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके।
शूले नवाङ्गुलं दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः॥ इति॥६३॥

अथापि विष्णोर्यजने सुचक्रं
त्रिशूलकांस्त्रीनथ वा शिवस्य।
करेण दीर्घान् कुरु यस्य यज्ञ-
स्तदायुधान्येव नृपाङ्गुलै १६ र्वा॥६४॥

अथापि हि तोरणानि वा स्यु-
स्तत्वधमेऽपि करेण चौच्यमेषाम्।
द्विकरौच्चयमितः समे वरे स्यात्
फलकं तु तदर्धताधिकं वा॥६५॥

अथ कीलानां निवेशने विकल्पानुपेन्द्रवज्रयाह—**अथेति।** अथ विष्णुयजने एकं चक्रमेव सर्वत्र कुरु। तथा शिवस्य यजनेऽपि करेण दीर्घास्त्रीं स्त्रिशूलान् प्रति तोरणं कुरु अथवा यस्य यज्ञस्तदायुधानि षोडशाङ्गुलैर्दीर्घाणि कुर्वित्यर्थः। यथा गणेशस्याङ्कुशादि। तदुक्तं हयशीर्षे—

तोरणस्तम्भमूलेषु कलशान् मङ्गलाङ्कुरान्।
प्रपद्यादुपरिष्ठात्तु कुर्यात् क्षेत्रं सुदर्शनम्।। इति।

मन्त्रमुक्तावल्याम्—

अग्रयोर्मध्यभागे च पट्टिकायां त्रिशूलकान्।। इति।

क्रियासारेऽपि—

तोरणं घटयित्वैवं मूर्ध्नि शूलत्रयं न्यसेत्।।

शूलं हस्तायतं तेषामिति। अपराजितपृच्छायां तु विशेषः—

यद्दैवत्यः क्रतुः कार्यो वाहनान्यायुधानि वा।
तत्र तस्य न्यसेद्धीमानङ्गुलैः षोडशाधिकैः।। इति॥६४॥

अथ तोरणविकल्पानेकरूपभुजङ्गप्रयातवृत्ताभ्यामाह—**अथवेति।** तोरणानि वा स्युरित्यर्थः। एषां तोरणानां औच्च्यं उच्चतां अधमेऽपि मण्डपे करेणैकहस्तेन इतो मण्डपद्वारात् समे मध्यमे वरे श्रेष्ठे द्विकरौच्च्यं स्यादिति। तत्फलकं तेषां फलकं तु तदर्धताधिकं वा उच्चतापेक्षया अर्धाधिकं वेत्यर्थः। तदुक्तं कुण्डकल्पलताधृताऽपराजितपृच्छायाम्—

वटोदुम्बराश्वत्थजटयुद्भवानि

ह्यलाभे शमीखादीराम्रैश्च वा स्युः।

तथैकेन वा यज्ञियेनैव कुर्या-

दिहैवोच्चतार्धस्तृतान्येव दिक्षु॥६६॥

तोरणान्यपि चत्वारि द्वारादधिकराणि तु।
परिधिस्तम्भतोच्चानि युगुलैर्युगुलैः करैः॥ इति।

द्वारादधिकरोन्तरं येषां तानि स्तम्भत उच्चानीति पदच्छेदः सन्धेश्छान्दसत्वादिति। युगुलैर्युगुलैरिति वीप्सा तु दशहस्तमारभ्य शताधिकहस्तमण्डपाभिप्रायेणेति। तथाग्रेऽपि तत्रैव। ततश्च द्वारापेक्षया तोरणस्य न्यूनताया लोकविरोध इत्यन्तमुक्तम्। शारदातिलके—

तिर्यक्फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्धमानतः॥ इति॥

कुण्डरत्नाकरस्तु—स्तम्भान्तरालतिर्यक्फलकमानयोस्तुल्यत्वेन फलक-निवेशासम्भवादसङ्गतमित्युक्तवांस्तत्र। चूडासु फलकनिवेशस्य इष्टार्थत्वेनार्थिक-त्वात्तदर्थमुक्ताधिककल्पनेऽपि दोषाभावादित्यन्तमुक्तं कल्पलतायाम्॥६५॥

वटेति। वटोम्बराश्वत्थप्लक्षोद्भवानि उक्तकाष्ठलाभे शमीखादिराम्रकाष्ठैरथ वैकेनैव यज्ञियेन यज्ञियवृक्षेण पूर्वोक्तचतुर्णां मध्ये एकेनैव तानि तोरणानि स्युरित्यर्थः। इह मण्डपे दिक्षु चतुर्दिक्षु उच्चतार्धस्तृतानि स्तम्भोच्चत्वा-पेक्षयार्धस्तृतानि विस्तृतानि अर्धाधिकानि वेति कुण्डकल्पलतामतं पूर्वमेवोक्तम्।

सिद्धान्तशेखरे—

न्यग्रोधतोरणं पूर्वे याम्ये त्वौदुम्बरं मतम्।

पश्चिमेऽश्वत्थसम्भूतमुत्तरे प्लक्षतोरणम्॥ इति।

क्रियासारे—

प्लक्षोदुम्बरजाश्वत्थवटजास्तोरणाः क्रमात्।

पूर्वादितो विधातव्या यद्वाद्यन्तविपर्ययः॥ इति।

वंशेष्वष्टौ ध्वजाश्च स्वहरिदभिमुखादिक्पवाहाङ्कितास्ते
दैर्घ्ये ये पञ्चहस्तास्ततिरपि गदिता हस्तयुग्मेन येषाम्।
वर्णैस्ते पीतरक्तासितविसितसिताश्वेतशुभ्रातिशुभ्राः
स्युश्चैते चाष्टदिक्षु प्रभवति नवमो मण्डपस्यैव मध्ये॥६७॥

सिद्धान्तशेखरे—

एकमेषामलाभे स्यात्तदभावे शमीद्रुमः।

खादिरो वा रसालश्च तालो वा तोरणे स्मृतः॥ इति।

तथा—

तोरणानां च सर्वेषामुच्छ्रायार्धेन विस्तृतिरिति, आग्नेयेऽपि तोरणं प्रकृत्य।

तदर्धविस्तृतानि स्युर्युतान्यग्रे ध्वजादिभिरिति॥६६॥

अथ ध्वजान् स्रग्धरावृत्तेनाह—**वंशेष्विति**। अष्टौ ध्वजा दिक्षु वंशेषु वेणुषु स्युरित्यन्वयः। ते ध्वजाः स्वहरितः स्वदिशः तासामभिमुखाः सम्मुखा इत्यर्थः। दिशः पान्तीति ते इन्द्रादयस्तेषां वाहाः वाहनानि गजादीनि तैरङ्किताश्चिह्निता इत्यर्थः। ये दैर्घ्ये दीर्घतायां पञ्चहस्ताः येषां ततिर्विस्तृतिर्हस्तद्वयेन गदिता कथिता। तेषां वर्णानाह। ते ध्वजाः वर्णैः पीतः प्रसिद्धः रक्तोऽरुणः असितः कृष्णः विसितोऽपि कृष्णः सितः श्वेतः अश्वेतोऽपि धूम्रः। अल्पत्वस्यापि नञर्थत्वात्। शुभ्रः श्वेतः अतिशुभ्रश्चापि श्वेत इत्यर्थः। नवमो ध्वजः मण्डपमध्ये एव भवति। तदुक्तं गरुडपुराणे—

पञ्चहस्ताध्वजाः कार्या वैपुल्येन द्विहस्तकाः। इति।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—

पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्तध्वजाः स्मृताः॥ इति॥६७॥

अत्युच्च्ये सुविचित्रितो गुणकरव्यासस्तु दीर्घस्तथा
हस्तैः स्याद् दशभिः सुचामरयुतप्रान्तेऽपि घण्टान्वितः।
दिक्पालास्त्रयुता दिगीशरुचयस्ताः स्युः पताकाः शुभा-
दैर्घ्यं सप्तकरं तथा यतिरथो तासां करेणोन्मिता॥६८॥

अथ पूर्वोक्तं नवमं ध्वजं पताकाश्च शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह— **अतीति।** सर्वध्वजवंशापेक्षया द्विगुणे त्रिगुणे वा वंशे सुष्ठु विचित्रितः। अनेकवर्णयुक्त इति भावः। त्रिकरैर्विस्तृतः तथा दशभिः करैर्दीर्घः स्यादित्यर्थः। सुष्ठु चामरेण युक्तं यत्प्रान्तं वंशस्याग्रं तस्मिन् घण्टयान्वितमित्यर्थः।

दिगिति। अथो पताकाः दिक्पालानामस्त्राणि शस्त्राणि तैर्युताश्चिह्निताः दिगीश्वरा इन्द्रादयस्तन्निभाः वर्णैस्तत्तुल्याः। तासां पताकानां दैर्घ्यं सप्तकरम्। तथा यतिर्विस्तृतिः करेणोन्मिता हस्तमात्रेत्यर्थः। एतादृश्यः पताकाः स्युर्भवेयुः। उक्तं च रुद्रप्रसादे—

एको महाध्वजः कार्यो मण्डपोपरि मध्यतः।
अत्युच्चो दशहस्तः स्याद् दीर्घस्त्रिहस्तविस्तृतः॥
चामरेण युतः शीर्षे प्रान्ते सक्षुद्रघण्टिकः॥ इति।

पताका अपि मात्स्ये—

लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात्॥

इति।

सारसङ्ग्रहेऽपि—

प्रतिकुण्डं पताकास्तु प्रोक्ताः शास्त्रार्थकोविदैः।
दीर्घास्ताः सप्तहस्ताः स्युः सप्तमांशेन विस्तृताः॥

लोकपालानुवर्णेनेति॥६८॥

पीतस्वर्णरुची ततोऽञ्जनरुची श्वेतः शुकाभः सितः
श्वेतश्चेति शतक्रतुप्रभृतयः स्युश्चोक्तवर्णाः शुभाः।
वज्रं शक्तिरथापि दण्डक इति स्युः खड्गपाशाङ्कुशाः
शस्त्राण्येव गदा त्रिशूल इति वै शक्रादिकानां क्रमात्॥६९॥

गजो हुडू रजस्वलो मरुत्पवश्च वल्कवान्।
कुरङ्गमो हयो वृषो दिगीशवाहनान्यमी॥७०॥

अथ लोकेशवर्णशस्त्राणि शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह—**पीतेति।** पीतश्च स्वर्णरुचिश्च तौ। अञ्जनं कृष्णवर्णोपलक्षकं कान्तिर्ययोः। ततः श्वेतः सितः शुकाभो हरितः सितः श्वेतश्चेति उक्तवर्णा येषां एतादृशाः शतक्रतुप्रभृतयः शुभा शोभनाः स्युरित्यर्थः।

अथ शक्रादिकानां क्रमात् वज्रं शक्तिदण्डः कोदण्डः खड्गश्च पाशश्चाङ्कुशश्चेति ते गदा त्रिशूलश्चेति शस्त्राणि स्युरित्यर्थः। अत्रोदग्दिक् स्वामी कुवेरपक्षे ततोऽञ्जनरुची श्वेतो हरित्स्वर्णाभ इति पाठान्तरं कल्प्यम्। वर्णाः पुराणान्तरे—

इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः।
कुवेरश्च सुवर्णाभो वह्निश्चापि सुवर्णभः॥

तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते।
ईशानस्तु भवेद्गौरः......................। इति॥६९॥

अथ तेषां वाहनानि प्रमाणिकावृत्तेनाह—**गज इति।** दिगीशवाहनान्युच्यन्त इति शेषः। गजः प्रसिद्धः हुडुर्मेषः रजस्वलो महिषः मरुत्पवः सिंहः वल्कवान् मत्स्यः कुरङ्गमो हरिणः हयवृषौ प्रसिद्धौ। मेषस्तु रोमशः। संस्फालहुडुभेडाश्चेति। महिषस्तु रजस्वल इति। सिंहः कण्ठीरवो भीमविक्रान्तः करिमाचलः। पञ्चशिखश्च शैलाटः पश्विन्द्रः श्वेतपिङ्गलः। मरूत्पवश्चेति। अनिमेषो वल्कलवानपि मीन इति। 'एणः कुरङ्गमो रिश्य' इति च त्रिकाण्डशेषः। क्रियासारे—

मातङ्गवस्तमहिषसिंहमत्स्यैणवाजिनः।
वृषभं च यथान्यायं ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्। ।इति॥७०॥

न्यसेत्तांस्तान् हरित्स्वाशा १० करवंशस्य मूर्धनि।
नवमीमपि सुश्वेतां मध्ये रुद्रेन्द्रयोर्न्यसेत्।।७१।।

शक्रे १४ न १२ पङ्क्ति १० प्रमितैः करैस्तुः
श्रेष्ठास्तथा सूर्य १२ हरिद् १० गजै ८ स्तु।
मध्याथ गो ९ ष्ट ८ नगैः ७ कनिष्ठा
मुन्य ७ ङ्ग ६ बाणै ५ रधमाधमाश्च।।७२।।

दीर्घास्तु नेत्रा २यतिकास्तथैषा मग्रं वेदै ४ र्विमितं त्रिकोणम्।
अथापि वा नेत्र२ करोन्मितास्ते नखाङ्गुलैरायतिकास्तथा च।।७३।।

अथ ध्वजपताकानिवेशनं वंशमानं चानुष्टुब्वृत्तेनाह—**न्यसेदिति।** तान् पूर्वोक्तान् ध्वजान् पताकांश्च हरित्स्वष्टदिक्षु दशकरवंशस्य मूर्धन्यग्रे न्यसेत्स्थापयेदित्यर्थः। तथा नवमीमपि। पताकां शुभ्रवर्णां रुद्रेन्द्रयोरीशानीपूर्वयोर्मध्ये न्यसेदित्यर्थः। उक्तं च क्रियासारे—

मण्डपस्य बहिर्दण्डैर्दशहस्तायतैः सह।
पूर्वाद्यष्टहरित्स्वष्टौ ध्वजान् संस्थापयेत्क्रमात्।। इति।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहे—

द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्ते वंशजैः संयुतास्तथा।। इति।

सोमशम्भौ—

दशहस्ताः पताकानां दण्डा पञ्चांशवेशिताः।
पताकां आयुधाङ्काश्च पुष्पचन्दनचर्चिताः।। इति।

नवमी तुहिनप्रभेति सारसङ्ग्रहे।।७१।।

अथ ध्वजपताकानां मतान्तराणीन्द्रवज्रोपजातीन्द्रवज्राभुजङ्गप्रयातानुष्टुब्वृत्तैराह—

शक्रेति। चतुर्दशद्वादशकरैः श्रेष्ठा। द्वादशदशाष्टकरैर्मध्याः। नवाष्टसप्तकरैरधमाः। सप्तषट् पञ्चकरैरधमाधमाश्चेति।।७२।।

दीर्घा इति—ते ध्वजाः उक्तकरैर्दीर्घाः नेत्रायतिका द्विहस्तविस्तृता इत्यर्थः। एषामग्रं तु वेदैश्चतुःकरैस्त्रिकोणं स्यात्। अथवा ते सर्वे ध्वजाः द्विहस्तदीर्घाः विंशत्यङ्गुलैविस्तृताश्चेत्यर्थः।।७३।।

सर्वेऽथवा बाहुमिता ध्वजाः स्युः
सूर्या १२ ङ्गुलैरायतिका दशैव।
पक्षे यदा दिक्प्रमिता १० स्तदा तु
रन्ध्र ९ स्तु रक्तो दशमः सितश्च॥७४॥

तथाथो पताकाध्वजानां च तुल्यास्तदाकारवर्णा दशैवापि यत्र।
तदा सर्ववर्णा तु रन्ध्रा प्रदिष्टा तथा पञ्चवर्णा दशम्येव च स्यात्॥७५॥

सर्वे इति। अथवा सर्वे ध्वजाः बाहुमात्रदीर्घाः द्वादशाङ्गुलैर्विस्तृताः दशैव स्युरित्यर्थः। यदा पक्षान्तरे दिक् प्रमिताः दशैव कार्यास्तदा रन्ध्रौ नवमो ध्वजः मेघवर्णः दशमः श्वेतश्चेति विशेषः॥७४॥

तथेति। अथो पताकाः ध्वजानां च तुल्या दैर्घ्यविस्ताराभ्यामित्यर्थः। तदाकाराः ध्वजाकाराः त्रिकोणादिरूपास्तद्वर्णा पूर्वोक्तवर्णाः स्युरिति शेषः। यत्र ता अपि दशैव तदा रन्ध्रा नवमी सूर्यवर्णा तथा दशम्यपि पञ्चवर्णा प्रदिष्टा स्यादित्यर्थः। तथा च सुबोधिन्यां ध्वजपताकालक्षणम्—

ध्वजाः पताका यत्रोक्ताश्चतुर्दशकरा मताः।
द्विहस्तवितृता बद्धाश्चतुर्हस्ताचलां चलाः॥

हस्तद्वयेन हीनास्ता मध्यमा अधमास्ततः।
मध्यमात्करतो हीना अधमाश्च त्रिसंज्ञकाः॥

अधमाधमतो हस्तहीनास्ते च करादयः।
सप्तहस्ता यदा कार्याः सप्तमांशेन विस्तृताः॥

द्विहस्तसम्मिता वापि विंशत्यङ्गुलविस्तृताः।
यथाविभवतः कार्याः पूर्वाभावे पराः स्मृताः॥

प्रकारान्तरं तत्रैव।

इन्द्रायुधप्रभा रक्ता धूम्रा कृष्णासितासिता।
श्वेता चैव तु मेघाभा रक्ता गौरा क्रमाद्दश॥ इति॥७५॥

पताकाश्च ध्वजाश्चैव दशैवेति विनिश्चितम्।
सुबोधिनीमतं त्वत्र पद्धत्या च विरुध्यते।।७६।।

श्रेष्ठेऽर्धेनाग्न्यं ३ शमानेन मध्ये
ह्यल्पे वेदां ४ शेन च स्नापनार्थम्।
पूर्वात्कुर्यान्मण्डपाच्चोत्तरस्यां
तस्मादर्धां कारुशालां ततश्च।।७७।।

पताका इति। ताः पताकाः ध्वजाश्च दशैवेति यद्विनिश्चितं तत्र सुबोधिनीमतं कोटिहोमपद्धत्या सह विरुध्यत इत्यर्थः। तथा च सुबोधिनी—

दशदिक्पतिमन्त्रैश्च दशदिक्षु यथाक्रमम्।
ध्वजाः पताकाः संस्थाप्यास्तत्तन्मन्त्रैः स्वशाखजैः।। इति।

तथा च पद्धतिः। अनयोः पताके अपि भवत इति केचित्। तत्र मूलं मृग्यम्। न च लोकेशवर्णा इति मूलम्। तेषा प्राक्परिगणितत्वात् ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देय इति पार्थक्येन गणनाच्चेति।।७६।।

अथोत्तमादिमण्डपे स्नानमण्डपमानं शालिनीवृत्तेनाह—**श्रेष्ठेति।** पूर्वमण्डपादुत्तरस्यां दिशि देवस्नापनार्थं स मण्डपः स्यादित्यर्थः। स मण्डपः श्रेष्ठे मण्डपे तदर्धेन, मध्ये मध्यममण्डपे त्र्यंशने, अल्पे चतुर्थांशेन पूर्वमण्डपापेक्षयेत्यर्थः। तस्मात् स्नानमण्डपादुत्तरस्यां तदर्धां स्नानमण्डपार्धां तद्वत्कारुशालां प्रकुर्यादित्यर्थः, तदुक्तं हेमाद्रौ कौस्तुभे च—

मण्डपस्योत्तरे कार्यः स्नानाख्यो मण्डपः परः।
मण्डपस्यार्धमानेन तदर्धेनाथ वा पुनः।।

तदुत्तरे कारुशालां स्नानाख्यस्यार्धमानतः।। इति।

मात्स्येऽपि—

तस्याप्युत्तरतः कुर्यात्स्नानमण्डपमुत्तमम्।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्थांशेन वा पुनः।। इति।

प्रतिष्ठायां द्वयं तच्च प्राच्यां तस्मिंश्च वेदिकाः।
तिस्रोहस्तेन दीर्घाः स्युस्तताश्चाङ्घ्रिमितोच्छ्रिताः॥७८॥

कुम्भैर्गङ्गाम्बुपूर्णैः ससुफलसुदलैरावृतं चामरौघै-
रम्भास्तम्भैः सपुष्पैः सुसुरभिकुसुमस्रग्भिराबद्धकूटम्।
उल्लोचादर्शचुतद्रुमभवकिसलैः संवृतं विप्रवृन्दैः
पद्मैश्चाम्पेयमुक्ताफलकृतजलजैर्भूषयेत्तं समन्तात्॥७९॥

अथास्मिन् मण्डपे वेदित्रितयं कुर्यादित्यनुष्टुब्वृत्तेनाह—

प्रतिष्ठेति। शिवादिप्रतिष्ठायां तद्द्वयं स्नानमण्डपः कारुशाला चेति द्वयं स्यात्, तस्मिन् मण्डपे तिस्रो वेदिकाः स्युरित्यर्थः। ताः हस्तेन दीर्घाः तताः विस्तृताश्च अङ्घ्रिमितेन स्वपादतुल्येन मानेनोच्छ्रिता इत्यर्थः॥७८॥

अथ मण्डपभूषणं स्रग्धरावृत्तेनाह—**कुम्भैरिति।** गङ्गायाः अम्बु पानीयं तेन पूर्णैः कुम्भैः सुष्ठु च तानि फलानि तैः सह तानि च सुष्ठु दलानि तैरावृतं समन्ताद् व्याप्तम्। चामराणां वनगोपुच्छानां ओघैः समूहैः सपुष्पैः रम्भास्तम्भैः सुष्ठु सुरभिर्गन्धो येषां तानि च कुसुमानि पुष्पाणि तेषां स्रग्भिर्मालाभिरासमन्ताद्बद्धः कूटः शिखरं यस्य। 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गमित्यमरः'। उल्लोचो वितानः आदर्शो दर्पणं चूतद्रुम आम्रदुमस्तदुद्भवानि च तानि किसलयानि पल्लवास्तैरावृतमित्यत्राप्यनुवर्तते। 'अस्त्री वितानमुल्लोच' इत्यमरः। अथ पल्लवः। विसलं किसलं चाथो इति त्रिकाण्डशेषः। विप्राणां वृन्दैः समूहैरावृतं व्याप्तम्। पद्मैः कमलैः चाम्पेयं सुवर्णं मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैः कृतानि च तानि जलजानि तैर्मण्डपं समन्तात्सर्वत्र सम्भूषयेद्रमणीयं कुर्यादित्यर्थः। 'स्वर्णं लोहवरं चाग्निबीजं चाम्पेयमित्यपीति' त्रिकाण्डशेषः। सिद्धान्तशेखरे—

चूतपल्लवमालाढ्यं वितानैरुपशोभितम्।
विचित्रवस्त्रसंछन्नं पट्टकूलादिभूषितम्॥
सफलैः कदलीस्तम्भैः क्रमुकैर्नारिकेलजैः।
फलैर्नानाविधैर्भोज्यैर्दर्पणैश्चामरैरपि॥
भूषितं मण्डपं कुर्याद्रत्नपुष्पसमुज्ज्वलम्॥ इति॥७९॥

प्राक्तोऽथ वेदास्त्रिवराङ्गमर्धे द्व्यग्न्यस्त्रिवृत्तानि षडस्त्रिपद्मम्।
कुण्डानि चाष्टास्त्र्यथ वात्र सर्वाण्याम्नायकोणानि च वर्तुलानि॥८०॥

इन्द्रेशमध्ये ह्यथवाब्धिकोणं वृत्तं गुरोः स्यात्खलु कुण्डमेतत्।
तत्पञ्चकुड्यां भवतीशदिक्स्थं विदिक्स्थकुण्डैस्तु विनेषु ५ कुण्डी॥८१॥

अथ कुण्डानि वक्तुं तेषां स्थानान्यकाराश्चेन्द्रवज्रावृत्तेनाह—**प्राक्त इति।** अथ कुण्डानि पूर्वदिशामारभ्य वक्ष्यमाणानि कुण्डानि। तानि पूर्वस्यां वेदास्त्रं बह्निदिशि वराङ्गं योनिकुण्डम्। दक्षिणस्यामधेन्दु अर्धचन्द्रं। निर्ऋतो अग्न्यस्त्रि त्रिकोणम्। प्रतीच्यां वृत्तं, वायव्यां षडस्त्रि। उदीच्यां पद्मं पद्माकारम्। ईशान्याष्टास्त्रीति। अथवा सर्वाणि आम्नायकोणानि चतुरस्त्राणि। अथवा वर्तुलानि च भवन्तीति शेषः। अस्त्रशब्दः कोणवाची। 'अस्त्रः कोणे कचे पुंसीति' मेदिनीकोशात्।

शारदातिलके—

अष्टास्वाशासु रम्याणि कुण्डान्येतान्यनुक्रमात्।
चतुरस्त्रं योनिरर्धचन्द्रं त्र्यस्त्रं च वर्तुलम्।।

षडस्त्रं पङ्कजाकारमष्टास्त्रं तानि नामतः ।। इति।

पञ्चरात्रे—

सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्त्राणि वा सदा।। इति॥८०॥

अथाचार्यकुण्डस्थलं पञ्चकुडीपक्षं चोपजातिवृत्तेनाह—**इन्द्रेति।** इन्द्रश्च ईशानश्च तयोर्दिशोर्मध्ये अब्धिकोणं चतुरस्त्रं अथवा वृत्तं स्यादित्यर्थः। एतद्गुरोः कुण्डमाचार्यकुण्डमिति यावत्। तदाचार्यकुण्डं पञ्चकुण्डी पक्षे ईशदिगीशानी तस्यां स्थितं भवतीत्यर्थः। विदिक्स्थकुण्डैः विदिशः आग्नेयीनैर्ऋती वायव्यैशान्यः तासु कुण्डानि योनित्र्यस्त्रषडस्त्राष्टास्त्राणि तैर्विना इषुकुण्डी पञ्चकुण्डी स्यादिति। तदुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरस्त्रकम्।।

तदाचार्यविनिर्दिष्टमिति। शारदातिलकेऽपि—

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ।। इति।

यदैककुण्डपक्षोऽस्ति तदा प्राच्यामथापि वा।
प्रतीच्यामुत्तरस्यां वा श्रीशम्भुदिशि वा कुरु॥८२॥
एकं कुण्डं शुभदं मध्ये शान्तौ जपाङ्गहवनेषु।
आरभ्यैकादशिनीं लघुमहदतिरुद्रहवनविधौ॥८३॥

पञ्चकुण्डी नारदीये—

यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्रमर्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिभं तथा।।
कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचरं बुधः ।। इति॥८१॥

अथैककुण्डपक्षे: कुण्डस्थलान्यनुष्टुब्वृत्तेनाह—**यदेति।** यदैककुण्डपक्ष: स्वीकृतस्तदा प्राच्यां प्रतीच्यां वोत्तरस्यां श्रीशम्भुदिशि ऐशान्यां वा कुर्वित्यर्थ:। तदुक्तं सोमशम्भौ—

एकं वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां कारयेद् बुधः।। इति।

क्रियासारे—

उत्तरस्यां भवेत्कुण्डं वृत्तं वा चतुरस्रकम्।। इति।
भुक्तौ मुक्तौ तथाप्यष्टौ जीर्णोद्धारे तथैव च।
सदा होमे तथा शान्तावेकं वरुणदिग्गतम्।। इति॥८२॥

अथ कर्मपरत्वेनैककुण्डस्य मध्ये विधानमार्याछन्दसाह—

एकमिति। एकं चेत् कुण्डं शान्तौ शान्तिकर्मणि जपाङ्गहवनेषु। जपाङ्गमित्युपलक्षणं वेदपारायणाङ्गहवननवशतसहस्रचण्ड्यादिहवनेषु तथैकादशिनीमारभ्य लघुरुद्रमहारुद्रातिरुद्रहवनेषु मध्ये मण्डपमध्ये कार्यं तदेव शुभदमित्यर्थ:। ग्रहशान्तिमुपक्रम्य वसिष्ठ:—

'कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम्' ।। इति।

तथा मण्डपे च मध्यभागे कुण्डं कुर्यादिति रुद्रपद्धत्यां श्रीमद्भट्टनारायणचरणा:॥८३॥

शन्तिस्तम्भनसिद्धिभद्रयशसां कृत्ये तु वेदास्त्रकं
भोगाकर्षणपुत्रकृद्भगमथो वश्ये च शान्तौ मृतौ।
अर्धेन्द्वाभमथारिनाशनविधौ द्वेषे तथाऽऽकर्षणे
त्र्यस्त्रि स्यादथ वश्यपुष्टिकरणे सम्पत्तिशान्त्योर्वृत्तिः॥८४॥

शत्रूच्चाटनमारणादिविषये स्यात्स्तम्भनेऽङ्गास्त्रकं
पद्मंपुष्टिधनागमाद्यगदकृद्वश्यार्थमानप्रदम्।
सर्वाप्तौ च तथा गजास्त्रमपि तद्योगार्थमुक्तिप्रदं
सम्पत्कृद्गुरुकुण्डमत्र तु शरास्त्रि स्याच्च भूतादिहृत्॥८५॥

अथ कामनापरत्वेन तानि शार्दूलविक्रीडितवृत्ताभ्यामाह—

शान्तीति। शान्त्याद्युक्तकृत्येषु चतुरस्त्रं स्यात्। भोगादित्रितये भगं योनिकुण्डं स्यात्। अथो वश्यादित्रितये अर्धेन्द्वाभमर्धचन्द्रं। अथ रिपुनाशादित्रितये त्र्यस्त्रि कुण्डं स्यात्। अथ वश्यादिचतुष्टये वृतिर्वलयं स्यात्॥८४॥

शत्रिवति। शत्रूच्चाटनादिविषये अङ्गास्त्रकं षडस्त्रि स्यात्। अथ पुष्ट्यादिसर्वाप्तिपर्यन्तं पद्मं स्यात्। तथा योगार्थादिद्वितये गजास्त्रमष्टास्त्रि स्यात्। गुरुकुण्डमाचार्यकुण्डं सम्पत्कृत्स्यात्। अत्र शरास्त्रि तु भूतादिदोषहृदित्यर्थः।

तदुक्तं जयपृच्छाधिकारे—

शान्तिके चतुरस्त्रं स्याद्वश्ये चैवार्धचन्द्रकम्।
षट्कोणं मारणे चैव स्तम्भने च विशेषतः॥
आकर्षणे त्रिकोणं स्याद्वर्तुलं चाभिचारिके।
मानसिद्धिप्रजननं पद्मं कुण्डं न संशयः॥
पुत्रदं योनिकुण्डं स्यादष्टास्त्रं चैव मुक्तिदम्।
पञ्चास्त्रं भूतदोषघ्नं सप्तास्त्रमभिचारहृत्॥
उत्तरे शान्तिकं कुर्यात्स्तम्भनं चैव पूर्वतः।
मारणं दक्षिणे प्रोक्तं वश्यं चैव तु पश्चिमे॥

आग्नेय्यां दायमुत्पाद्यं विद्वेषं नैर्ऋतेन तु।
उच्चाटनं च वायव्ये ऐशान्ये सर्वसिद्धिदम् ।। इति।

सिद्धान्तशेखरेऽपि—

ऐन्द्र्यां स्तम्भे चतुष्कोणमग्नौ भोगे भगाकृति।
चन्द्रार्धं मारणे याम्ये द्वेषे निर्ऋति त्रिकोणकम्।।
वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षडस्त्युच्चाटनेऽनिले।
उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्यामष्टास्त्रि मुक्तिदम् ।। इति।

पिङ्गलामते—

कुण्डं कुशेशयाकारमुत्तरे वश्यकर्मणि।
षडस्र्युयुच्चाटने वायावर्धेन्दुर्मारणे यमे।।
वेदास्रं स्तम्भने प्राच्यामाकर्षेऽग्नौ भगाकृति।
वारुण्यां शान्तिके वृत्तमीशे त्वष्टास्त्रि मुक्तिदम् ।। इति।

सिद्धान्तशेखरे—

योन्याख्यामुच्यते कुण्डमाग्नेय्यामुत्तरामुखम्।
प्रजावृद्धौ च तापे स्यादर्धचन्द्रमथोच्यते।।
याम्ये तन्मारणे शस्तमुत्तराभिमुखं तथा ।
निर्ऋते त्र्यस्त्रि कुण्डं स्याद्विद्वेषे पूर्ववक्त्रकम् ।। इति।
यशः श्रेयस्तथा शान्तिश्चतुरस्रेण सिध्यति।
भगाकारेण चाकृष्टिः शान्तिः स्यादर्धचन्द्रके।।
त्रिकोणे रिपुनाशः स्यात्सम्पत्पुष्टिश्च वर्तुले।
उच्चाटनं तु षट्कोणे वित्तारोग्यं च पङ्कजे।।
अष्टास्रे योगसिद्धिः स्यादाचार्ये सर्वसम्पदः ।। इति परशुरामः।

अत्र **'सर्वत्रादिपदेन वृष्टिदं रोगनाशनम्'** इत्यादितारतम्येन फलान्यूह्यानि॥८५॥

वेदास्त्रं वृत्तमर्धेन्दू रामास्त्रं ३ ब्राह्मणादिषु।
वृत्तं वाब्ध्यस्त्रि सर्वेषां भगाभानि तु योषिताम्॥८६॥

वेद्याः सकाशादिह वाष्टदिक्षु कोष्ठस्य मध्यः स हि कुण्डमध्यः।
स्यान्मेखलान्तं तु सपादहस्तं पादं त्रिचेन्दोऽ १ ३ ङ्गुलमन्तरं वा॥८७॥

अथ ब्राह्मणादिपरत्वेन कुण्डान्यनुष्टुब्वृत्तेनाह—**वेदेति।** वेदास्त्रं चतुरस्त्रं वृत्तमर्धेन्दु अर्धचन्द्रं रामास्त्रं त्र्यस्त्रं क्रमेण विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्रविषयेषु स्युः। अथवा सर्वेषां चतुरस्त्रं वृत्तं वेति। योषितां स्त्रीणां तु विशेषतो योन्याकाराणीत्यर्थः। तदुक्तं शारदातिलके—

विप्राणां चतुरस्त्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्त्रमीरितम्।।

चतुरस्त्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति सूरयः ।। इति।

पञ्चरात्रे—**सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्त्राणि वा सदा ।।** इति।

सन्तकुमारः—

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् ।। इति॥८६॥

अथ कुण्डवेद्योरन्तरमिन्द्रवज्रावृत्तेनाह **वेद्या इति।** वेद्याः सकाशादष्टसु दिक्षु अष्टकोष्ठेषु यः कोष्ठमध्यः अथवा वेद्याः सकाशान्मेखलान्तं सपादहस्तमथवा वेद्याः, पादं वा त्रिचन्द्राङ्गुलं त्रयोदशाङ्गुलमन्तरं स्यादित्यर्थः, एवमन्तरं ज्ञात्वा कुण्डानि कुर्यादिति भावः। तदुक्तं शारदातिलके—

प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान् वेदिकाया बहिस्त्रिधा।
क्षेत्रं विभज्य मध्येंऽशे पूर्वादिं परिकल्पयेत्।।

अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात् ।। इति।

एवमेव कुण्डकल्पलतायां कुण्डदीपके कुण्डोद्योते च।

वेदीपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नवपञ्च ।। इति सोमशम्भुः।

त्यक्त्वा वेदीं चतुर्भागं कुण्डानि नवपञ्च वा ।। इति क्रियासारे।

कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसम्मितम् ।। इति नारदीयाच्चेति।

वसिष्ठसंहितायाम्—

त्रयोदशाङ्गुलं त्यक्त्वा वेदिकायाश्चतुर्दिशम् ।। इति।
वेदीभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशाङ्काङ्गुलैः ।। इति च।

सहस्रेऽयुते हस्तमात्रं द्विहस्तं
ततो दिग् १० गुणे हस्तयुग्मस्य वृद्धिः।
धराहस्तकं लक्षहोमे ततोऽथ
करघ्यां प्रकुर्यात्तु दि १० ग्लक्षकान्तम्॥८८॥

लक्षार्धके तत्त्रिकरं प्रशस्यते
लक्षेऽब्धिहस्तं प्रयुतेषु हस्तकम्।
द्विघ्नत्रि ६ हस्तं नखलक्षकेऽथवा
खपञ्च ५० लक्षेऽश्वकरं विदो विदुः॥८९॥

सपादहस्ताद्यन्तरपक्षे कुण्डमध्यकेन्द्राणि समानानि न भवन्तीति॥८७॥

अथ होमानुसारेण कुण्डमानं भुजङ्गप्रयातोपजातिकागीत्येन्द्रवज्रा-वृत्तैराह—**सहस्र इति।** सहस्रहवने कर्तव्ये हस्तमात्रं कुण्डं कर्तव्यम्। तथाऽयुते दशसहस्रे द्विहस्तम्। ततोऽयुतादारभ्य दशगुणे हवने हस्तद्वयवृद्धिः कार्या। तथा हि लक्षे चतुर्हस्तं दशलक्षे षड्ढस्तं कोटौ अष्टहस्तमित्यर्थः।

तदुक्तं भविष्ये—

मुष्टिमात्रं शतार्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रेत्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्।।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम्।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते।।
अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमे तु नाधिकम् ।। इति।
एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।।
लक्षणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्धयेत् ।। इति शारदातिलके॥८८॥

लक्षार्धेति। लक्षार्धे पञ्चाशत्सहस्रे तत्कुण्डं त्रिकरं प्रशस्यते युक्तमिति यावत्, तथा लक्षे चतुर्हस्तं प्रयुते दशलक्षे इषुहस्तं पञ्चहस्तं विंशतिलक्षे द्वाभ्यां गुणितास्त्रयः षडिति यावत् षड्ढस्तम्। पञ्चाशल्लक्षे

अयुते लक्षे प्रयुते कोटौ वाप्यर्बुदे तथैव करैः।
एकेनैव द्वाभ्यां चतुर्भिरथ षड्भिरष्टभिस्तानि स्युः॥९०॥

कोट्याहुतौ स्यादृतुभू १६ करं तद्
आशा १० करं वापि विशिष्यतेऽत्र।
उक्तेषु पक्षेष्वधिकोनकेषु
त्रैराशिकेणैव विधेयमेतत्॥९१॥

सप्तकरं विदः पण्डिताः विदुः कथयामासुरित्यर्थः। अथवेति सर्वैः सह विकल्प्यते। सिद्धान्तशेखरे—

लक्षार्धे त्रिकरं कुण्डं लक्षहोमे चतुःकरम्।
कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमात्॥
षड्ढस्तं लक्षविंशत्यां कोट्यर्धे सप्तहस्तकम्॥ इति॥८९॥

अयुतेति। अथानन्तरं अयुते दशसहस्रे लक्षे प्रयुते दशलक्षे कोटी अर्वुदे दशकोटौ च क्रमेण एकेन हस्तेन द्वाभ्यां तथैव चतुर्भिः षड्भिरष्टभिः करैस्तान्युक्तानि कुण्डानि वा स्युरित्यर्थः। सिद्धान्तशेखरे—

तथाऽयुते च नियुते प्रयुते कोटिसम्मिते।
अर्वुदे च करैः कुण्डं चन्द्राद् व्यब्ध्यङ्गनागकैः॥ इति।

कोट्याहुताविति। कोटिहवने ऋतुभूकरं षोडशहस्तम्। अथवा आशाकरमपि विशेषेण शस्यते युक्तमित्यर्थः।

तथा च स्कान्दे—

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं समन्ततः।
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥ इति॥९०॥

अत्र कोटिहोमपद्धतौ समन्ततश्चतुर्हस्तोक्त्या षोडशहस्तमिति रामकृष्णभट्टाः। मयूखकल्पलतादयोऽप्येवमेवाहुः। **उक्तेष्विति।** ये पक्षा उक्तास्तेष्वधिकेषु ऊनेषु वा सत्सु त्रैराशिकेणैव एतत् कुण्डं विधेयमित्यर्थः। तथा च रुद्रप्रसादे—

उक्तहोमाधिकोनेतद्धोमेऽधिकोनमङ्गुलैः।
यथोक्तफलभाक्तेन कर्ता स्यादन्यथान्यथा॥ इति।

14705

कल्पद्रुरेवं निजगाद युक्तं नेतीति चान्ये कथयन्ति सन्तः।
कुण्डव्यवस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्य कार्या स्वधिया सुधीभिः॥९२॥
यन्मण्डपे यत्करकुण्डमिष्टं ज्ञात्वैव कुण्डादिकमारभेत्।
न्यूनेऽथ कुण्डेऽप्यधिको विधेयो न्यूनो न होमस्त्वधिके प्रशस्तः॥९३॥

विश्वकर्मापि—

आदौ कुण्डं समुत्पाद्यमाहुतीनां यथोदितम्।
एतन्मध्ये विभागं यत्सर्वं तदनुपाततः ॥ इति॥९१॥

कल्पेति। कुण्डकल्पद्रुमनामग्रन्थः एवं पूर्वोक्तं त्रैराशिकादिकरणं युक्तं सदिति जगाद। अन्ये बुधाः न इति कथयन्ति। तत्र कुण्डव्यवस्था तु द्रव्यस्य होमद्रव्यस्य स्थूलसूक्ष्ममानात् स्वबुद्ध्यैव सुधीभिः कार्या कल्प्येत्यर्थः। इदं सर्वं सुविस्तृतं श्रीमत्तातचरणकृतकुण्डार्कपद्मिनीटीकायां कोटिहोमपद्धतौ च द्रष्टव्यम्॥९२॥

यदिति। यन्मण्डपे यद्धस्तादिपरिमितमण्डपे यत्करं यद्धस्तादि यथेष्टं कुण्डं ज्ञात्वा कुण्डादिकमारभेत प्रारम्भं कुर्यात्। यथाष्टहस्तदशहस्तमण्डपे एकहस्तात्मकनवकुण्डानां न समावेशः, अतस्तत्र पञ्चकुण्डैव कार्या न नवकुण्डी। एवं द्विहस्तादिकुण्डादावपि ज्ञात्वा कुण्डानि कुर्यादिति भावः। अथ न्यूने न्यूनमाने कुण्डे अधिकः अधिकसङ्ख्याकहोमो विधेयः यथा एकहस्तकुण्डे एकोनायुतपर्यन्तं होमः तद्वन्न्यूनसंख्याकहोमः अधिकमानके कुण्डे न प्रशस्तः। उक्तं च कोटिहोमपद्धतौ—

न्यूनसंख्योदिते कुण्डेऽधिको होमो विधीयते।
अनुक्तकुण्डो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित् ॥ इति।

न्यूनसंख्येऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिक्यादौ अधिकं मानमपि कुण्डं भवत्येव। अर्थात् परिमाणमित्युक्तेः, अत एवोक्तं पूर्वश्लोके कुण्डव्यवस्थापृथुसूक्ष्मेत्यादि॥९३॥

दक्षांसादादक्षश्रोणिं सव्याच्च सव्यकटिलग्नम्।
बाहुद्वयकटियुग्मस्पृक्सूत्रैर्वेदकोणकं कुण्डम्।।९४।।

अथौकोनविंशतिभिर्गीतिभिश्चतुरस्रादिनवकुण्डीकरणप्रकारमाह— **दक्षेति।** चतुरस्रवृत्तव्यास: ३३/७/४ अस्यार्धं १६/७/६/५ अनेन वृत्ते कृते तस्मिन्नष्टसु दिक्षु चिह्नितेषु सत्सु य: वृत्तदक्षोंऽसस्तस्मादारभ्य आदक्षश्रोणिपर्यन्तं तथा सव्योसतोऽर्थाद्वृत्तवामकटिस्तस्यां लग्नम्। एवं बाहुद्वयस्पृष्टमन्यत्सूत्रं तथा कटिं द्वयस्पृष्टं एतैश्चतुर्भि: सूत्रैर्वेदकोणकं चतुरस्रं कुण्डं स्यादित्यर्थ:। यत्तु चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेषु कारणमित्यादिवचनबलेऽपि रघुवीरदीक्षितै: कुण्डार्कटीकायां चतुरस्रप्रकृतीनि सर्वकुण्डानि ये व्याचख्युस्तेषां भुजसाम्यं क्वापि नास्तीति स्पष्टमित्युक्तं तच्च चतुस्रप्रकृतौ कुण्डकरणे बहुप्रयासस्तथा त्रिभुजादौ क्वचिद्भुजसाम्याभाव: क्वचित्फलेऽप्यन्तरं दृश्येत तथापि वृत्तकुण्डादिषु वृत्तं विना गतिरेव नास्तीति। वृत्तप्रकृतौ तु स्वल्पायासेन कुण्डसिद्धिर्भुजसाम्यं फलेऽप्यन्तराभावोऽतस्तैरुक्तं सुवचमिति। न च शारदातिलकादौ प्रकृतिचतुरस्रमेवोक्तं मात्स्यादावप्येवं, प्रकृतिवृत्तं तु क्वापि न श्रूयते इति वाच्यम्। शारदातिलकादौ तु कुण्डसिद्धौ तात्पर्यं न सूत्रपातादावित्यनेकग्रन्थ-काराणामनेकोक्तिभि: स्पष्टत्वात्। अनेनैव प्रकारेण कुण्डं कुर्यादिति मानाभावात्। कुण्डार्कादौ सर्वकुण्डप्रकृतिकत्वेन वृत्तस्यैव विधानात्। वचनस्य क्षेत्रफलांशे विनियोगाच्चेति। दिक्।

अथ फलानयनम्। व्यास: ३३/७/५ अयं त्रिवाणाष्टयुगाष्टभि: ८४८५३ एभिर्निघ्नो जात: २८८१०२८ अयं खखखाभ्रार्कै १२००० रेभिर्भक्ते लब्धो भुजा: २४/०/०/४ समश्रुति चतुरस्रे भुजकोटिघात: फलं ५७६/३ अधिकेन ध्वजायसिद्धि:। उक्तं च—

'स्थापने सर्वकुडानां ध्वजाया: सर्वसिद्धिद: ।। इति।।९४।।[१]

---

१. द्रष्टव्यम्—चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - १७,१८

सिद्धे चतुरस्रेऽस्मिन् वृत्ते वामाच्च पार्श्वतो बाह्ये।
व्यासस्य भूधृति १८१ लवं वर्धय तस्माद्गुणद्वयं सुसमम्॥९५॥
वेदास्रपुच्छास्यस्पृक्कर्णदलं व्यासवृत्तदलयुग्मम्।
पुच्छास्यदक्षपार्श्वस्पृष्टं स्याद्बोधिपत्रवद्योनिः॥९६॥
दक्षात्पार्श्वात्परिधिप्राप्ते व्यासार्धकेन चिह्ने द्वे।
कुर्याद् वामात्पार्श्वाद् देये सूत्रे च चिह्नसंलग्ने॥९७॥

अथास्मिन्नेव चतुरस्रेऽश्वत्थपत्राकृतियोनिकुण्डमाह—**सिद्ध इति।** चतुरस्रे सिद्धे सति अस्मिन्नेव वृत्ते वामात्पार्श्वतः परिधिबाह्ये चतुरस्रवृत्तव्यासस्य भूधृतिलवं एकाशीत्युत्तरशततमाशं वर्धय तस्माद् वर्धितदेशाद् गुणद्वयं सूत्रद्वयं सुसमं यथा स्यात्तथा वेदास्रस्य पुच्छं च आस्यं च स्पृशतीति एतादृशं गुणद्वयं देहीति शेषः॥९५॥

वेदेति। ततश्चतुरस्रस्य कर्णदलमेव व्यासस्तेन वृत्तदलस्य युग्मं युगुलं चतुरस्रस्येति देहलीदीपन्यायेनोभयतः सम्बन्धस्तेन चतुरस्रस्यैव मुखपुच्छदक्षपार्श्वे परिधिसंल्लग्नं कार्यं तेन बोधिपत्रवदश्वत्थपत्रसदृशी योनिः योनिकुण्डं स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्—वृत्तव्यासः ३३/७/४ अस्याब्ध्यस्रिज्या २४ इयं व्यासादूना ९/७/४ अस्यार्धं ४/७/६ अनेन युक्ता कुण्डमध्यज्या २८/७/६ अथ व्यासस्य भूधृतिलवः ०/१/४ अनेन सहिता युक्तज्या २९/१/२ अयमेव लम्बः दक्षज्यार्धं भूम्यर्धं १२ लम्बगुणमित्यादिना त्र्यस्रद्वयफलं ३४९/७ अथ वृत्तदलद्वयफलम्।

तत्र चतुरस्रकर्णार्धं व्यास एव १६/७/६ अस्य वर्गः २८८/१/५ एकादशगुणितः ३१७०/२ शक्रहृतः २२६/३/५ सम्पूर्णं वृत्तफलमिदम्, अतो वृत्तार्धद्वयफलमपीदमेव द्वयोर्योगे सम्पूर्णं योनिकुण्डफलं ५७६/२/५ अधिकं ध्वजायः॥९६॥

अथ प्रकारान्तरेण योनिकुण्डमाह—**दक्षादिति।** दक्षपार्श्वमारभ्येत्यर्थः। परिधिवृत्तरेखा तस्यां प्राप्ते लग्ने व्यासार्धेन १५/१ अनेन द्वे चिह्ने कर्तव्ये

मध्ये तु चिह्नयुग्मस्पृष्टं चान्यत्ततोऽपि दक्षिणतः।
वामान्यपार्श्वचिह्नज्यगोलदलयुग्मक् च योनिर्वा॥९८॥

केन्द्रादुदग्गुणाङ्घ्रावुक्तव्यासेन गोलके तु कृते।
तस्मिन् पुच्छास्यस्पृग्ज्यादानेनार्धं चन्द्रकुण्डं तत्॥९९॥

पुच्छात्परिधिप्राप्ते कुर्याद् व्यासार्धकेन चिह्ने द्वे।
मखतोऽङ्कस्पृक्सूत्रे मध्ये न्यच्चिह्नलग्नमग्न्यस्त्रि॥१००॥

उभयत इति शेषः। तथा वामात्पार्श्वाच्चिह्नसंलग्ने द्वे सूत्रे देये यथाक्रमं चिह्नद्वयसंलग्ने इति भावः॥९७॥[1]

मध्य इति। मध्ये तयोरग्रे लग्नं अन्यत्सूत्रं देयं एवं त्रिकोणकं तस्याधः दक्षिणपार्श्वश्च चिह्ने च ते एव ज्ये यस्येत्येतादृशं गोलदलयुग्मं वृत्तार्धद्वयं तेन युक् योनिर्वा भवतीत्यर्थः।

अथ फलानयनम्—व्यास ३०/२ अयं त्रिद्वयङ्काग्निभश्चन्द्रै १०३९२३ रेभिर्निघ्नः ३१४३६७०६ खखखाभ्रार्क १२०००० सम्भक्ते लब्धस्त्र्यस्त्रभुजः २६/१/४ एतन्मितत्रिभुजैः समभुजं त्रिकोणेकं तथाधिककोणं लघुत्रिभुजमेकं तत्र बृहत् त्रिभुजे चतुर्थांशोनवृत्तव्यास एव लम्बः २२/५/४ एवं लघुत्रिभुजे व्यासचतुर्थांशो लम्बः ७/४/४ द्वयोस्त्र्यस्त्रयोर्भूमिर्बृहत्त्रिभुजभुजः अस्यार्थं भूम्यर्धं १३/०/६ इदं बृहल्लम्बेन गुणितं २९७/०/४ तथा लघुलम्बेन च ९९/०/१ अथ वृत्तार्धफलं तत्र लघुत्र्यस्त्रभुजो व्यास एव १५/१ अस्य वर्गः २२८/६/१ अयं भनवाग्निभि ३९२७ रेभिर्निघ्नः ८९८३६२ अयं पञ्चसहस्रेण ५००० भक्ते लब्धं वृत्तार्धद्वयफलं १७९/५/३ त्रयाणां योगे सर्वं क्षेत्रफलं ५७६/०/९ अधिकं ध्वजायः॥९८॥[2]

अथार्धचन्द्रकुण्डमाह—**केन्द्रादिति।** केन्द्रान्मध्यादुदग्दिशि गुणौघौ व्यासचतुर्थांशे पूर्वोक्तव्यासेन वृत्तं कुर्यात्तस्मिन् वृत्ते पुच्छं च आस्यं च ते स्पृशतीति एतादृशी ज्या तस्याः दानेन अर्धचन्द्रं कुण्डं भवतीत्यर्थः।

अथ फलानयनम्—व्यासः ३८/२/३ अस्य वर्गः १४६६/५/२ भनवाग्निनिघ्नः ५७५९५५५९/१ पञ्चसहस्रभक्ते लब्धं सर्ववृत्तफलं ११५२/०/०/२ अस्यार्धमर्धचन्द्रफलं ५७६/०/०/१ लक्षाधिकं ध्वजायः॥९९॥

अथ त्र्यस्रकुण्डमाह—**पुच्छादिति।** पुच्छादारभ्य परिधिप्राप्ते लग्ने उक्तव्यासार्धेन द्वे चिह्ने लक्षणे कुर्यात्, तथा मुखतः वक्त्रादारभ्य

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - १९,२०।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - २१,२२।

केन्द्रात्प्रत्यक्स्वहयां ७ शोनत्रिज्यामितप्रदेशे च।
उक्तव्यासेन वृतिं तत्पाश्वाभ्यां तिमिं च पूर्वस्याम्॥१०१॥
तेन त्र्यस्त्रि स्याद्वा वेद्याः प्रत्युक्तवृत्तकुण्डं स्यात्।
उक्तव्यासद्विगुणस्तृत्त्या कुर्यात्ततश्च तद्वक्तात्॥१०२॥

कृतचिह्नस्पष्टे द्वे सूत्रे देये इति शेषः। तथा तयोर्मध्ये चिह्नद्वयलग्नं अन्यत्सूत्रं देयम्। तेन अग्न्यस्त्रि त्र्यस्त्रि स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यासः ४२/१ अस्य त्रिद्वयङ्केत्यादिना भुजः ३६/४ त्रयणां तुल्यत्वाद् भुजार्धमेव भूम्यर्धं १८/२ अत्र चतुर्थांशोनवृत्तव्यासो लम्बः ३१/४/६ अनेन गुणितं भूम्यर्धं फलं ५७६/४/५ अधिकं ध्वजायः॥१००॥[१]

अथ प्रकारान्तरेण त्र्यस्रमाह—**केन्द्रादिति।** केन्द्रात्कोष्ठमध्यात्प्रत्यक् पश्चिमदिशि स्वीयसप्तमांशेन ऊना या त्रिज्या व्यासार्धं तन्मितप्रदेशे सार्धषट्त्रिंशदङ्गुलव्यासेन वृत्तं कुर्यात्। तद्वृत्तस्य यत्पार्श्वयुग्मं तस्माद् उक्तव्यासः षट्त्रिंशदङ्गुलस्तेन द्विगुणेन पूर्वस्यां दिशि मत्स्यं कुर्यात्। तत्तु वृत्तद्वयकरणेन भवति तस्य वक्त्रान्मुखात् सूत्रद्वितयं प्रथमवृत्तपार्श्वद्वयस्पृक् लग्नं कुर्यात्। तेन त्र्यस्रं त्र्यस्रकुण्डं वेति पूर्वत्र्यस्रेण विकल्पः भवतीत्यर्थः।

'अथ फलानयनम्'। प्रथमवृत्तव्यासः ३६/४ स्वसप्तांशोनत्रिज्या १५/५/१ केन्द्रादेतन्मितदेशे उक्तव्यासेन वृत्ते कृते वृत्तद्वयसम्पातसकाशात्पूर्ववृत्त-पार्श्वस्पृक् सूत्रमानं ३६/४ पूर्ववृत्तव्यासार्धं भूम्यर्धं १८/२ अनयोर्वर्गान्तरमूलं लम्बः ३१/४/६ लम्बगुणं भूम्यर्धं फलं ५७६/४/६॥१०१॥[२]

अथ वृत्तकुण्डमाह—**तेनेति।** वेद्या पश्चात्पश्चिमदिशि उक्तव्यासार्धेन वृत्तं कुण्डं कुर्वित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यासः २६/०/६ अयं भनर्वाग्ननिघ्नः खबाणसूर्यैर्भक्तो लब्धो वृत्तपरिधिः ८५/०/५ वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलमित्यादिना फलं तत्र व्यासपादः ६/६/१/५ अयं परिधिना गुणितः जातं फलं ५७६/२ अधिकं ध्वजायः।

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - २३,२४।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - २५,२६,२७,२८।

गुणयुग्मं तन्मध्येऽन्यत्सूत्रं पूर्ववृत्तपार्श्वस्पृक्।
पार्श्वाद्विस्तृतिदलमितषट्भिर्ज्याभिः षडस्रमतिसाधु॥१०३॥
चिह्नद्वितयान्तरितो युगभुजयुगलं विधेहि समकोणम्।
त्र्यस्राष्टकेषु कुर्यात्प्रतिकर्णदलज्यचापयुगलं तत्॥१०४॥

अथ षडस्रमाह—**पार्श्वादिति।** पार्श्वादिति सामान्योक्त्या कस्मादपि पार्श्वाद्विस्तृतिर्व्यासस्तस्य दलं अर्धं तन्मिताभिः षड्भिर्ज्याभिरतिसमीचीनं षडस्रं स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयम्। व्यासः २९/६ षडस्रे तु व्यासार्धमेव ज्या १४/७ अस्यार्धं ७/३/४ अथ व्यासार्धवर्गः २२१/२/१ भुजार्धवर्गः ५/५/२/४ अनयोरन्तरं १६५/७/५ अस्य मूलं १२/७/३ इदमेव लम्बः तेन ज्यार्धे गुणिते जातमेकत्र्यस्रफलं ९६/०/७ इदं षड्गुणं सर्वं क्षेत्रफलं ५७६/५/२ अधिकं ध्वजायः॥१०२-१०३॥[1]

अथ पद्मकुण्डमाह—**चिह्नेति।** उक्तव्यासवृत्तेऽष्टसु चिह्नेषु द्वयोर्द्वयोर्मध्यतः युगभुजं तयोर्युगलं युग्मं समकोणं विधेहि कुरु इति कृतेऽष्टत्र्यस्राणि भवन्ति तेषु प्रतित्र्यस्रे यौ कर्णौ तयोर्दलमर्धं ज्या ययोरेतादृशं चापयोर्धनुषोर्युगं युग्मं कुरु। तद्युग्मं अन्तर्बाह्ये च ज्या ययोस्त्र्यस्रस्यान्तरे त्र्यस्रबाह्ये च ज्या ययोरेतादृशं चापयुग्मं कुर्वित्यर्थः। तेन बहुशोभायुक्तं पद्मं पद्मकुण्डं भवतीत्यर्थः। तस्मिन् पद्मे रसांशैः षडङ्गुलैः कर्णिकापद्ममध्यप्रदेशः तस्याः षडङ्गुलैः पिण्डः उच्चता व्यासो विस्तृतिश्च स्याताम्। तद्बहिर्द्वादशांशैः॥१०४॥

केसराणां वृत्तं ततोऽष्टादशांशैर्दलमध्यभूवृत्तं ततश्चतुर्विंशांशैर्दल-कोटिवृत्तं इतो वृत्ताद्यत्प्रकृतिव्यासवृत्तं तद्दलाग्रकाणां स्यादित्यर्थः। तत्र या कर्णिका तां न खनेत्। उक्तं च शारदायाम्—

'वृत्तानि कर्णिकादीनां बहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत् ।। इति।

कामिकेऽपि—

'चतुरस्राष्टभागेन कर्णिका स्याद्विभागतः'।।
तद्बहिस्त्वेकभागेन केसराणि प्रकल्पयेत्।
तृतीये दलमध्यानि चतुर्थे दलकोटयः।।
चतुरस्राद्बहिः कुर्य्याद् दलाग्राण्यपि यत्नतः ।। इति।

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - २९,३०,३१।

अन्तर्बाह्यज्याकं तेन स्यात्पद्ममत्र बहुशोभम्।
तत्र रसांशैः ६ स्यातां पिण्डव्यासौ तु कर्णिकाया वै॥१०५॥
तत्परितः सूर्यांशैः १२ केसरवृत्तं ततोऽथ धृत्यशैः १८।
दलमध्यवृत्तमेतत्सिद्धांशैः २४ पर्णकोटिवृत्तं स्यात्॥१०६॥
प्रकृतिस्तृतिवृत्तमितो दलाग्रकाणां च कर्णिका न खनेत्।
अथवा तृतीयवृत्तं सयवनरवैः २०/१ कल्प्य चाष्टधा विभजेत्॥१०७॥

तत्र व्यासः ३१/३ अस्य चतुरस्रज्या २२/१/४ अस्य वर्गश्चतुरस्रफलं ४९२/२/२ अथावशिष्टं लघुत्र्यस्रचतुष्टयफलं तद्यथा यच्चतुर्विंशत्यंशैर्दलकोटिवृत्तं कृतं तस्याष्टास्रिज्या ९/१/४ अस्यार्धं भूम्यर्धं ४/४/६, अथ चतुरस्रज्योन-बृहद्व्यासः ९/१/४ अस्यार्धं लघुकोणलम्बः ४/४/६ लम्बगुणमिति फलं २१/४ चतुर्गुणं ८४/४ पूर्वफले योजिते सर्वं फलं ५७६/६/२ अधिकं ध्वजायः। धुर्द्वयस्य तु समानन्तरयोगे समतैवेति नियमात्तत्फलकरणप्रयासो वृथैवेति॥१०५-१०६॥

अथ प्रकारान्तरेण पद्ममाह—**अथवेति।** यत्पूर्वपद्मकुण्डे तृतीयं वृत्तमष्टादशांशैः कृतं तदत्र सयवनखैरेकयवसहितैर्विंशत्यङ्गुलैः कृत्वाऽष्टधा विभजेत्। ननु अत्र पारिभाषिकमष्टधाकरणं पूर्वमुक्तमपि पुनः कथमुक्तमिति चेत् तच्च पूर्वपद्मकुण्डवच्चिह्नद्वितयमध्यादष्टौ भागान् कुर्यादिति ध्वननार्थमित्यर्थः। तत्प्रतिचिह्नाच्चिह्नद्वयमिता या ततिर्व्यासार्धं तेन धनुर्द्वयं तनुयाद्विस्तारयेत्। तदनुलोमविलोमं एकमनुलोमं द्वितीयं विलोमं तद्विपरीतं तनुयात्। तेनात्र सुष्ठु सुन्दरं पङ्कजं पद्मकुण्डं स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। तत्र व्यासः २०/१ अष्टास्रिज्या ७/५/४ इयमेव भूमिः अस्यार्धं ३/६/६ व्यासार्धं १०/४/४ अनयोर्वर्गान्तरमूलं लम्बः ९/२/४ लम्बगुणमितिं फलं ३५/६/३ इदमष्टगुणं मध्याष्टास्रिफलं जातं २८/६/३ अथ धनुः फलं तत्राष्टास्रिज्यैव व्यासार्धं तयैव धनुः कृतत्वात् अस्यार्धं शरः ३/६/६ द्विगुणाष्टास्रिज्यैव व्यासः १५/३ व्यासच्छरोनादित्यादिना ज्या १३/२/५/५ व्यासपादस्य शरत्वात्तदूनव्यास एवं लम्बः ११/४/२ भूम्यर्धं च ज्यार्धं ६/५/२/६/४ लम्बगुणमिति वृत्तांस्त्र्यस्रफलं ७७, अथ धनुर्व्यासवर्गः २३७/२/६ रुद्रहत इत्यादिना फलं १८५/५/६ फलयोरन्तरं

प्रतिचिह्नाच्चिह्नद्वयमिततिनापि च धनुर्द्वयं तनुयात्।
अनुलोमविलोमं तत्तेन स्यादत्र पङ्कजं सुष्ठु॥१०८॥
अम्भोनिधिवह्न्यंशैः३४स्वखमुनिकु १७०लवेन चापि संयुक्तैः।
वृत्ते चिह्नद्वितयेत्याद्यब्ध्यस्त्रान्तमुक्तवत्कृत्वा॥१०९॥

१०८/५/६ अस्य त्र्यंशो धनुःफलं ३६/१/७ इदमष्टगुणं २८९/७ पूर्वाष्टास्त्रिफले युक्तं जातं सम्पूर्णं फलं ५७६/२ ध्वजायोऽपि धनुर्वृत्ते याज्या सा तद्वृत्तगतत्र्यस्त्रिज्यैव व्यासपादस्य शरत्वात्। अतस्तद्वृत्तफलं तद्गतत्र्यस्त्रफलोनं शेषं धनुस्त्र्यफलं तस्य त्र्यंश एव धनुःफलमिति स्पष्टमेव॥१०७-१०८॥

अथ श्रीमद्बापूदेवकल्पितं पद्मकुण्डमाह—**अम्भ इति।** अम्भोनिधिवह्न्यंशैश्चतुस्त्रिंशदङ्गुलैः स्वस्य यः खमुनिकुलवः। सप्तत्युत्तरशततमो भागस्तेन युक्तैर्वृत्ते कृते सति। पूर्वोक्तपद्मकुण्डे चिह्नद्वितयेत्यादिसमचतुरस्त्रद्वयकरणान्तं कृत्वा तद्भुजार्धाद्भुजमध्यतः भुजार्धेनैवान्तः वृत्तस्य अष्टौ दलानि विलिखेत्तथा केन्द्रान्मध्याद् दलसन्धिस्तदन्तमवधीकृत्य कर्णिकादीनि कर्णिकाकेसरपत्रमध्यभूसंज्ञानि त्रीणि वृत्तानि विलिखेत्तेन पद्मं पद्मकुण्डं भवतीति श्रीमद्बापूदेवैः प्रकल्पितं सुन्दरं रमणीयमित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यासः ३४/१/४/६ अस्य वर्गः ११६९/४/६/२/२ अस्यार्धं ५८४/६/३/१/१ अस्य मूलं २४/१/३/५/४ इदमेवाष्टौ वलयार्धानां व्यासः। अस्यैव मध्यव्यास इति संज्ञान्तरं अथास्य वर्गः ५८४/६/३/१/१ भनवाग्निनिघ्नः २२९६५०५/७/५/२ पञ्चसहस्रभक्तः लब्धं फलं वृत्तस्य ४५९/२/३/२ अथ बृहद्व्यासार्धं १७/०/६/३ इदं मध्यवृत्तान्तश्चतुरस्त्रभुजः अस्य वर्गश्चतुरस्त्रफलं २९२/३/१/३ इदं वृत्तफलादूने शेषं १६६/७/२ दलद्वयफलम्। अथ मध्यव्यासवर्गः ५८४/६/३/१/१ तथास्यैवाष्टास्त्रिज्या द्विद्वीत्यादिना ९/२/०/२ अस्या वर्गः ८५/५/०/५ द्वयोरन्तरं ४९९/१/२/४/१ अस्य मूलं २२/२/६/४ अष्टास्त्रिज्यया गुणितं २०६/६/६ द्विगुणमिदमन्तरष्टास्त्रफलं ४१३/५/४ इदं वृत्ताफलादूनं ४५/४/७/२ अस्यार्धं लघुवृत्तान्तर्मध्याद्-वृत्तसम्पातोत्पन्नलघुदलानां फलं २२/६/३/५ इदं दलद्वयफलादूनिते शेषं

बाह्वर्धाद्बाह्वर्धे नैवान्तोऽष्टौ दलानि वृत्तस्य।
केन्द्राद् दलसन्ध्यन्तं वृत्तानि त्रीणि कर्णिकादीनि॥११०॥
विलिखेदिति वा वापूदेवोक्तं स्याच्च सुन्दरं पद्मम्।
वक्त्रांसयोस्तु मध्यादष्टज्याभिः समाभिरष्टास्त्रम्॥१११॥

१४४/०/६/३ चतुर्गुणमिदं ५७६/३/१/४ अथवा दलद्वयफलं १६६/७/२ चतुर्गुणं ६६७/५ वृत्तफलादन्तरष्टास्त्रिफलं शोधिते शेषं ४५/४/७/२ द्विगुणमिदं ९१/१/६/४ चतुर्गुणितदलद्वयफलादूनं जातं ५७६/३/१/४ अधिकं ध्वजायः। अथवा वृत्तसम्पातपर्यन्त केन्द्राद्वृत्तं प्रकल्पितं तद्व्यासमानं पूर्वोक्ताष्टास्त्रिज्याद्विगुणं १८/४/०/४ अस्य लघुव्यास इति संज्ञा। अस्याप्यष्टास्त्रिज्या ७/०/५/२ तद्दलं ३/४/२/५ अस्य वर्गः १२/४/२/४ लघुव्यासार्धवर्गः ८५/५ द्वयोरन्तरं ७३/०/५/४ मूलं ८/४/४ जातोऽयं लम्बः अनेन गुणं ज्यार्धरूपं भूम्यर्धं ३०/२/४/४ अष्टगुणं २४२/४/४ जातमिदं लघ्वष्टास्त्रिफलम्। अथ पत्रचतुर्थांशद्वयमेलनेनैकं धनुस्तन्मानं यथा मध्यव्यासः २४/१/३/५/४ अस्य परिधिः ७६ अस्याष्टमांसो धनुर्दलं ९/४ मध्यव्यासदलं १२/०/५/६/६ द्वयोर्घातः ११४/७ अन्तरष्टास्त्रिज्यार्धमेव शरः ३/४/२/५ शरोनमध्यत्रिज्या ८/४/३/१/६ धनुर्ज्या तु बृहद्व्यासार्धादन्तर्लम्बोने सति शेषं धनुज्यार्मानं ८/४/३/१/२ अनयोर्घातः ७३/०/६ घातयोरन्तरं ४१/६/२ अष्टगुणं ३३४/०/६ लघ्वष्टास्त्रिफले युक्तं सत् ५७६/५/२ जातं सर्वफलं ध्वाजायोऽपि॥१०९-११०॥[१]

अथाष्टास्त्रमाह—**वक्त्रेति।** वक्त्रं मुखं अंसो बाहुस्तयोर्मध्यः मध्यदेशस्तस्मात्तुल्याभिरष्टज्याभिरष्टास्त्रं अष्टकोणकुण्डं भवतीत्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यास २८/४ अस्यार्धं १४/२ तथा द्विद्वीत्यादिनाष्टास्त्रिज्या १०/७/५ अस्यार्धमावाधा ५/३/६/४ अथ व्यासार्धकृतिः २०३/०/४ आवाधाकृतिः ३० अनयोरन्तरं १७२/७/४ अस्य मूलं लम्ब १३/१/३ अनेन भूम्यर्धं गुणितं जातमेकत्र्यस्त्र-फलं ७२/०/२ इदमष्टगुणं सर्वकुण्डफलं ५७६/२ अधिकं ध्वजायः॥१११॥[२]

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ३२,३३,३४,३५।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ३६,३७।

कुण्डाकृतिसिद्धौ ततदधिकाङ्कादिकमिह प्रमृज्यात्र।
कुण्डानां करणे स्यात्कर्तुः प्राग्वक्त्रता च सर्वत्र॥११२॥

मध्याद्वृत्तं प्रकुर्यात्त्रियवयुतखसिन्ध्व ४०/३ ङ्गुलैरत्र काष्ठा
व्याशामध्यास्त्रमेवं युग ४ भुजयुगलं २ तस्य दोर्मध्यतः स्यात्।
अष्टौ ज्या स्युस्तदन्तात्सशरमुनियवाभ्राब्जपर्वै १०/७/५ ज्यकाभिः
कुण्डार्कोक्तं नृपालोन्मित १६ गुण ३ भुजकानि प्रमार्ज्योरगा ८ स्त्रम्॥११३॥

कुण्डेति। अत्र कुण्डस्याकृतिराकारः सिद्धौ सत्यां अधिकं यच्चिह्नं रेखादि तत् प्रमृज्य तद् अभीष्टं कुण्डं स्यादित्यर्थः। तथा कुण्डानां करणे रेखादिकरणे कर्तुः कर्ता तस्य सर्वत्र प्राग्वक्त्रता प्राङ्मुखता स्यादित्यर्थः॥११२॥

अथ कुण्डार्कोक्तमष्टास्त्रं स्रग्धरयाह—**मध्यादिति।** मध्यात् केन्द्रात्त्रियवयुतचतुश्चत्वारिंशदङ्गुलैर्वृत्तं कुर्यात्तत्र वृत्ते काष्ठा विदिक् तयोर्मध्ये अस्राः कोणा यस्यैवं युगभुजयुगलं चतुर्भुजद्वयं कुर्यात्तस्य चतुर्भुजद्वयस्य ये दोषो भुजास्तेषां मध्यादष्टौ ज्याः स्युस्तदन्तात्तासामपि मध्यात्सशरमुनियवाभ्राब्जपर्वैः दशाङ्गुलसप्तयवपञ्चयूकात्मकाभिः १०/७/५ ज्याभिः नृपालोन्मितानि यानि गुणभुजकानि त्र्यस्राणि उत्पद्यन्ते, तानि प्रमार्ज्य प्रोञ्छ्य उरगास्रमष्टास्रं यत्कुण्डार्के उक्तं तत्स्यादित्यर्थः। तथा कुण्डार्कः—

युगभुजयुगलं दिग्विदिक्कोणकं स्याद्बाह्यत्र्यस्राष्टकोणम्।
त्रियवयुतखसिन्ध्वङ्गुले ४०/३ ऽष्टास्रि कुण्डमिति।।

अत्र तातचरणकृतपद्मिनीटीका। यवत्रयाधिकचत्वारिंशदङ्गुले वृत्ते दिगविदिशोऽन्तरालेऽष्टौ चिह्नानि कार्याणि। तत्र समचतुरस्रद्वयं कार्यम्। तत्र यानि बाह्याष्टकोणानि भवन्ति तदेकत्रिकोणभूमध्यादारभ्य-तत्समीपस्थद्वितीयत्रिकोणभूमिमध्यपर्यन्तमेको भुजो देयः। एवं तत्र त्रिकोणाष्टकद्वयमुत्पन्नं भवति तत्परिमार्ज मध्ये ज्याष्टकं रम्यं कुण्डमुत्पद्यते अयमेव मूलाशय इति भाति। यथा श्रुतार्थकरणस्यादोषावहत्वादित्यादि-सुविस्तृतमुक्तं जिज्ञासुभिस्तत एवोह्यम्। अत्र तात्पर्यांशः।

खेटक्षेत्राकारकुण्डानि पूर्वैः प्रोक्तानि स्युः पारिजातेऽथ नव्यैः।
नात्र प्रोक्तानीत्यतो वच्मि वृत्तक्षेत्राकारोन्मानपूर्वाणि सम्यक्॥११४॥

युगभुजयुगलमिति वाक्यस्थदिग्विदिक्पदे दिगन्तरालसमासमङ्गीकृत्य त्र्यस्राष्टकपदस्य लक्षणया त्र्यस्राष्टकद्वयमित्यर्थः कृतः। अयमेवार्थः साधीयान्।

अत एव कुण्डार्कस्य प्राचीनटीकाकारै रघुवीरदीक्षितैरप्यस्य श्लोकस्य व्याख्यानावसरेऽस्य प्रकृतिवृत्तं सार्धाष्टाविंशत्यङ्गुलं प्रागेवोक्तम्। इदं स्थितिवृत्तं पूर्वं क्रियावृत्तमिति भेद इत्युक्तम्।[1]

यत्तु द्वियवयुतमुनित्र्यङ्गुलेति। तथा त्रियवयुतखसिन्ध्वङ्गुलेति पाठकल्पका स्वभ्रान्तिमजानाना मन्दबुद्धीनां व्यामोहकर्तारस्तकल्पित-पाठोऽपपाठ इत्यपेक्षणीयः।

अथ फलनायनम्। तत्र व्यासः ४०/३ अस्य चतुरस्रिज्याः २८/४ इयमेवान्तर्गताष्टास्रस्य व्यासः स तु पूर्वोक्ताष्टास्रिकुण्डे उक्तस्तत्रोक्तवत्फलम् ५७६/२ अधिकं ध्वजायः॥११३॥[2]

एवं नवकुण्ड्यादिषु कुण्डान्युक्त्वाधुना ग्रहयज्ञोपयोगीनि ग्रहपीठाकारकुण्डानि वक्तुं शालिन्योपक्रमते। **खेटेति।** खेटा ग्रहास्तेषां क्षेत्राणि पीठानि तेषामाकार इवाकारो येषां तानि कुण्डानि पूर्वैः प्राचीनैः पारिजातग्रन्थविशेषे प्रोक्तानि कथितानि स्युरित्यर्थः। अथ नव्यैस्तु अत्र कुण्डग्रन्थादौ न प्रोक्तानि अतो हेतोस्तानि वच्मि कथयामित्यर्थः। वृत्तं कुण्डादौ करणीयं क्षेत्राकारो वर्तुलादिः। उन्मानं क्षेत्रोन्मानं क्षेत्रफलमिति यावत्। तानि पूर्वं येषु एतादृशानि ग्रहकुण्डानि सम्यगुत्तमप्रकारेणेत्यर्थः। तथा च शान्तिमयूखे।

अत्रैकाग्निब्रह्माचार्यपक्षमुक्त्वा तेषां नवसंख्यकुण्डेषु तत्तद्ग्रहाकारांश्चाह प्रयोगपारिजाते भगवान्—

मनोरमे शुचौ देशे होमशालामलङ्कृताम्।
कृत्वा तु संवृतं प्राज्ञो ग्रहस्थानं प्रकल्पयेत्॥

तन्मध्ये भास्करस्थानं भवेत्पूर्वोत्तरे बुधः।
पूर्वस्मिन् भार्गवस्थानं सोमो दक्षिणपूर्वके॥

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ३८,३९।

२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ४०,४१।

मध्ये वृत्तं पूर्वदिक्तः शरास्त्रमबध्यस्त्रं च त्र्यस्त्रशूर्पाकृतीह।
चापं केतुर्दीर्घरत्नाकारास्त्रं बाणाकारं त्रीणि चोक्तानि तेषु॥११५॥

दक्षिणस्यां कुजस्थानं राहोर्दक्षिणपश्चिमे।
शनेस्तु पश्चिमे स्थानं केतोरुत्तरपश्चिमे।।
उत्तरस्यां गुरोः स्थानमेवं च स्थण्डिलं भवेत्।। इति।

स्थण्डिलमग्न्यर्थं कुण्डमिति॥११४॥

अथ ग्रहकुण्डस्थानान्याकारांश्च शालिन्याह—**मध्य इति।** मध्ये मण्डपमध्यकोष्ठे वृत्तं वलयं पूर्वदिक्त आरभ्य प्रादक्षिण्येनाष्टसु कोष्ठेषु शरास्त्रं पञ्चकोणं अब्ध्यस्त्रं चतुरस्त्रं त्र्यस्त्रि त्रिकोणं शूर्पाकृति शूर्पाकारं च ते चापं धनुः केतुर्ध्वजः दीर्घरत्नाकारस्त्रमायतचतुरस्त्रं बाणाकारं शकारमित्येतानि नव कुण्डानि तेषूक्तकुण्डेषु त्रीणि वृत्तचतुरस्त्रत्रिकोणानि पूर्वमेवोक्तान्यतोऽग्रे नोच्यन्त इत्यर्थः। उक्तं च शान्तिमयूखे प्रयोगपारिजाते च—

भास्करस्य तु वृत्तं स्याच्चन्द्रस्य चतुरस्त्रकम्।
कुजस्य तु त्रिकोणं स्याद्बाणाकारं बुधस्य तु।।

गुरोर्दीर्घं चतुष्कोणं पञ्चकोणं सितस्य तु।
चापाकारं शने राहोः सूर्यं केतोर्ध्वजाकृति।।

नवधा विभजेदग्निं श्रौतकर्मविधानतः।
ऋत्विजश्च यथायोगं कुण्डेषु ब्राह्मणाः पृथक्।। इति।

अत्रैव च स्थण्डिलं भवेदित्यनेन स्थण्डिलानां कुण्डानां च स स आकारस्तत्तद्दिक्षु निवेशश्चोक्तः ब्राह्मणाः पृथगित्यनेन नवाचार्या ब्रह्मणाश्च नवेत्युक्तम्। अत्रार्थसङ्क्षेपः प्रयोगपारिजाते—

मध्यकुण्डे स्मार्ताग्निं प्रणीयाज्यभागान्तेऽर्कादिसमिद्भिर्गुडौदनादि-हविर्भिराज्येन च ग्रहादिमन्त्रैर्हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिश्च तिलान् हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं कृत्वा पूर्णाहुतीर्जुहुयुरिति॥११५॥

अथ दिक्क्रमेण कुण्डेशान् ग्रहांश्छालिन्या—**तेषामिति।** तेषां कुण्डाना-मित्यादिस्पष्टम्। ग्रहाणां वर्णानाह—**रक्त इत्यादि।** तदुक्तं वृद्धपराशरेण—

रक्तं कश्यपजो भानुः शुक्लो ब्रह्मसुतः शशी।
रक्तो रुद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः।।

तेषामीशाः सूर्यशुक्रेन्दुभौमा राहुर्मन्दः केतवो जीवसौम्यौ।
रक्तः श्वेतः श्वेतरक्तौ त्रयोऽथ कृष्णाभाः स्युः पीतवर्णौ क्रमेण॥११६॥
एतेष्वत्र प्राङ्मुखौ सूर्यशुक्रौ भौमो राहुः केतवोऽवाङ्मुखाश्च।
प्रत्यक्कात्मा चन्द्रसौरी तत द्वौ जीवज्ञैत्वं विद्धि चोदङ् मुखाब्जौ॥११७॥

पीतो ब्राह्मः सुराचार्यः शुक्लः शुक्रो भृगुद्वहः।
कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः॥
कृष्णः केतुः कृशानूत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी॥ इति॥११६॥

अथ ग्रहाणां दिगभिमुखत्वं शालिन्याह—**एतेष्विति।** एतेषूक्तग्रहेषु प्राङ्मुखावित्यादिस्पष्टम्। तदुक्तं स्कान्दे—

शुक्रार्कौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरुसौम्यावुदङ्मुखौ।
प्रत्यङ्मुखः शनिः सोमः शेषा दक्षिणतो मुखाः॥ इति।

अथ राहोः शूर्पाकारकुण्डं स्रग्धरयाह—**वक्त्रादिति।** वृत्ते कृते सति वक्त्रात्पुच्छात्पार्श्वादिति सामान्योक्त्या पार्श्वद्वयादि च त्रिभुजकुण्डे यथोक्तं पुच्छात्परिधिप्राप्तेत्याद्युक्तरीत्या यथा तत्र पुच्छाद् व्यासार्धेन चिह्नद्वयं कृत्वा ज्या दत्ता तद्वदत्रापि मुखात्पुच्छात्पार्श्वद्वयाच्च ज्याचतुष्कं सूत्रचतुष्टयं प्रदेहि। ताभिर्ज्याभिः मध्ये युगास्रं चतुर्भुजं सुसमं भवति। तस्य पूर्वदिग्ज्या सम्पातद्वयात् पुच्छाकृता या ज्या तस्याग्रद्वयं गच्छतीति। स्पृशतीति यावत्। एतादृशं सुसमं सूत्रद्वयं प्रदेहि। ततश्च मध्यचतुरस्रस्य या प्राग्ज्या तस्यार्धमेव ज्या यस्येत्येतादृशं वृत्तार्धद्वयं प्रदेहि। तेन राहोः शूर्पं शूर्पाकारकुण्डं स्यादित्यर्थः।[१]

अथ फलानयनम्। तत्र व्यासः ३८/३/२ त्रिद्व्यङ्केत्यादिना गुणितः ३९९६५६९/७/५/६ खखेत्यादिना भक्ते लब्धा त्रयस्त्रिज्या ३/२/३/४ तथा षड्स्त्रिज्या १९/१/५ द्वयोर्योगः ५२/४/०/४ अस्य दलं २६/२/०/२ लम्बरूपया षडस्त्रिंज्यया गुणितं ५०४/१/२ इदं विषमचतुर्भुजफलम्।[२]

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ४२,४३।
२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ४४,४५।

वक्त्रात्पुच्छाच्च पार्श्वात्त्रिभुजवदिह भो ज्याचतुष्कं प्रदेहि
ताभिर्मध्ये युगास्त्रं प्रभवति खलु तत्पूर्वसम्पातयुग्मात्।
पुच्छादस्मिन् कृतज्याग्रगमिह सुसमं सूत्रयुग्मं ततश्च
वेदा ४ स्त्रप्राग्ज्यकार्धज्यकवृतिदलयुग्मेन शूर्पं च राहोः॥११८॥

वृत्ते पूर्वोक्तवदिह ज्याग्रस्पृक्सूत्रयुगुलकान्तं च।
केन्द्रादथ पूर्वाशासम्पातद्वयगतेन धनुषा तत्॥११९॥

मध्याद्व्यासाग्नि ३ भागे स्वरवि १२ लवयुते निर्ऋतौ वृत्तमेकं
तस्मिन् सव्याच्च पार्श्वात्तदनु कुरु वृतिं वृत्तयोर्दक्षसव्यात्।
पार्श्वात्कृत्वा च बाह्ये स्वृतिरस ६ लवगौ द्वौ गुणौ तत्सकाशात्
पार्श्वस्कन्धान्तरस्पृग्गुणमपि कुरु पार्श्वान्तरे ज्यां धनुः स्यात्॥१२०॥

अथ वृत्तार्धद्वयफलम्। तत्र षडस्रिज्यार्धमेव व्यास: ९/४/६/४ अस्य वर्ग: ९१/१/१/५ रुद्राहत: १०१३/५/२ शक्रहृत: ७१/५/४/१ फलयोर्योग: ५७५/६/६/१ यवोनं फलं तददोषाय स्वल्पान्तरत्वात्॥११८॥

अथ प्रकारान्तरेण शूर्पकुण्डं गीत्यार्ययाह—**वृत्त इति**। वृत्ते कृते सति सर्वं पूर्वोक्तवद्दक्षपार्श्वात्कृतज्याग्रद्वयस्पृक् कुर्यात्। अथ ततः केन्द्रान्मध्यात्पूर्वस्यां दिशि यत् सम्पातद्वयं तस्मिन् गतेन लग्नेन धनुषा तत् शूर्पाकारं कुण्डं स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यास: ३९/०/६ त्र्यस्रिज्या ३३/६/६/६ अथ व्यासदलं २९/४/३ योग: ५३/३/१/६ दलं २६/५/४/७ लम्बरूपेण व्यासदलेन गुणितं जातं विषमचतुर्भुजफलं ५२१/७/३।

अथ धनु:फलानयनार्थं मध्यचतुरस्रस्य भुजवर्ग: ३८२/०/०/५ इदं मध्यचतुरस्रफलमपि द्विगुणं ७६४/०/१/२ अस्य मूलं धनुर्व्यास: २७/५/१/२ परिधि: ८६/७/०/४ धनुर्व्यासाङ्घ्रि: ६/७/२/२ परिधिगुण: ६००/३/५/३ इदं धनुर्वृत्तफलं अस्मान् मध्यचतुरस्रफलोनात् २१८/३/०/३ चतुर्थांश: ५४/५/६/०/६ विषमचतुरस्रफले युक्त: ५७६/४/१/०/६ अधिकं ध्वजाय:॥११९॥

अथ शनेर्धनुराकारं कुण्डं स्रग्धरयाह—**मध्यादिति**। मध्यादुक्तव्यासस्य अग्निभागे तृतीयांशे स्वकीयो यो रविलव: द्वादशांशस्तेन युक्ते एतादृशे देशे

मध्याद्वयोर्दिशायां ततिगुण३लवके स्वेन १२ भागेन युक्ते
देशे वृत्तं प्रकुर्यान्मुखत उभयतः पुच्छतोऽष्टद्विभागे।
चिह्नान्येष्वब्धिसूत्राण्यति चं यमगुणस्याग्रतो मध्यतश्च
सूत्रे दक्षांसतोऽधः परिधियुगकरांशे च लग्ने ध्वजाभम्॥१२१॥

निर्ऋतौ दिशि एवं वृत्तं तथा तदनु तस्मिन् वृत्ते सव्यपार्श्वं मध्यं प्रकल्पय वृत्तिं वृत्तं कुरु। तयोर्वृत्तयोर्दक्षवामपार्श्वाद्बाह्ये बहिस्तृतेर्व्यासस्य रसांशः षष्ठांशस्तं गच्छत इति तादृशलवगौ द्वौ गुणौ कृत्वा ताभ्यां सकाशात् पार्श्वश्च स्कन्धश्च तयोरन्तरं मध्यं स्पृशतीत्येवं गुणं सूत्रमपि कुर्वित्यर्थः। तथा पर्धितपार्श्वयोरन्तरे ज्यां ज्यारूपं सूत्रं कुर्वित्यर्थः। तेन धनुः कुण्डं स्यादिति।

अथ फलानयनम्। व्यासः २९/२/४ तत्र पूर्वदिक्सम्पातात्परिधिद्वयस्य दक्षसव्यपार्श्वाधिज्यादाने धनुर्मध्ये बृहत्त्रिभुजमुत्पद्यते। तथा द्वे धनुषी उत्पद्येते। तस्य भूमिः सार्धव्यासः ४४ अस्यार्धं २२, अथ वृत्तद्वयं सम्पातमध्ये समभुजत्र्यस्रद्वयमुत्पद्यते, तस्य भुजो व्यासार्धोनं बृहत्त्र्यस्रभूम्यर्धं अन्तस्त्रिभुजाबाधा ताभ्यां लम्बमानं १२/६ लम्बवर्गभूम्यर्ध्यवर्गयोगमूलं धनुर्ज्यामानं २५/३/३ लम्बगुणमित्यादिना बृहत्त्र्यस्रफलं २८०/४ अथ द्वयोर्धनुषोः फले तत्र ज्याव्यासयोगान्तरघातमूलं व्यासस्तदूनो दलितः शरः स्यादित्यादिना शरः ७/२। धनुर्मानानयनं स्वल्परीत्याहाऽऽर्यभट्टः। शरवर्गात्षड्गुणिताज्ज्याकृतियुक्तात्पदं चापमित्यादिना चापमानं ३०/४/५। धनुः फलानयनेऽस्मत्तातचरणकृतश्लोकः—

धनुर्दलं व्यासदलेन हत्वा शरोनया त्रिज्यकयाज्यकार्धम्।
तयोर्द्वयोर्यद्विवरं तदेव धनुः फलं स्पष्टतरं भवेच्च।।

इत्यादिना धनुःफलं १३५/२ इदं द्विगुणं धनुषोः फलं २७०/४ अथ परिधिद्वयबाह्यतः लघुत्र्यस्रद्वयं तस्य फलं यथा व्यासषष्ठांशः ४/७/१ अस्याग्रात्पार्श्वश्रोणिमध्यस्पृगन्यभुजे कल्पिते त्रिभुजमुत्पद्यते। तस्य भूमिरष्टस्त्रिज्या तन्मानं द्विद्विन्देत्यादिना ११/१/६ ज्याव्यासेत्यादिना शरः १/०/६/७ अनेन सहितो व्यासषष्ठांशो लम्बः ५/७/७/७ अष्टास्त्रिज्यार्धमान्बाधा ५/४/७ लम्बगुणमिति बहिस्त्रिभुजद्वयफलं ३३/५/१/२ अथ शरवर्गेत्यादिना धनुर्मानं ११/४/३/२/४ धनुर्दलमित्यादिना धनुःफलं ८/५/१/६ इदं बहिस्त्र्यस्रफलोने शेषं त्र्यस्रफलं सर्वेषां योगे धनुःकुण्डफलं ५७६ सूक्ष्मगणितेन ध्वजायोऽपि॥१२०॥[1]

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ४६,४७।

वृत्ते चोक्ते दक्षिणाच्चैव सव्यात्पार्श्वादूर्ध्वाधःस्थितं खण्डयुग्मम्।
त्रेधा कृत्वा पार्श्वतोऽधोर्ध्वचिह्नयुग्मस्पृग्ज्याभिर्गुरोरब्धिकोणम्॥१२२॥

अथ केतोर्ध्वजाकारं कुण्डं स्रग्धरयाह—**मध्यादिति**। मध्यात् केन्द्राद् वायोर्दिशायां ततेर्व्यासस्य यो गुणलवस्तृतीयांशः स्वस्य च इनभागो द्वादशांशस्तेन युक्ते देशे वृत्तं कुर्यात्तस्य मुखादुभयतः पुच्छतश्चापि अष्टाविंशत्यंशे चिह्नानि कुर्यात्तेष्वब्धिसूत्राणि कुर्यात्तेषु सूत्रेषु यो यमगुणः दक्षिणदिक्सूत्रं तस्याग्रतो मध्यतश्च द्वे सूत्रे दक्षांसतोऽधः परिधेर्युगकरांशश्चतुर्विंशांशस्तस्मिन् लग्ने सति केतोर्ध्वजाभं ध्वजाकारं कुण्डं स्यादित्यर्थः।

अथ फलानयनम्। व्यासः ५८/१/४ अस्याष्टाविंशत्यंशः २/०/५ द्विगुणो लघुज्या ४/१/२ व्यासयोगः ६२/२/६ अन्तरं च ५४/०/२ घातः ३३६८/४/१ मूलं बृहज्जया ५८/०/३ लघुज्यया गुणितं २४१/२ जातमिदं ध्वजदण्डफलम्। अथास्य वृत्तस्य त्र्यस्त्रिज्या ५०/३/१ अस्यार्धं २५/१/४/४ लघुज्यार्धोनं २३/०/७/४ जातेयं लम्बः।[1]

अथ बृहज्ज्यया चतुर्थांशो भूम्यर्धं १४/४/०/६ लम्बगुणमिति ध्वजत्र्यस्रफलं ३३५/३/६ फलयोर्योगः ५७६/५/७ अधिकं ध्वजायः। अथवा बृहज्ज्यार्धं २९/०/१/४ षडस्त्रिज्यार्धोनं १४/४/३ जातेयं प्रथमा बाधा। तथा नयोनं बृहज्ज्यार्धं १४/३/६/४ अपरा बाधा।

अथ लम्बेन प्रथमा बाधागुणिते जातं ३३६/२/२ अस्यार्धं १६८/१/१ तथापरामपि गुणिते जातं ३३४/६/४ अस्याप्यर्धं १६७/३/२ अर्धयोर्योगः ३३५/४/३ पूर्वानीतदण्डफले युक्तं ५७६/६/३ जातमिदं सर्वफलं अधिकं ध्वजायः॥१२१॥

अथ गुरोर्दीर्घचतुरस्त्रं शालिन्याह—**वृत्तेति**। उक्तव्यासेन कृतं यद्वृत्तत तस्मिन् दक्षात्पार्श्वात्सव्यपार्श्वाच्च ऊर्ध्वाधः स्थितं यत्खण्डयुग्मं पारिभाषिकखण्डाष्टकेषु तत्त्रेधा कृत्वा त्रिधा विभज्य ततः पार्श्वद्वयात् अधोर्ध्वं यच्चिह्नद्वयं तत्स्पृक् चतसृभिर्ज्याभिः श्रीगुरोबृहस्पतेरब्धिकोणं चतुरस्त्रमित्यर्थः। श्रीगुरोरित्यनेनायतचतुरस्त्रमुक्तं भवतीति।[2]

अथ फलानयनम्। अत्र व्यासः ३६/३/७ तत्र लघुज्यामानं व्यासार्धं कल्पितं १८/१/७/४ अथ ज्याव्यासेत्यादिना शरः २/३/४/२५/३ अयं

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ४८,४९।
२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५०,५१।

वृत्ते पार्श्वद्वयस्पृक् ततिसुसमगुणं सम्प्रसार्याष्टकोण-
ज्यां दक्षे चापि सव्येऽसकटियुगुलपार्श्वान्तरं च स्पृशन्तीम्।
वक्त्रांसश्रोणिपुच्छान्तरगमथ गुणं वामभागे तनुत्वं
तत्सम्पाताच्च पूर्वापरदिशि वसुकोणज्यकाङ्घ्रौ च चिह्ने॥१२३॥

द्विगुणः ४/७/०/५ अनेनोनव्यासाच्छेषं ३१/४/६२/५ इयमेव बृहज्ज्या। आयते तद्भुजकोटिघात इति फलं ५७६/३/३/६/०/५ अधिकं ध्वजायः॥१२२॥

अथ बुधस्य बाणाकारकुण्डं स्रग्धरायुग्मेनाह—**वृत्तेति।** वृत्ते कृत्ते पार्श्वद्वयं स्पृशतीत्येतादृशं ततिना व्यासेन सुसमं समानं गुणं सूत्रं सम्प्रसार्य विस्तार्याष्टकोणज्यां कृतवृत्ताष्टास्रिज्यां दक्षे सव्ये चापि। दक्षभागे सव्यभागे चापीत्यर्थः। तां अंसयुगलस्य कटीयुगुलस्य पार्श्वयुगुलस्य चान्तरं मध्यं स्पृशन्ती दत्वा अथ तदनन्तरं वामभागे मुखस्कन्धश्रोणिपुच्छानामन्तरं मध्यं गच्छतीत्येतादृशं गुणं सूत्रं तनु विस्तारय। अथ तत्सूत्रव्याससूत्रयोः सम्पातात्पूर्वापरदिशि पूर्वस्यां पश्चिमायामपि वसुकोणाष्टकोणस्य ज्यायाः जीवायाः अङ्घ्रौ चरणे चरणमितदेश इत्यर्थः। एवं दक्षात्पार्श्वादपि अष्टास्रिज्याङ्घ्रिदेशे चिह्ने लक्षणे कुर्यादित्यर्थः।

अथ तदनन्तरं गुणयुगुलं सूत्रद्वयं चिह्नलग्नं प्रदद्यात्। ततस्तन्मूलाद् दक्षसम्पातः दक्षज्यासम्पातं गच्छतीत्येतादृशं गुणयुगं सूत्रयुग्मं देहि। अथो अनन्तरं वामभागे मध्यात् सम्पाततः मध्यसम्पातादित्यर्थः। तथा प्रागपरदिशि भुजङ्गास्त्र्यष्टास्रिणः जीवायाः अष्टमांशात्त्रिगुणात् सव्यज्यका वामज्याया अन्तर्गतं मध्यगतं गुणयुगुलं कुरु। अनेन बाणं बाणकुण्डं स्यादिति शेषः।

अथ फलानयनम्। तत्र व्यासः ५८/७ अस्याष्टास्रिज्या २२/४/०/२ योगः ८१/३/०/२ अन्तरं ३६/२/७/६ घातः २९५९/६/५/६ मूलं बृहज्ज्या ५४/३/२/०/५ अनयोर्नं व्यासार्धं मध्यशरः २/१/६/७/५/४ अष्टास्रिज्योनव्यासार्धं बृहच्छरः १८/१/३/७ शरयोर्योगः २०/३/२/६५/४ अनेनोन व्यासो बृहद्भुजः ३८/३/५/१२/४ अष्टास्रिज्यार्धं लघुभुजः ११/२/०/१ घातः ४३२/५/५ मध्यशरो न बृहच्छरस्त्रिकोणलम्बः १५/७/४/७/२/४ अष्टास्रिज्याष्टमांशः २/६/४ त्रिगुणो भूम्यर्धं ८/३/४ घातः १३४/४/६॥

अथ व्यासः ५८/७ अस्याष्टास्रिज्यार्धं ज्या ११/२/०१ योगः ७०/१/०/१ अन्तरं ४७/४/७/७ घातः ३३३९/५/२ मूलं ५७/६/२/४

एवं दक्षाच्च पार्श्वादथ गुणयुगुलं चिह्नलग्नं प्रदद्यात्
तन्मूलाद्दक्षसम्पातगतगुणयुगं देह्यथो वामभागे।
मध्यात्सम्पाततः प्रागपरदिशि भुजङ्गास्त्रि जीवाष्टमांशात्त्रिघ्नात्
सव्यऽज्यकान्तर्गतगुणयुगुलं कुर्वनेनात्र बाणम्॥१२४॥

पञ्चास्त्रं च त्र्यस्त्रकं बाणकुण्डं दीर्घाम्नायास्त्रीति सौम्याग्रकाणि।
चापं शूर्पं पश्चिमाज्यं च केतुर्दक्षाग्रः स्यात्सौमिकं चोत्तरास्यम्॥१२५॥

पीठानि स्युः खेचराणां तु तत्तत्कुण्डाकाराणीह चामेखलानि।
योनिर्न स्यात्तेषु चारवातकानि ह्यंशेनैवोच्चानि कुर्वीत यज्ञे॥१२६॥

अनेनोनव्यासार्धं लघुशरः ०/४/२/६ लघुशरो न मध्यशरोभूम्यर्धं १/५/४/१/५ अष्टास्त्रिज्याचतुर्थांशो लम्बः ५/५/०/४ घातः ९/४/०/६ घातत्रययोगः सर्वं फलं ५७६/६/३/६ नमध्यशरो भूम्यर्धं १/५/४/१/५ अष्टास्त्रिज्याचतुर्थांशो लम्बः ५/५/०/४ घातः ९/४/०/६ घातत्रययोगः सर्वं फलं ५७६/६/३/६ अधिकं ध्वजायः॥१२३-१२४॥[१]

अथ ग्रहकुण्डानां निवेशनं शालिन्याह—**पञ्चास्त्रमिति**। स्पष्टं दीर्घाम्नायास्त्रीति बृहस्पतेदीर्घचतुरस्त्रम्। सौमिकं चन्द्रस्य चतुरस्त्रमिति। नात्र ग्रहवत्तत्तद्दिगभिमुखत्वं कुण्डानां कल्पनीयम्, अनुक्तस्थले योनिपातात्। तथा च निर्णयसिन्धुटीकायां राङ्गनाथि। यष्टिर्बाणः सौम्यदिश्यग्र एव त्र्यस्त्रं तादृक् शूर्पकं पश्चिमास्यम्। बार्हस्पत्यं सौम्यदीर्घं धनुस्तत्पश्चाद् दिग्ज्यं शुक्रियं सौम्यकोणमिति दिक्॥१२५॥

अथ ग्रहकुण्डप्रसङ्गाद्ग्रहपीठकरणप्रकारमपि शालिन्याह—**पीठानीति।** खेटवेद्यां पीठानि स्युः तत्तत्कुण्डाकाराणि यस्य ग्रहस्य यथा कुण्डाकारः तथैव पीठमित्यर्थः। अनेन ग्रहदिगभिमुखत्वमपि पीठानां बोध्यम्। तान्यमेखलानि मेखलारहितानि अखातकानि खातो गर्तस्तेन रहितानि तेषु पीठेषु योनिर्न स्यात्तानि अंशेन ग्रहवेदिचतुर्विंशांशोंऽशस्तेनोच्चानि यज्ञे ग्रहयज्ञे कुर्वीतैवेत्यर्थः। अथैतेषां पीठानामाकारादिनियमे ग्रहपीठमालायां वसिष्ठः—

वृत्तं मण्डलमादित्ये चतुरस्त्रं निशाकरे।
भूमिपुत्रे त्रिकोणं स्याद् बुधे वै बाणसन्निभम्॥

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५२,५३।
२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५४।

गुरौ तु पट्टिशाकारं पञ्चकोणं तु भार्गवे।
शनौ स्याद्धनुषाकारं शूर्पाकारं तु राहवे।।
केतोश्चैव ध्वजाकारं मण्डलानि यथाक्रम्।। इति।

गोभिलोऽपि पीठानामङ्गुलनियममाह—

द्वादशाङ्गुलकं सूर्ये मध्ये वृत्ते तु कारयेत्।
चतुर्विंशाङ्गुलकं सोमे मध्ये वृत्तं तु कारयेत्।
चतुर्विंशाङ्गुलं सोमे आग्नेय्यां चतुरस्त्रकम्।।
वेदाङ्गुलं तु भौमस्य पैत्र्यां कुर्यात् त्रिकोणकम्।
वेदाङ्गुलं बुधे कार्यं रौद्र्यां बाणाकृतिस्तथा।।
षडङ्गुलमुदग्जीवे पट्टाकारं तु कारयेत्।
नवाङ्गुलं भृगौ पूर्वे पञ्चकोणं तु कारयेत्।।
पश्चिमे द्व्यङ्गुलं सौरेर्धनुषाकृतिं कारयेत्।
शूर्पाकारं लिखेद्राहोः पञ्चविंशतिनैर्ऋते।।
पञ्चविंशाङ्गुलं केतोर्वायव्ये च ध्वजाकृती ।। इति।

ग्रन्थान्तरे पीठाङ्गुलनियमः—

द्विषडङ्गुलकं सूर्ये सोमे तु द्विगुणं लिखेत्।
चतुरङ्गुलं बुधे भौमे गुरौ मन्दे षडङ्गुलम्।।
भृगौ नवाङ्गुलं लेख्यं राहौ सोममिताङ्गुलम्।
केतौ द्विरदसंख्याकं लिखित्वा पूजयेदनु।।

द्विषडङ्गुलं द्वादशाङ्गुलम्। आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽप्यङ्गुलसंख्या—

द्वादशाङ्गुलकः सूर्यः सोमस्तु द्विगुणस्तथा।
कुजः स्याच्चतुरङ्गुलस्तदर्धं तु बुधः स्मृतः।।
षडङ्गुलो भवेज्जीवो भार्गवस्तु नवाङ्गुलः।
सौरी स्याच्चतुरङ्गुलो राहुश्च पञ्चविंशतिः।।

केतौ च पञ्चविंशतिरिति। अत्राङ्गुलसंख्यानियामकार्षवाक्यानां कतिपयपीठाङ्गुलसंख्यायां विसंवादो दृश्यते तत्रैकतरालम्बनेन परस्परवैयर्थ्यम्। अतः सर्वानुसरणं श्रेय इति कृत्वा कानिचित्पीठानि सर्वसम्मतानि कानिचिदेकसम्मतानि धृतानीत्यतो न दोषः। अत्रार्षवाक्यानां सप्रामाण्यमित्यन्तमुक्तम्। तथा तत्रैव।

होमपरत्वेन वेदिमानं भिन्नं भिन्नं तत्रैवोक्तमस्ति अतस्तद्धोमे तत्तन्मानयुतां ग्रहवेदीं विधाय तां तु एकहस्तमितां प्रकल्प्य तच्चतुर्विंशोंऽशाङ्गुलमित्यादिकृत्योक्तवद्ग्रहपीठानि कार्याणि। एतदाशयेनैव करमितां ग्रहवेदीमिति ग्रन्थकारोक्तिरित्युक्तम्।

अथैतेषां पीठानां फलानयनप्रकारः।

तत्र सूर्यपीठव्यासः—

३/७/२/३ अस्य वर्गः १५/२/३/४ भनवाग्निनिघ्नः ६०१०१ पञ्चसहस्रभक्ते लब्धं सूर्यपीठफलम् १२/०/१ अधिकं ध्वजायः।

अथ शुक्रपीठान्तर्वृत्तव्यासः

२/४/२/५ वेदाग्निबाणेत्यादिना पञ्चास्रिभुजः १/३/७। अयमेव त्र्यस्रद्वयभूमिः अस्यार्धमाबाधा ०/५/७/४/२/४ द्वयोस्त्र्यस्रयोर्लम्बः बहिर्व्यासार्धमेव २/३/५ लम्बगुणमिति फलं १/६/४ इदं पञ्चगुणं पञ्चस्रि शुक्रपीठफलं ९/०/६/४।

अथ समपञ्चास्रपीठफलम्

व्यासः ३/७/१ वेदाग्निबाणेति गुणिता २७४४२१/३ खखेति भक्ते लब्धा पञ्चास्रिज्या २/२/२ अस्यार्धमाबाधा १/१/१ व्यासार्ध एव कर्णः १/७/४/४ आबाधावर्गः १/२/३ कर्णवर्गः ३/६/२/१ अन्तरं २/३/७/१ मूलं लम्बः १/४/७/६ लम्बगुणं फलं १/६/६/३ पञ्चगुणं ९/१/६।

अथ चन्द्रपीठव्यासः

६/७/३ त्रिबाणेत्यादिना चतुरस्रज्या ४/७/१/५ अनया समावेव भुजकोटी तयोर्घातः फलं २४/०/१।

अथ भौमपीठव्यासः

३/४/२/५ त्रिद्वयङ्केत्यादिना त्र्यस्रिज्या ३/०/४/२ समभुजत्र्यस्रे भुजार्धमाबाधा १/४/२/१ अनयोर्वर्गान्तरमूलं लम्बः २/५/४/७ लम्बगुणमिति फलं ४/१/१।

अथ राहुपीठवृत्तव्यासः

८ त्रिद्वयङ्केत्यादिना त्र्यस्रिज्या ६/७/३/३/२ तथा षडस्रिज्या ४ द्वयोर्योगः १०/७/३/३ दलं ५/३/५/५ षडस्रिज्यागुणितं २१/६/६/६/४ अथ षडस्रिज्यार्धं वृत्तव्यासः २ अस्य वर्गः ४ रुद्रहतः ४४ शक्रहृतः ३/१/१ पूर्वफले युक्तः २४/७/७/७५ स्वल्पान्तरत्वाददोषः।

अथ प्रकारान्तरेणोक्तशूर्पपीठव्यासः

८/१/४ अस्य त्र्यस्रिज्या ७/०/५/६ तथा षडस्रिज्या ४/०/६ योगः ११/१/३/६ अस्यार्धं ५/४/५/७ षडस्रिज्यया गुणितं २२/७/१ षडस्रिज्यावर्गः १६/६ द्विगुणः ३३/४ अस्य मूलं ५/६/२/५ इदं धनुर्व्यासः अस्य परिधिः १८/१/४/६ व्यासपादः १/३/४/५/२ परिधिगुणः २६/२/६/२ इदं वृत्तफलं अस्मात् षडस्रिज्यावर्ग ऊनः ९/४/६/२ अस्य चतुर्थांशो धनुः फलं २/३/१/४ विषमचतुर्भुजफले युक्तं जातं सर्वं फलं २५/२/२/४।

अथ शनिपीठव्यासः

२/७/७/३/६ अत्र पूर्वदिक्सम्पाताद्धनुर्ज्याग्रद्वयावधिभुजद्वये कृते धनुर्मध्ये त्रिभुजमुत्पद्यते तथा द्वे धनुषी उत्पद्यते। तत्र बृहत्त्रिभुजभूमिः सार्धव्यासः एवं ४/३/७/१/५ अस्यार्थमाबाधा २/१/७/४/६ अथ पूर्वादिक्सम्पातमध्येऽन्यत्समभुजत्रिभुजमुत्पद्यते तस्य भुजाः व्यासार्धसमाः केन्द्रात्परिधिलग्नत्वात्। अतोऽस्य व्यासस्य चतुर्थांशो भूम्यर्धं ताभ्यां लम्बमानं १/२/३/३ द्वयोस्त्र्यस्रयोरयमेव लम्बः। अनेन गुणितो व्यासचतुर्थांशो बृहत्त्रिभुजफलं २/७/३/०/४ अथ धनुषोः फले तत्र बृहत्त्रिभुजभूम्यर्धलम्बवर्गयोर्योगमूलं धनुर्ज्यामानं २/४/७/६/३ ज्याव्यासेत्यादिना शरः ०/५/७/१ शरवर्गेत्यादिना धनुर्मानं ३/२/१/०/४ धनुर्दलमित्यादिना धनुःफलं १/३/४/५ इदं द्विगुणं धनुषो फलं २/७/१/२ अथ बाह्यत्रयस्रफलं तत्र बर्धितभुजाग्रात्पार्श्वश्रोणिमध्यस्पर्श्यन्यभुजे कल्पिते त्रिभुजमुत्पद्यते तस्य भूमिरष्टास्रिज्या द्विदिन्देत्यादिना १/१/१/२ वर्धितभुजो व्यासषडंशः ०/३/७/७/२ ज्याव्यासेत्यादिना शरः ०/०/७ अनेन सहितो व्यासषडंशो लम्बः ०/४/६/७/२ अष्टास्रज्यार्धमाबाधा ०/४/४/५/०/४ लम्बगुणमिति फलं २/६/२/१/२ इदमष्टास्रिधनुः फलोनं

तत्र शरवर्गेत्यादिना धनुर्मानं १/१/३/७ धनुर्दलमित्यादिना धनुः फलं ०/१/१/१/६ इदं बहिस्त्र्यस्त्रफलोनं बहिस्त्र्यस्त्रफलं ०/१/६/७/४/२ सर्वेषां योगे सर्वं फलं ६/०/३/२ ध्वजायोऽपि।

अथ केतुपीठव्यासः

६/६/७ अस्याष्टाविंशत्यंशः ०/२ द्विगुणे धनुः ०/४ लघुज्यापि स्थूला ०/३/७/७ ज्याव्यासयोगः ७/२/६/७ अन्तरं ६/६/७/१ घातः ४६/६/३/३ मूलं बृहज्जया ६/६/७ लघुज्याया गुणिता ३/३/२/५ जातं दीर्घचतुरस्त्रफलम्। अथ बृहज्ज्यादलं ३/२/६/३/५/४ वर्गः ११/१/६/५/१/४ बृहज्ज्यापादः २/६/३/५/४ वर्गः ८/३/२/७/५/४ वर्गयोरन्तरं २/६/३/५/४ अस्य मूलं लम्बः १/५/४/७/३ लम्बगुणो बृहज्ज्यापादस्त्रयस्त्रफलं ४/६/१/६/४ फलयोर्योगः ८/१/४/३/४ इति केतुपीठफलम्।

अथ गुरुपीठव्यासः

३/५/५/५/४ अस्यार्धं १/६/६/६/६ इदं षडस्त्रिभुजः अथ ज्याव्यासेत्यादिना शरः ०/१/५/३/५/६ अयं द्विघ्नः ०/३/२/७/३/४ अनेनोनो व्यासो बृहद्भुजः ३/२/२/६/०/४ चतुरस्त्रे भुजकोटिघातः फलं ६/०/७/३ ध्वजायोऽपि।।

अथ बुधपीठफलानयनम्

तत्र व्यासः ४/७/२/०/३/५ अस्याष्टास्त्रिज्या १/७/०/१/४ अन्तरं ३/०/१/६/७/६/६ घातः २०/४/३/३/३/३ अस्य मूलं बृहज्ज्या ४/४/३/४/२/५/१ अनेनोनव्यासार्धं मध्यशरः ०/१/३/२/०/३/७/४ अष्टास्त्रिज्योनव्यासार्धं बृहच्छरः १/४/०/७/३/७/३ शरयोर्योगः १/५/४/१/४/३/२/४ अनेनोनव्यासो बृहद्भुजः ३/१/५/७ अष्टास्त्रिज्यार्धं लघुभुजः ०/७/४/०/५/७/१ द्वयोर्घातः ३/०/१/२/३/४ मध्यशरोनबृहच्छरस्त्रिकोणलम्बः १/२/५/५/३/३/३/४ अष्टास्त्रिज्याष्टमांशः ०/१/७/०/१/३/६/२ त्रिगुणभूम्यर्धं ०/५/५/०/४/३/२/६ लम्बगुणमिति फलं ०/७/४/२/५/४ अथ व्यासः ४/७/२/०/३/५ अष्टास्त्रिज्यार्धं ज्या ०/७/४/०/५/७/५/६ योगः ५/६/६/१/१/४/१ अन्तरं ३/७/५/७/५/६ घातः २३/१/४/५/४/५ मूलं ४/६/४/

व्यासाभ्यां वृत्तयुग्मं विरचय सुकृतिन्बाह्यमध्यस्थितित्वं
वक्त्रात्पुच्छात्तयोर्वै कुरु बुधपरिधेः खण्डकानीह पञ्च।
बाह्याङ्कात्सूत्रयुग्मं वितनु सुमतिमन्मध्यमस्याङ्कयुग्मे
स्यात्तत्पञ्चास्त्रि कुण्डं भुगजमखविधौ चाभिचारोपशान्तौ॥१२७॥

३/६/०/४ अनेनोनव्यासार्धं लघुशरः ०/०/५/४/५/४/४ लघुशरो न मध्यशरो भूम्यर्धं ०/०/५/५/२/७/३/४ अष्टास्त्रिज्याचतुर्थांशो लम्बः ०/३/६/०/३ लम्बगुणमिति फलं ०/०/२/५/२/३/१ फलत्रयाणां योगः ४/०/०/२/३/३/१ सर्वं फलं ध्वजायोऽपि॥१२६॥

एवं प्रासङ्गिकानि ग्रहपीठान्युक्त्वाऽऽथोत्कलिकादौ पञ्चास्त्रं स्रग्धरयाह—**व्यासाभ्यामिति।** पूर्वमेवोत्कलिककुण्डानां द्वौ व्यासावुक्तौ तत्र मध्याद् बहिर्व्यासेन बाह्यमन्तव्यासेनप्तर्वृत्तं एवं वृत्तयुग्मं विरचय कुर्वित्यर्थः। सुकृतिन्नित्यादि सम्बुद्धयः। तद्वृत्तयुग्मं बाह्यमध्यस्थिति बाह्ये च मध्ये च स्थितिर्वर्तनं यस्य। एवं कृते तयोर्वृत्तयोः क्रमाद्वक्त्रान्मुखमारभ्य पुच्छमारभ्य च परिधेः पञ्च खण्डानि कुरु। अत्र बाह्यस्य वक्त्रान्मध्यस्य पुच्छादिति क्रमः। तत्र खण्डे कृते बाह्ये वृत्ते योऽङ्कश्चिह्नं तस्मादारभ्य सूत्रयुग्मं सूत्रद्वयं मध्यमस्य मध्यवृत्तस्य चिह्नयुग्मे विस्तारय। तेन पञ्चास्त्रि पञ्चकोणं स्यादित्यर्थः। तत्पञ्चास्त्रि भृगुजः शुक्रस्तस्य यो मखविधिर्यज्ञविधिस्तस्मिन्नभिचारोपशान्तौ च प्रशस्तं युक्तमित्यर्थः। तदुक्तं विज्ञानललिते—

धनुर्ज्याकृतिभिः पञ्चसूत्रैः पञ्चास्त्रि कुण्डकम्।
होमः प्रशस्यते भूतशाकिनीग्रहनिग्रहे ।। इति।

अथ फलानयनम्—तत्र वृत्ते समपञ्चास्त्रिकल्पनेन दशत्रिकोणान्युत्पद्यन्ते। तत्र त्रिकोणद्वयफलं पञ्चगुणं सर्वकुण्डफलं भवत्येव। अथान्तर्वृत्ते व्यासः २० वेदाग्निबाणेत्यादिना पञ्चास्त्रभुजः ११/६ अयमेव त्र्यस्त्रद्वयभूमिः अस्यार्धमाबाधा ५/७ द्वयोर्लम्बस्तु बहिर्व्यासार्धं १९/५ अनेन गुणितं भूम्यर्धं जातं त्र्यस्त्रद्वयफलं ११५/२/३ इदं पञ्चगु॰ सर्वफलं ५७६/३/७ अधिकं ध्वजायः॥१२७॥[1]

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५५,५६।

एवं चोत्कलिकानि ष ६ ण्नग ७ गजा ८ स्त्रीणीह पार्श्वात्तथा
पुच्छात्षट्कुरु खण्डकान्यपि रसा ६ स्त्रिस्यात्तथागा ७ स्त्रकम्।
वक्त्रात्तत्किल पुच्छतोऽपि हि नगांशैः स्यात्तथास्यांसयो-
र्मध्यात्तन्मुखतो वदन्ति विबुधाश्चाष्टांशतोऽष्टा ८ स्त्रकम्॥१२८॥

सुरवैद्यकरा २२ हतां ततिं विभजेच्चाथ बधेह स ७ प्तभिः।
परिधिर्यदिहाप्तमुच्यते विभजेत्तत् किल कुण्डकोणकैः॥१२९॥

अथोक्तप्रकारेण षडस्रादीनि शार्दूलविक्रीडितेनाह—**एवमिति।** एवमुक्तप्रकारेण षडस्रसप्तास्राष्टास्त्रीणि उत्कलिकानि स्युरिति शेषः। तत्र विशेषमाह। यथा पञ्चास्रे बाह्यमध्यवृत्तयोर्वक्त्रपुच्छाच्च पञ्च खण्डानि कृतानि तथेहापि षडस्रे पार्श्वात्पुच्छाच्च षट्खण्डानि कुरु तेन षडस्रि स्यादिति। अत्र सर्वेषूत्कलिकेषु पूर्वश्लोकस्य प्रथमतृतीयौ पादावनुर्तनीयौ। तथा वक्त्रात्पुच्छाच्च सप्तभागैः सप्तास्रं तथा वक्त्रांसयोर्मध्यान्मुखतश्चाष्टांशतः अष्टभागैः कृत्वाऽष्टास्रकं विबुधा वदन्तीत्यर्थः।

अथ फलानयनम्। तत्र व्यासः ३१/१ वेदाग्निबाणेत्यादिना पञ्चास्रिभुजः १८/२ अस्यार्धमाबाधा ९/१ तथा व्यासार्धं कर्णः १५/४/४ द्वयोन्तर्गयोरन्तरं १५९/७/३ अस्य मूलं लम्बः १२/५/१ लम्बगुणमिति फलं ११५/२/६ पञ्चगुणं ५७६/६ अधिकं ध्वजायः द्वयोस्त्र्यस्रयो र्बहिर्व्यासार्धमेव लम्बः १९/१/५/४ लम्बगुणमिति त्र्यस्रद्वयफलं ९५/०/३/४ इदं षड्गुणं सर्वं फलं ५७६/२/५।[१]

अथ सप्तास्रान्तर्वृत्तव्यासः। २० बाणेषुनखबाणैश्चेत्यादिना सप्तास्रिभुजः ९/१/३ अस्यार्धं भूम्यर्धं ४/४/५ बहिर्व्यासार्धं लम्बः १८ लम्बगुणमिति फलं ८२/३/२ इदं सप्तगुणं ५७६/६/६॥

अथाष्टास्रफलं तत्रान्तर्व्यासः। २० द्विद्विनदेत्यादिनाष्टास्रिभुजः ७/४/५ अस्यार्धं भूम्यर्धं ३/६/२/४ बहिर्व्यासार्धं लम्बः १९ लम्बगुणमिति फलं ७२ अष्टगुणं ५७६ अधिकेन सर्वत्र ध्वजायः॥१२८॥[२]

अथ प्रकारान्तरेण समत्र्यस्रादिसाधनादौ वृत्ते ज्योत्पादनं वैतालीयाभ्यामाह। **सूरेति।** हे बुध! द्वाविंशत्या ततिं व्यासं हतां गुणितां तत्।

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५७,५८।
२. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ५९,६०,६१,६२।

यदिहाप्तमुदीर्यते धनुस्त्रिभुजादौ क्रमशस्तदूनितम्।
अथ तां कथयन्ति शिञ्जिनीं निजभागैरथ वक्ष्यमाणकैः॥१३०॥

त्रिभुजे दहनेषुपावकां ३५३ शेनभूरस ६१ हतेन बुद्धिसन्।
अथ सागरकोणके दशांसेन मार्गणभुजेषुभू १५ लवात्॥१३१॥

द्विकरांश २२ मितेन षड्भुजे नन्दपक्ष २९ लवतोऽश्वकोणके।
रसवेदलवेन ४६ चान्तिमे ताश्च सन् लिख यथोच्यतेऽग्रतः॥१३२॥

सप्तभिः विभजेत् ते यदाप्तं लब्धं तत् परिधिसंज्ञं कुण्डकोणैः यत्कुण्डे यन्मिता कोणाः भवति तैरित्यर्थः। १९ यथा त्रिभुजैः कोणैश्चतुर्भुज-चतुर्भिरित्यादि॥१२९॥

तत्रापि यल्लब्धं तदेव धनुरित्युदीर्यते प्राचीनैः। तद्धनुः क्रमेण वक्ष्यमाणैर्निजभागैरूनितं सत् शिजिनीं ज्यां कथयन्ति पूर्वाचार्याः॥१३०॥

अथोक्तलवान् चित्राख्याभ्यां वैतालीयभेदाभ्यामाह—**त्रिभुज इति।** त्रिभुजे धनुषस्त्रिपञ्चाशदुत्तरत्रिशतांशेनैकषष्ट्या गुणितेन धनुरूनं सत् त्रिभुजे ज्या भवतीति। एवं सागरकोणे चतुर्भुजे स्वदशांशेन मार्गणभुजे पञ्चभुजे इषुमूलवात्पञ्चदशांशेन॥१३१॥[1]

षड्भुजे द्विकरांशमितेन द्वाविंशतिमांशेन अश्वकोणे सप्तास्रे एकोनत्रिंशदंशेन अन्तिमे अष्टकोणे षट्चत्वारिंशदंशेन ऊनितमिति पूर्वेणान्वयः। तैर्जाता या ज्यास्ता यथाग्रे उच्यते तथा सन् लिखेत्यर्थः। सन्निति सम्बुद्धिः॥

यथोदाहरणम्। त्र्यस्रव्यासः ४२/१ अयं द्वात्रिंशत्या गुणितः ९२६/६ सप्तभिर्भक्तैर्लब्धः परिधिः १३२/३/१ त्रिभिर्भक्तः ४४/१ इदमेव धनुः अस्य त्रिपञ्चाशदुत्तरत्रिशतांशः ०/१ एकषष्ट्या गुणितः ७/५ अनेनोनं धनुर्जाताज्या ३६/४ फलं ५७६/४/५।

अथ चतुरस्रव्यासः। ३३/७/४ पूर्ववत्परिधिः १०६/५/५/३ चतुर्भिर्भक्ते धनुः २६/५/३/३ अस्य दशांशः २/५/२/६ अनेनोनं २४/०/०/५ इयं ज्या उक्तवत्फलं ५७६/४/५ पञ्चास्रव्यासः ३१/१ परिधिः

---

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ६३,६४।

वक्त्रादंसाद्वक्त्रात्पार्श्वाद्वक्त्रान्मुखांसयोर्मध्यात्।
उक्तज्याभिस्तान्मथ पञ्चागास्त्रेऽभिचारशान्तौ वा॥१३३॥

९७/६/४/४ पञ्चभक्त: १९/४/५/१ अस्य पञ्चदशांश: १/२/३/४ अनेनोना ज्या १८/२/१/५ अत्र फलं ५७६/३/४/४।

अथ षडस्रव्यास:। २९/६ परिधि: ९३/४ षट्भक्ते धनु: १५/४/५ अस्य द्वाविंशत्यंश: ०/५/५ अनेनोनं ज्या १४/७ अत्र फलं ५७६।

अथ सप्तास्रव्यास:। २९ परिधि: ९१/१/१/१ सप्तभक्त: १३/०/१/१ अस्यैकोनत्रिंशदंश: ०/३/५ अनेनोना ज्या १२/४/४/१ अत्र फलं ५७६ अष्टास्रव्यास: २८/४ परिधि: ८९/४/४/४ अष्टभक्त: ११/१/४/४ अस्य षट्चतर्विंशत्तमोंश: ०/१/७/४ अनेनोनं धनुर्ज्या १०/७/५ अत्र फलं ५७६/२ अत्र सर्वत्राधिकेन ध्वजाय:। क्वचित्स्थले किञ्चिन्न्यूनाधिकमप्यदोषाय। उक्तमपि यवादूनं तु यन्मानं मण्डपादौ न चिन्तयेत्। सूत्रस्याधो विलीयन्ते यूकालिक्षादय: शतमिति। तथा प्रासादमण्डने—

अङ्गुलं सार्धमर्धं वा कुर्याद्धीनं तथाधिकम्।
आयदोषविशुद्ध्यर्थं ह्रासो वृद्धिर्न दुष्यति ।। इति।

तथा—**शतांशोनाधिकन्यूने ह्रासवृद्धी न दूषयेदिति।।**
तथा—**मानादूनाधिकं क्षेत्रं कार्यं पर्वयवादिभिरिति।।**

परशुरामकारिकास्वपि वेति पूर्वोक्तप्रकारेण विकल्प्यते॥१३२॥[1]

अथवा उक्ता ज्यास्तासां वृत्ते लेखनं गीत्याह—**वक्त्रादिति**। त्र्यस्रादारभ्य वक्त्रान्मुखादंसात्स्कन्धात्तथा वक्त्रात् तथा पार्श्वात्तथा वक्त्रात्तथा मुखांसयोर्मध्यादुक्तज्याभिर्दत्ताभिस्तानि पूर्वोक्तानि कुण्डानि स्युरिति शेष:। पञ्चास्रसप्तास्रे त्वभिचारस्य शान्तौ स्यातामित्यर्थ:। तदुक्तं विज्ञानललिते—

समीपसूत्रं तादृक्स्यात् सप्तास्रं सूत्रसप्तकात्।
अभिचारोपशान्त्यर्थे होमे कुण्डं भवेत्स्फुटम् ।। इति।

अथ समभुज पञ्चास्रसप्तास्रफले तत्र पञ्चास्रव्यास: ३१/१

उक्तवज्ज्या १८/२/१/५ इयमेव त्र्यस्रभूमि: अस्यार्धव्यासार्धं वर्गान्तरमूलं लम्ब: १२/५ लम्बगुणं भूम्यर्धं फलं ११५/२/३ पञ्चगुणं पञ्चास्रफलं

१. द्रष्टव्यम् - चित्रपरिशिष्टे चित्रसंख्या - ६५,६६।

खातं कुण्डाकारं तिथ्यंशै १५ र्वा जिनांशकैः २४ कुर्यात्।
कुण्डस्य मेखलानामुच्छ्रितिसहजिनलवैरथ स्याद् वा॥१३४॥
तेषां मध्ये वेद ४ भागैस्ततश्च द्व्यंशेनोच्चः कुण्डवन्नाभिरुक्तः।
अब्जाकारो वा न पद्मेऽथ खाताद् द्व्यंशाभ्यां वांशेन वै कण्ड उक्तः॥१३५॥

५७६/४ अथ सप्तास्रव्यासः २९ उक्तवज्ज्या १२/४/४/१ पञ्चास्रवन्मध्य त्र्यस्रफलं ८२/२/३ सप्तगुणं सर्वं फलं ५७६/०/५ ध्वजायोऽपि॥१३३॥

एवं कुण्डकरणप्रकारान्तराण्युक्त्वा प्रकृतानि खातादि कुण्डान्याह गीत्या—**खातमिति**। कुण्डस्य खातः कुण्डगर्तः सः तिथ्यंशैः पञ्चदशांशैश्चतुर्विंशंत्यशैर्वा स्यात्। पञ्चदशभागैरिति नवाङ्गुलोच्चमेखलापक्षे ज्ञेयमतो वक्ष्यति मेखलानामित्यादि। मेखलानामुच्छ्रितिरौच्च्यं तेन सह जिनलवैश्चतुर्विंशत्यङ्गुलैर्वा स्यादथवा केवलं चतुर्विंशतिलवैर्भूम्यां यथा कुण्डाकारस्तथा कुर्यादित्यर्थः। तदुक्तं शारदातिलके—

'यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्।। इति।

तथा गणेशविमर्शिन्याम्—

चतुर्विंशाङ्गुलायामं तावत्खातसमन्वितम्।। इति।

तथा सिद्धान्तशेखरे—

खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह।। इति।

प्रतिष्ठासारसङ्ग्रहेऽपि—

त्रिपञ्चमेखलापक्षं ज्ञात्वा शेषमधः खनेत्।। इति॥१३४॥

अथ नाभिकण्ठौ शालिन्याह—**तेषामिति**। तेषां कुण्डानां मध्ये वेदभागैश्चतुर्भिरंशैस्ततो विस्तृतः द्व्यंशाभ्यामुच्चः कुण्डवत्कुण्डाकारः तथाब्जाकारः पद्माकारो वा नाभिः स्यादित्यर्थः। स नाभिः पद्मे पद्मे कुण्डे न स्यात्। तत्र कर्णिकायाः सत्त्वात्। अथानन्तरं खातात्कुण्डगर्तात् द्व्यंशेन द्व्यङ्गुलेन अथवांशेन एकाङ्गुलेन कुण्ड उक्तः कथित इत्यर्थः। तदुक्तं शारदातिलके—

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभाम्।
तत्कुण्डाद्यनुरूपां वा मानसस्य निगद्यते।।

तस्माद्रन्ध्र ९ रसा६ग्नि ३ भागविमितं स्यान्मेखलानामिहा-
प्यौच्चयं वाथ च गो ९ शरा ५ क्षि २ विमितं वेदा ४ ग्नि ३ नेत्रै २ स्ततिः।
तिस्रस्तास्त्वथवार्क १२ नाग ८ जलनिध्यं ४ शै क्रमादुच्छ्रिता
वेदैः ४ स्युः किल विस्तृताश्चसुसमाः कुण्डानुरूपा अमूः॥१३६॥

मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेधतो मता।
नेत्रवेदाङ्गुलो वापि पद्मे नाभिं च वर्जयेत्।। इति।

कुण्डमानं सोमशम्भौ—

बाहिरेकाङ्गुलः कुण्डो द्व्यङ्गुलः क्वाचिदागमः।। इति।

पिङ्गलामतेऽपि—

खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत्।। इति।

क्रियासारे—

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्।। इति॥१३५॥

त्रिमेखलापक्षान्तराणि शार्दूलविक्रीडितेनाह—**तस्मादिति**। तस्मात्कण्ठान्न-वषट्त्रिभागैः क्रमेणोन्मितं मेखलानामौच्च्यं उच्छ्रायः अथवा नवपञ्चद्विमितं औच्च्यं चतुस्त्रिशद्व्यंशैः क्रमेण ततिर्विस्तारः स्यादित्यर्थः। ताः मेखलाः तिस्रः स्युरथवा क्रमात् द्वादशाष्टचतुर्भिरुच्छ्रिताः चतुर्भिर्विस्तृताश्च कुण्डानुरूपाः कुण्डाकारा अमूः मेखलाः सुसमा अवक्राः स्युत्यिर्थः।

कुण्डार्के मेखलालक्षणम्—

'स्युर्बहिर्मेखलास्ता नन्दां ९ ग ६ त्र्यु ३ च्चवेद ४ त्रि ३ कर २ विततय'। इति।

अत्र श्रीमत्तातचरणाः कुण्डार्कपद्मिन्याम्। कण्ठाद्बहिर्मेखला भवन्ति तत्राद्या मेखला नवाङ्गुलोच्चा चतुरङ्गुलविस्तारा तस्या बहिः षडङ्गुला त्र्यङ्गुलविस्तारा तस्या बहिस्तृतीया त्र्यङ्गुला द्व्यङ्गुलविस्तारेति।

एवमेव रघुवीरदीक्षितैस्तट्टीकायामप्युक्तम्। तथैव श्रीमद्रामवाजपेयीभिरप्युक्तम्—नव ९ र्तु ६ रामांश ३ कतुङ्गतामतेति।

प्रमाणमपि तट्टीकायाम्—

प्रथमाब्ध्यङ्गुलायामा उन्नता सा नवाङ्गुलैः।
मध्यमा त्र्यङ्गुला कार्या तृतीया तु यमाङ्गुलैः ।। इति।

तर्के ६ षु ५ वेदा ४ ग्नि ३ यमां २ शकैर्वा व्यासस्तु तासामथ चोन्नता।
अङ्कै ९ स्तदाद्या ह्यपराः शरां ५ शैरूनाश्च पञ्चापि सुमेखलाः स्युः॥१३७॥

द्वितीयतृतीययोरुच्चता प्रथमातस्त्रिभागोनतयार्थादेवेति पक्षो बहुभिरिष्ट इत्यन्तमुक्तम्। अत्र कुण्डार्के कैश्चित्पाठान्तरं कल्पितं सूर्याक्षद्व्युच्चेति तत्प्राचीनपुस्तकबाहुल्ये तथानुक्तत्वादुपेक्ष्यम्। अथ द्वितीयपक्षः क्रियासारे—

प्रधानमेखलोत्सेधमुक्तमत्र नवाङ्गुलम्।
तद्बाह्यमेखलोत्सेधं तत्पञ्चाङ्गुलं स्मृतम्।। इति।

तद्बाह्यमेखलोत्सेधमङ्गुलद्वितयं क्रमात्।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलो व्यासो मेखलात्रितयस्य तु।। इति।

द्वादशाङ्गुलमेखलापक्षः प्रयोगसारे—

सात्विकी मेखला पूर्वा विस्तृता द्वादशाङ्गुला।
द्वितीया राजसी प्रोक्ता मेखलाष्टाङ्गुलैस्ततः।।

तृतीया मेखला ख्याता तामसी चतुरङ्गुला।
पृथुविस्तारमेतासां चतुरङ्गुलमानतः।। इति।

तथा चाचार्याः—

सत्वपूर्वकगुणान्विताः क्रमाद्द्वादशाष्टचतुरङ्गुलोन्नताः।
सर्वतोऽङ्गुलचतुष्कविस्तृता मेखलाः सकलसिद्धिदा मताः।।
इति॥१३६॥

अथ पञ्चमेखलापक्षमिन्द्रवज्रयाह—**तर्केष्विति।** षट्पञ्चचतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैस्तासां मेखलानां प्रथमादिक्रमेण व्यासो विस्तारः। अथ च आद्या नवभिरंशैरुन्नतोच्चेत्यर्थः। अपराः द्वितीयाद्याः पूर्वपूर्वापेक्षया पञ्चमांशैरूना तत्राद्या या उच्चता ९ द्वितीयायाः ७/१/२ तृतीयायाः ५/६/१ चतुर्थ्याः ४/४/७ पञ्चम्याः ३/५/४ एवं पञ्च सुष्ठु मेखलाः स्युरित्यर्थः।

सिद्धान्तशेखरे—

षड्बाणाब्धिवह्निनेत्रैर्मिताः स्युः पञ्चमेखला ।। इति।

लक्षणसङ्ग्रहे—

पञ्च वा मेखलाः कार्याः षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकैः।
प्रथमां कुण्डसहितान्तरोत्सेधनवाङ्गुला।। इति॥१३७॥

एका वेदा ४ ङ्गुला वापि तर्का ६ ङ्गुलमथापि वा।
द्वे मेखले वेद ४ गुणां ३ शैस्ताः पुष्टास्तथैव ताः॥१३८॥

ताः पञ्च मुख्या अथ मध्यमोत्तमास्तिस्त्रस्तथा द्वे इह मध्यमाधमे।
एका तु चोक्ता ह्यधमाधमाधमाः कर्तुः स्थलाधिक्यत एव शक्तितः॥१३९॥

योनिर्विस्तृतिदैर्घ्यघातफलका द्वेधा स्मृता सूरिभि-
श्चाद्याश्वत्थदलाकृतिः पुनरिहान्या स्याद्गजोष्ठाकृतिः।
अत्र स्यादपि मेखलोद्भवभिधा सा पञ्चधा कथ्यते
सर्वासां करणं ब्रवीमि रुचिरं यत्प्राक्तनैः साधितम्॥१४०॥

अथैकमेखलाद्विमेखलापक्षमनुष्टुभाह—**एकेति।** यदैव मेखला तदा चतुरङ्गुलोत्सेधविस्तृता अथवा षडङ्गुलोत्सेधविस्तृता कार्या। यदा द्वे मेखले कर्तव्ये तदा तु प्रथमा चुतरङ्गुलोच्चा द्वितीया त्र्यङ्गुलोच्चा तथैव चतुर्भिस्तिसृभिरङ्गुलैश्च पुष्टा विस्तृता इत्यर्थः। तदुक्तं लक्षणसङ्ग्रहे—

चतुरङ्गुलविस्तारोत्सेधा वैकेव मेखला ।। इति।

पिङ्गलामते—

एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तारा मेखला मता।। इति।

तन्त्रान्तरे—

षष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितयं विदुः।। इति॥१३८॥

अथोक्तमेखलानामुत्तमत्वादीद्रवज्रयाह—**ता इति।** ता उक्तमेखलाः पञ्च मुख्याः श्रेष्ठाः तथा तिस्त्रः मध्यमा उत्तमाश्च द्वे मेखले मध्यमाधमे एका मेखला त्वधमाधमाधमाश्चेत्यर्थः। ताः सर्वा अपि स्थलस्य मण्डपदेशस्य आधिक्यं प्रशस्तता यथा तथा ज्ञात्वा कार्याः। अथवा कर्तुर्यजमानस्य शक्तितः शक्त्या वा स्युरिति शेषः। उक्तं लक्षणसङ्ग्रहे—

मुख्यास्तु पञ्च ताः प्रोक्ता मध्यमास्तिस्त्र एव तु।
द्वे स्यातामधमे पक्षे एका सा त्वधमाधमा।। इति।

तथा क्रियासारेऽपि—

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्।
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं नीचं स्यादेकमेखलम् ।। इति।

तत्राश्वत्थदलाकृतिर्वृतिभवा ह्यब्ध्यस्त्रिजा वोच्यते
कुण्डार्कोक्तमतेन वृत्तकरणाद्युक्तं यथा पूर्ववत्।
सा चाश्वत्थदलाकृतिः पुनरियं सा कुण्डसिद्ध्युक्तव-
च्चाब्ध्यस्त्राद्भवतीह हस्त्यधरवद्विस्तारदैर्घ्या भवेत्॥१४१॥

दीर्घा रसांशै ६ स्तु तथैव चोच्चा स्थलात्तथा वेदलवैस्तता च।
एकाब्धिभागैर्यदि मेखला स्यात्तदा च योनिर्भवतीयमेव॥१४२॥

अथ कुण्डानां योनिं शार्दूलविक्रीडितेनाह—**योनिरिति**। योनिः कुण्डयोनिः तस्याः विस्तृतिर्विस्तारश्च दैर्घ्यं च तयोर्घातः गुणनं तदेव फलं यस्या एतादृशी स्यात्। सा सूरिभिः पण्डितैर्द्वेधा द्विप्रकारा स्मृता कथिता। तत्राद्याश्वत्थपत्राकृतिर्यस्याः पुनः अन्या द्वितीया गजोष्ठाकृतिः सा द्वेधापि मेखलानां भिदा पक्षान्तरभेदेन पञ्चधा पञ्चप्रकारा कथ्यते। तासां सर्वासां योनीनां करणं करणप्रकारं यथा प्राक्तनैः रुचिरं यथा साधितं तथा ब्रवीमि कथयामीत्यर्थः। योनेर्दैर्घ्यविस्तारघातकरणमुक्तं विश्वकर्मणा—

परस्परवधे जातं तत्र क्षेत्रफलं बुधाः।
(स्फुटं) **आनयेत्तत्फलं क्षेत्रे विभागं परिकल्प्य च ।।** इति।

सिद्धान्तशेखरे—

अश्वत्थपत्रवद्योनिर्गजोष्ठप्रतिमाथवा ।। इति॥१४०॥

तत्राश्वत्थदलाकृति इति। स्पष्टम्॥१४१॥

अथ चतुरङ्गुलमेखलापक्षे योनिमुपजात्याह—**दीर्घेति।** षडंशैर्दीर्घास्तथा षडंशैरेव स्थलादुच्चा तथा चतुर्भिर्भागैस्तता विस्तृता योनिः स्यात्। यदा चतुर्भिर्भागैर्विस्तृतोच्च एकैव मेखला स्यात्तदेयमेव योनिर्भवतीत्यर्थः। तदुक्तं कोटिहोमपद्धत्याम्। षडङ्गुलैकमेखलापक्षे ऽन्यथोक्ता तन्त्रान्तरे—

तुर्यषष्ठद्वादशांशैर्योनिः कुण्डायतेर्भवेत्।
आयता विस्तृतातुङ्गा जिनांशेन तदग्रकम् ।। इति।

एका षडंशैस्त्वथ मेखले द्वे ४ स्यातां (ष्ठांशे) तदा सूर्य १२ लवैस्तु दीर्घा।
षड्भिर्लवैः सात्र तथा तथोच्च स्यादष्टभागैरथवाङ्क ९ भागैः।।१४३।।

कुण्डस्य चतुर्थांशेन षडङ्गुलैर्दीर्घा षडंशेन चतुरङ्गुलैर्विस्तृता द्वादशांशेन द्वयङ्गुलेनोच्चेत्यर्थ इति।

अथ फलानयनम्। तत्र फलं २४/अस्य मूलं भुजः ४/७/२ अस्य मूलं चतुर्विंशत्यंशः १/०/१/५ पञ्चगुणः १/०/१ अस्य रदांशः ०/०/२ अयं पञ्चगुणे युतः १/०/३ इदं भुजे युक्तं ५/७/५ अथ भुजार्धं २/३/५ अनेन युक्तो भुजो गुणितः १४/४/६ जातं त्र्यस्रद्वयफलम्।

अथ क्षेत्रकर्णः ७१ अस्यार्धं वृत्तार्धव्यासः ३/४ अस्य वर्गः १२/२ एकादशगुणः १३४/६ शक्रहृतः ९/५ इदं वृत्तार्धद्वयफलं त्र्यस्रद्वयफले युक्तं २४/४/६ यवोनं अदोषाय स्वल्पान्तरत्वात् पक्षान्तरे २३/७।।१४२।।

अथ षडङ्गुलैकमेखलापक्षे अष्टांशैर्द्विमेखलापक्षे च योनिमिन्द्रवज्रयाह—**एकेति**। एकैव मेखला षडंशैरथवा द्वे मेखले यदा स्यातां तदा योनिः द्वादशांशैर्दीर्घा षडंशैर्विस्तृता तथाष्टभागैरष्टाङ्गुलैरथवा नवभागैरुच्चा। अत्र षडङ्गुलैकमेखलापक्षेऽष्टांशैर्द्विमेखलापक्षे तु नवभिरंशैरुच्चेति ज्ञेयम्। गर्गः—

योनि षडङ्गुलां तिर्यक् द्वादशाङ्गुलदीर्घ्यकाम्।
अश्वत्थदलसङ्काशां किञ्चिदुन्नमिताङ्गुलाम् ।। इति।

वृद्धवसिष्ठः—
योनिश्च पश्चिमे भागे प्राङ्मुखी मध्यसंस्थिता।।
षडङ्गुलैश्च विस्तीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः ।। इति।

अथ फलानयनम्। तत्र क्षेत्रफलं ९६ अस्य मूलं भुजः ९/६ अस्य चतुर्विंशत्यंशः ०/३/२ पञ्चगुणः २/०/२ अस्य रदांशः ०/०/४ पञ्चगुणः चतुर्विंशांशे युतः २/०/६ अयं भुजे युक्तो जातः त्र्यस्रद्वयलम्बः ११/६/६। अथ भुजार्धं ४/७ अनेन लम्बो गुणितः ५८/१/२ जातं त्र्यस्रद्वयफलम्। अथ क्षेत्रकर्णः १४ अर्धं वृत्तव्यासः ७ वर्गः ४७ एकादशगुणः ५३७ शक्रहृतः जातं वृत्तार्धद्वयफलं ३८/४ त्र्यस्रद्वयफले युक्तं ९६/५/२ स्वल्पान्तरत्वाददोषः।।१४३।।

अथ नवाङ्गुलैर्मेखलात्रयपक्षे योनिमिन्द्रवज्रयाह—**तिस्र इति**। यदा नवांशैस्तिस्रो मेखलास्तदा सूर्यैर्द्वादशभागैर्दैर्घ्यमेव तथाष्टभिर्लवैरत्र

तिस्रो नवांशैर्यदि मेखलास्ताः सूर्यै १२ स्तदा स्यात्खलु दैर्घ्यमेव।
स्यादष्टभागैरिह विस्तृतोच्चा सूर्यै १२ र्लवैर्योनिरुदीरिता च॥१४४॥
तिस्रो यदा सूर्य १२ लवैस्तताः स्युस्तत्रैव योनिस्तिथि१५भागदीर्घा।
दिग्भि १० र्लवैरत्र तता तथोच्चा स्याच्छक्र १४ भागैः कथिताः बुधैः सा॥१४५॥

विस्तृता तथा सूर्यैर्लवैरुच्चा योनिरुदीरिता कथितेत्यर्थः। तदुक्तं प्रयोगसारे—

त्रिभागं मध्यतो योनिमायामे द्वादशाङ्गुलाम्।
द्वादशांशोच्छ्रितां कुर्यात्किञ्चित्कुण्डनिवेशिनीम् ।। इति।

अथ फलानयनम्। तत्र, क्षेत्रफलं १५० अस्य मूलं भुजः १२/२/१/२ चतुर्विंशत्यंशः ०/३/६/५ पञ्चगुणः २/३/१/१ अस्य रदांशः ०/०/५ पञ्चगुणे युक्तः २/३/६/१ अयं भुजे युक्तः १४/६ जातोऽयं त्र्यस्रद्वयलम्ब अथ भुजार्धमेव भूम्यर्धं ६/१/०/५ लम्बेन गुणितं ९०/४ जातं त्र्यस्रद्वयफलम्। अथ क्षेत्रकर्णः १७/२/६ अस्यार्धं ८/५/३ वर्गः ७५/१/५ एकादशगुणः ८२७२। शक्रहृतः ५९/०/६ जातं वृत्तफलं त्र्यस्रद्वयफलं युक्तं १४९/४/६ त्रियवोनम्। स्वल्पान्तरत्वाददोषः॥१४४॥

अथ द्वादशाङ्गुलमेखलापक्षे योनिमिन्द्रवज्रयाह—**तिस्र इति।** यदा तिस्रः सूर्यलवैर्मेखलाः स्युस्तदा तत्र तिथिभागैः पञ्चदशभागैर्दीर्घा तथा दशभिर्भागैस्तता विस्तृता चतुर्दशभागैरुच्चा योनिर्बुधैः पण्डितैः कथितेत्यर्थः। तदुक्तं प्रयोगसारे—

स्थितां प्रतीच्यामायामे सम्यक् पञ्चदशाङ्गुलाम्।
द्विपञ्चाङ्गुलविस्तारां षट्चतुर्द्व्यङ्गुलां क्रमात्।।
उक्ताश्वत्थदलाकारां निम्नां कुण्डे निवेशिताम्।
त्रयोदशाङ्गुलोत्सेधां योनिं कुण्डस्य कारयेत्।। इति।

अथ फलानयनम्। ततः क्षेत्रफलं २८० अस्य मूलं भुजः १६/५/५ अस्य चतुर्विंशत्यंशः ०/५/५ पञ्चगुणः ३/४/१ अस्य रदांशः ०/०/७ पञ्चगुणे युक्तं ३/५ इदं भुजे युक्तं २०/२/५ जातोऽयं लम्बः। अथ भुजार्धं ८/२/६/४ लम्बेन निघ्नं १६९/६/१/३ जातं त्र्यस्रद्वयफलम्।

स्वपक्षतिलवैर्दीर्घा शक्र १४ भागैस्तता मता।
उच्चा रुद्र ११ लवैर्योनिर्यत्र स्युः पञ्च मेखलाः॥१४६॥

तासां फलानि क्रमशो जिना २४ श्च
द्वासप्ततिः ७२ षण्णवतिः ९६ खतिथ्यः १५०।
अभ्राष्टयुग्मा २८० न्यथ बोधिपत्रा
कारा यदा कर्त्तुरिहाप्यभीष्टः॥१४७॥

तदा यम २ घ्नाच्च फलात्तु मूलं
व्यासो भवेत्तेन तु कुण्डवत्सा।
अथो यदान्या तु शराभ्ररामै ३०५
र्निघ्नाच्च दस्रांकशशी १९२ विभक्तात्॥१४८॥

अथ द्विघ्नक्षेत्रफलं मूलं क्षेत्रकर्णः २३/५/२/५ अर्धं ११/६/५/२ वर्गः १४० एकादशगुणः १५४० शक्रहृतः ११० जातं वृत्तार्धद्वयफलं त्र्यस्रद्वयफले युक्तं २७९/६/१/३ जातं सर्वं फलं यवद्वयोनमदोषाय स्वल्पान्तरत्वात्॥१४५॥

अथ पञ्चमेखलापक्षे योनिमनुष्टुभाह—**स्वपक्ष इति।** यदा पञ्चमेखलास्तदा योनिर्विंशतिलवैर्दीर्घा चतुर्दशभिर्विस्तृता एकादशलवैरुच्चेत्यर्थः। तथा च पद्धत्याम्॥१४६॥

पञ्चमेखलापक्षे अथ तासां फलानीन्द्रवज्रयाह—**तासामिति।** तासामुक्तयोनीनां क्रमशः फलानि यथा प्रथमायाश्चतुर्विंशतिः २४ द्वितीयायाः ७२ द्वासप्ततिः तृतीयायाः षण्णवतिः ९६ चतुर्थ्याः खतिथ्यः १५० सार्धशतं पञ्चम्याः अशीत्युत्तरशतद्वयं २८० फलानि स्युः। यदा कर्तुः बोधिपत्राकारा इष्टेत्याद्युत्तरेणान्वयः॥१४७॥

अथ योनिव्यासानयनमुपजात्याह—**तदेति।** तदा द्विनिघ्नात्फलाद्यन्मूलं तदेव व्यासस्तेन योनिकुण्डवत्सा स्यादित्यर्थः। अथो यदोक्तान्ययोनिकुण्डवदिष्टा तदा पञ्चोत्तरशतत्रयेण गुणिताद् द्विनवत्युत्तरशतेन भक्तात्फलान्मूलं व्यास इत्यादिपूर्वोक्तवत् स्यादित्यर्थः।

मूलस्थौल्याच्च तस्यास्तदुपरि भुवि च स्वल्पसङ्कोचयुक्ता
मध्योच्चा वा सगर्ता न च भवति भगे कुण्डकोणेऽपि नो सा।
रम्या तन्मेखलैका लम्ब १ मितविततोच्चाथ नालं तु पश्चात्
सच्छिद्रं मेखलोपर्यपि सविलवती चांशतोऽग्रे विशन्ती॥१४९॥

यथोदाहरणम्। तत्रादौ सिद्धे चतुरस्र इत्युक्तरीत्या योनिकरणे नवांशैस्त्रिमेखलापक्षे फलं ९६ द्विगुणं १९२ अस्य मूलं १३/७ इदं चतुरस्रवृत्तव्यास: अस्य चतुरस्रज्या त्रिबाणेत्यादिना ९/६/३ एतन्मित चुतुर्भुजैर्यच्चतुरस्रं तस्मिन् पूर्वोक्तयोनिकुण्डवत्करणेन योनिर्भवतीत्यर्थ:। अथ प्रकारान्तरेणोक्तरीत्या योनिकरणे नवांशैस्त्रिमेखलापक्षे फलं ९६ पञ्चोत्तरत्रिशतेन गुणितं २९२८० द्विनवत्युत्तरशतेन भक्तं १५६ अस्य मूलं १२/३/१ इदमेवान्ययोनेर्व्यास: अनेन कुण्डोक्तवत्करणे योनि: स्यादित्यर्थ:॥१४८॥

अथ योनिसामान्यलक्षणं स्रग्धरयाह—

मूलेति। तस्या: योनेर्मूलेऽधोभागे यत्स्थौल्यं स्थूलता तस्मादुपरि भुवि स्वल्पसङ्कोचेन युक्ता मध्ये उच्चा अथवा मध्ये सगर्ता सा। योनि: भगे योनिकुण्डे न च भवति। तथा कुण्डानां कोणेऽपि सा नो न स्यादित्यर्थ:। तस्या योने: एका मेखला लम्बेनैकांशेन विस्तृता एकांशेनैवोच्चा रम्या कार्या। अथ योने: पश्चात् सच्छिद्रं नालं कार्यम्। सा योनिर्मेखलोपरि भवति सविलवती मध्यमेखलोपरि परिधिस्पृष्ठदेशे परिधिपरिस्तरणनिवेशार्थं छिद्रं तेन सहिता। वचने परिध्युपलक्षणेन परिस्तरणस्यापि ग्रहणम्। दृश्यते च याज्ञिकानामपि तथैव सम्प्रदाय इति। लम्बेनैकांशेनाग्रे यत्कुण्डस्तस्मिन् विशन्ती प्रवेशं कुर्वती विरचयेदित्यर्थ:। अत्रैकाङ्गुलवर्धनमुक्तं तत्कण्ठत: खातमध्य एवान्यथा द्व्यङ्गुलकण्ठपक्षे त्र्यङ्गुलयोन्यग्रवर्धनस्यासम्भवाद् वक्ष्यमाणवचनविरोधाच्च। तदुक्तं मात्स्ये—

वितस्तिमात्रा योनि: स्यात्षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता।
कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता।।
गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता।
एतत्सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते।।
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसन्निभा।।

स्वायम्भुवेऽपि—

मेखलामध्यतो योनिः कुण्डार्धा त्र्यंशविस्तृता।

अङ्गुष्ठमानोष्ठकण्ठा कार्याश्वत्थदलाकृतिः ।। इति।

अङ्गुष्ठमानमोष्ठोऽग्रं कण्ठो मेखला यस्या इति कुण्डकल्पलता।

शारदातिलके—

नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां तन्त्रवित्तमः ।। इति।

तथा—

योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं च वर्जयेत्।। इति।

प्रयोगसारे—

योन्याः पश्चिमतो नालमायामे चतुरङ्गुलम्।

द्वित्र्येकाङ्गुलविस्तारं क्रमान्न्यूनाग्रमिष्यतः ।। इति।

सोमशम्भुरपि—

तासामुपरि योनिः स्यान्मध्येऽश्वत्थदलाकृतिः ।। इति।

शारदातिलके—

एकाङ्गुलं तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ।। इति।

जिनांशेन तदग्रकमिति तन्त्रान्तरे। सिद्धान्तशेखरे तु स्यादोष्ठः कण्ठेन सम्मित इति। अत्र कल्पलता—कण्ठेन सम्मितः कण्ठसमो नाधिक इत्यर्थः। किञ्चित्कुण्डनिवेशितामित्यनेन एकाङ्गुलकण्ठपक्षे यवेन यवाभ्यां वाधिक्यं कल्प्यमित्यनेन वर्धने विकल्प इति। त्रैलोक्यसारेऽपि—

'एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा ।। इति।

पञ्चरात्रे—**'स्थलादारभ्य नालं स्याद्बाह्यमेखलया समाम्'।** इति।

शारदातिलके—

स्थलादारभ्य नालं स्याद्योन्या रन्ध्रे सरन्ध्रकम्'। इति।

आगमकल्पलतायां यामले—

नालमेखलयोर्मध्ये परिधिस्थापनाय च।

रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान्द्वितीयमेखलोपरि।। इति।।१४९।।

इन्द्रपावकार्कभूदिग्गता स्यादुदङ्मुखीतरा।
सा गुरोरथो कुण्डके स्मृता दक्षिणेऽथवा पश्चिमेऽथवा।।१५०।।
अथ च दीर्घतासूत्रलम्बको भवति विस्तृतिर्येन भूमिका।
कुरु गुणास्त्रकं विस्तृतेर्दलाद्वृतिदलद्वये स्याद्गजाधरी।।१५१।।

कोटिलक्षायुते होमे द्विसार्धकरसम्मिता।
वर्जयित्वा रुद्रहोममैशान्यां ग्रहवेदिका।।१५२।।

अथ दिग्विशेषकुण्डेषु योनिस्थानानि लोचनाख्यवृत्तेनाह—**इन्द्रेति।** इन्द्रवह्नियमानां दिक्षु चतुरस्त्रयोन्यर्धचन्द्राकारकुण्डेषु सा योनिरुदङ्मुखी कार्या इतरा त्र्यस्रवृत्तषडस्रपद्माष्टास्रेषु तु प्राङ्मुखी कार्येत्यर्थः। अत्राग्नेयकुण्डे योनिविधानं सर्वचतुरस्रवृत्ताद्यभिप्रायेण। गुरोराचार्यकुण्डे सा योनिर्दक्षिणे अथवा पश्चिमे कार्येत्यर्थः। अत्र पञ्चकुण्डीपक्षे दक्षिणे योनिराचार्यकुण्डस्यान्यत्र पश्चिमे इति ज्ञेयम्। सोमशम्भौ—

पूर्वाग्नियाम्यकुण्डानां योनिः स्यादुत्तरानना।
पूर्वानना तु शेषाणामीशान्येन्तरा मता।। इति।

सिद्धान्तशेखरे—

इन्द्राग्नियाम्यकुण्डेषु योनिः सौम्यमुखी स्मृता।
योनिः पूर्वमन्येषु पूर्वेशानैतरा स्मृता।। इति।

त्रैलोक्यसारेऽपि—

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षिणतः स्थिता।। इति।।१५०।।

अथ गजोष्ठसदृशीयोनिकरणं कामदयाह—**अथेति।** योनेदीर्घताज्ञापकं यत्सूत्रं तदेव लम्बको लम्बो येन प्रकारेण भवति तथा येन प्रकारेण योनेर्विस्तृतिर्भूमिका भवति तथा गुणास्रकं त्र्यस्रं कुरु ततो विस्तृतेर्दलेन वृत्तार्धद्वये कृते सति गजाधरी गजोष्ठसदृशी योनिर्भवतीत्यर्थः। उक्तं च पद्धतौ—अत्र योनेर्गजोष्ठसदृशत्वं पश्चिमतो विस्तारचतुर्थांशेन वृत्तद्वयकरणादवगन्तव्यमिति। तेन गजोष्ठसदृश्या योनेः फलस्यावश्यकत्वं नास्तीति ध्वन्यते।।१५१।।

करोऽर्धदोर्वोच्छ्रय एकहस्ता तता च तस्याश्शिव २ गुणा३ङ्गुलोच्चौ।
वप्रौ तृतीयो यदि चेद्द्वितीयतुल्यस्ततास्ते च यमाङ्गुलाभ्याम्॥१५३॥

अथाङ्गभूता ग्रहवेदीमनुष्टुब्वसन्ततिलकाभ्यामाह—**कोटीति**। कोटिहोमे द्विहस्ता लक्षहोमे सार्धहस्तायुतहोमे करसम्मितेत्यर्थः। अन्यत्रायुतादिग्रहहोमातिरिक्ते एकहस्तैव। महारुद्रहोमं वर्जयित्वा हित्वा सा ग्रहवेदीशान्यां स्यादित्यर्थः। रुद्रपद्धतौ—तत्र रुद्रवेद्युक्तत्वात्। तदुक्तं ग्रहपीठमालायां मात्स्ये—

गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्।
वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रायसम्मिताम्॥
संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदक्प्लवाम्।
लक्षहोमग्रहमखे वितस्तित्रयसम्मिताम्॥
कोटिहोम ग्रहमखे तां वितस्ति चतुष्टयाम्॥ इति॥१५२॥

कर इति। करः एकहस्त अर्धदोर्वा अर्धहस्तो वा दार्वारुच्छ्रय उच्चता। सा वेदिरेकहस्ता तता च विस्तृता च कार्या। तस्याः परितः द्व्यङ्गुलत्र्यङ्गुलोच्चौ द्वौ वप्रौ कार्यौ। यदि तृतीयोऽपि कर्तव्यस्तदा द्वितीयतुल्यः कार्यः। ते त्रयोऽपि द्व्यङ्गुलीभ्यां विस्तृताः कार्या इत्यर्थः। उक्तं च ग्रहपीठमालायां मात्स्ये—

'वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रायसम्मिताम्'॥ इति।

तथा तत्रैव—

'द्व्यङ्गुलेनोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः'॥
त्र्यङ्गुलोच्छ्रायसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि।
द्व्यङ्गुलश्चैव विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः॥ इति॥१५३॥

एवमाग्नेयादिविदिक्षु वेदीकरणं शालिन्याह—**एवमिति।** एवमुक्तप्रकारेण तिस्रो वेद्यः अग्निनिर्ऋतिवायूनां दिक्षु प्रकुर्यादित्यर्थः। तासु कृतचतुर्वेदीषु स्थाप्यान् स्थापनयोग्यांस्तल्लक्षणलक्षितान् क्रमेण यागे

एवं वेद्यश्चापि तिस्रः प्रकुर्या
च्छोचिष्केशः क्रव्यभुग्वायुदिक्षु।
स्थाप्यान् खेटान् मातृकाश्चापि वास्तून्
क्षेत्रेशं च स्थापयेत्तासु यागे॥१५४॥

द्विगुणादौ कर्तव्ये द्व्यादिघ्नव्यासवर्गमूलं यत्।
इष्टो व्यासः स्यादिति जयति श्रीमद्गुरोरुक्तिः॥१५५॥

प्रतिष्ठादौ खेटान् ग्रहान् षोडश सप्त वा मातृकाः वास्तून् शिख्यादिवास्तुदेवताः क्षेत्रेशं क्षेत्रपालं च स्थापयेत्। तदुक्तं मात्स्ये—

मण्डपैशानभागे तु ग्रहवेदी करोन्मिता।। इति।

मन्थानभैरवतन्त्रे—

शेषवेद्यां ततः ख्यातं हस्तमेकं तु विस्तरे।
उच्छ्रायैकाङ्गुलः प्रोक्तः स्नानवेदी द्विहस्तका।।
आग्नेय्यां मातृकावेदी वास्तुवेदी च नैर्ऋते।।
क्षेत्रपालस्य वायव्यमीशान्यां च नवग्रहाः ।। इति॥१५४॥

अथायुतहोमादौ द्विहस्तादिकुण्डं पूर्वमुक्तमतस्तदत्तद् व्यासानयनमार्ययाह—**द्विगुणादाविति**। कुण्डव्यासे द्वित्रिगुणादिकर्तव्ये द्विगुणादाविति। कुण्डव्यासे द्वित्रिगुणादिकर्तव्ये द्व्यादिभिर्निघ्नो गुणितो यो व्यासवर्गस्तस्य मूलं यद्भवति तदेवेष्टव्यासः स्यादित्यर्थः। तथा हि— द्विहस्तकुण्डव्यासे कर्तव्ये एकहस्तकुण्डवृत्तव्यासवर्गः द्विगुणः कार्यस्तन्मूलं द्विहस्तकुण्डवृत्तव्यासः स्याद् भवति। एवं त्रिहस्ते त्रिगुणश्चतुर्हस्ते चतुर्गुण इत्यादि। इत्येवं प्रकारेण श्रीमद्गुरोस्तातचरणानामुक्तिः कुण्डार्कपद्मिन्यां सर्वोत्केर्षेण वर्तते अत्रोदाहरणम्। यथैकहस्ते चतुरस्रव्यासः ३३/७/५ अस्य वर्गः११५२ अयं द्विगुणः २३०४ अस्य मूलं ४८ अयं द्विहस्तचतुरस्रवृत्तव्यासः। अस्यार्धेन वृत्तं कृत्वा तस्मिन् पूर्वोक्तचतुरस्रवत्सर्वं कृते दशसहस्रहवनोपयोगिदिगद्विहस्तचतुरस्रमुत्पद्यत इति दिक्॥१५५॥

सपादे स्तृतेरब्धिवज्रं १४४ शकस्तु
विनिघ्नो धरातर्कचन्द्रैः १६१स्तृतिः स्यात्।
खवेदांशक ४० स्तान ४९ निघ्नोऽपि सार्धे
रसाङ्कां ९६ शकः सप्तसूर्यै१२७ विनिघ्नः॥१५६॥
भवेत्तत्त्रिपादे द्विनिघ्ने त्विनांशो १२
विनिघ्नः स वै सप्तभू १७ भिः स्तृतिः स्यात्।
तथा स्युर्ज्यकाव्यासरीत्या क्रमेण
प्रकारोऽयमुक्तो गुरोर्हि प्रसादात्॥१५७॥

अथ व्यासस्य सपादसार्धसत्रिपादद्विगुणादिकारणं भुजङ्गप्रयाताभ्यामाह- **सपादेति**। व्यासे स्वपादेन सहिते कर्तव्ये स्तृतेरेकहस्तव्यासस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरं शतांशः एकषट्युत्तरशतेन निघ्नः सन् स्वचतुर्थांशेन सहितो व्यासः स्यादित्यर्थः। तथा सार्धे कर्तव्ये स्तृतेश्चत्वारिंशदंशः एकोनपञ्चाशता निघ्नो व्यासः स्यात्। तथा सत्रिपादे कर्तव्ये स्तृतेः षण्णवत्यंशः सप्तविंशत्युत्तरशतेन निघ्नो व्यासः स्यात्। तथा द्विगुणे कर्तव्ये स्तृतेर्द्वादशांशः सप्तदशभिर्निघ्नो व्यासः स्यादित्यर्थः। तथा ज्यका भुजा अपि अनया व्यासानयनरीत्या क्रमेण स्युरित्यर्थः।

अयं प्रकारः श्रीगुरोस्तातचरणप्रसादान्मया उक्तः कल्पितः इत्यर्थः। तथा चोदाहरणं व्यासः ३३/७/५ अस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमो भागः ०/१/७/०/६ अयमेकषष्ट्युत्तरशतेन निघ्नः ३७/७/६ अयमेव सपादव्यासः। तथा सार्धे व्यासखवेदांशः ०/६/६/२ अयमेकोनपञ्चाशता निघ्नः ४१/४/२/२ तथा सत्रिपादे व्यासषण्णवत्यंशः ०/२/६/५ अयं सप्तविंशत्युत्तरशतेन निघ्नः ४४/७/१ तथा द्विघ्ने व्यासद्वादशांशः २/६/५ अयं सप्तदशनिघ्नः ४८/०/५ अत्र पञ्चयूकाधिक्यं तददोषाय यवोनत्वात्। अथ भूजार्थं किञ्चिदुदाहरणं तत्रैकहस्तचतुरस्रभुजः २४ अस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमोऽशः ०/१/२/५/२ एकषष्ट्युत्तरशतेन निघ्नः २६/६/३/५/२ जातोऽयं सपादहस्तकुण्डभुजः। अथ सत्रिपादे भुजरसाङ्कांशः ०/२ सप्त सूर्यैर्निघ्नः ३१/६ जातोऽयं सत्रिपादहस्तकुण्डभुजः। अथ द्विनिघ्ने भुजद्वादशांशः २ अयं सप्तदशगुणितो जातो द्विहस्तभुजः ३४ अत्र यूकात्रयमधिकं तददोषाय। तथास्य द्वादशांशः २/६/५ सप्तदशनिघ्नः ४८/०/५ अयं चतुर्हस्तकुण्डभुज एव योन्यादिषु॥१५६-१५७॥

विधाय कुण्डमुत्तमं विबध्य ताम्रपत्रकैः
समुज्ज्वलं तदाम्लजीवनेन कुर्वभावतः।
मृदिष्टिकाभिरत्र गोशकृज्जलैः सुधामयं
शुधाजलैरशक्तितो यदा न तत्सुचत्वरम्॥१५८॥

शुद्धमृत्तिकारजोभिरेव वा समेखलं
स्थण्डिलं सयोनिकं तु कुण्डसम्मितं कुरु।
प्राक्प्लवं तु सागरास्त्रमङ्गुलोच्चमत्र वा
योनिमेखलावियुक्तसागराङ्गुलोच्चकम्॥१५९॥

अथैवं कुण्डं निर्माय ताम्रादिना निर्बध्येत्यादि पञ्चचामरेणाह—

विधायेति। उक्तवदुत्तमं कुण्डं विधाय ताम्रपत्रकैर्विबध्यतत्कुण्डं आम्लजीवनेनाम्लजलेन समुज्ज्वलं कुरु ताम्रपत्राभावतः मृर्दिष्टकाभिः विबध्य गोशकृज्जलैः समुज्ज्वलं कुरु सुधामयं चेत्सुधा चुना इति ख्यातस्तज्जलैः समुज्ज्वलं कुरु। अशक्तितः शक्त्यभावेन यदा तत्कुण्डं न कृतं तदा सुचत्वरं स्थण्डिल कुर्वित्यर्थः। उक्तं च पद्धतौ सर्वं कुण्डं ताम्रादिना कार्यम्।

ताम्रेण लक्षणोपेतं कुर्यान्मृत्तिकयापि वा।
तदभावे त्विष्टिकाभिः सम्बध्य सुदृढं तथा ।। इति।

क्रियासारात्। ताम्रादिकुण्डानां शुद्धिरपि तत्रैव—

आम्लेन ताम्रजं कुण्डं मृन्मयं गोमयाम्भसा।
सौधं च सुधया सम्यक् शोधयेदमरर्षया ।। इति।

सौधमितीष्टकासन्धिषु सुधादानेन कृतमिति पद्धतिः। समे स्थण्डिलचत्वर इत्यमरः॥१५८॥

अथ पूर्वोक्तं स्थण्डिलं सलक्षणं रूपकेनाह—**शुद्धेति।** शुद्धदेशोद्भवा या मृत्तिका तस्या रजोभिः पांसुभिः समेखलं मेखलासहितं योनिसहितं च करेण सम्मितं हस्तमात्रं प्राक्प्लवं चतुष्कोणमङ्गुलोच्चं चतुरङ्गुलोच्चं वा स्थण्डिलं वा कुरु अथवा योनिर्मेखलाभ्यां वियुक्तं रहितं चतुरङ्गुलोच्चं कुर्वित्यर्थः। अत्र प्रथमवाकारः कुण्डस्थण्डिलयोर्विकल्पार्थकः। स्थण्डिलेऽपि

मेखलादिराहित्यसाहित्यविकल्पार्थं द्वितीयः। पद्धतौ हस्तमात्रेणेत्युपलक्षणं होमबहुत्वे स्थण्डिलं महत्कार्यम्। अर्थात्परिमाणमिति कात्यायनवचनादिति। कल्पलताया अप्येवमेवाशयः। स्थण्डिले मेखला उक्ताः सूतसंहितायाम्—

स्थण्डिले मेखलाः कार्या कुण्डोक्तं स्थण्डिलाकृति।
योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तन्त्रवेदिभिः ।। इति।

तन्त्रान्तरेऽपि—

समेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्तं होमकर्मणि।
कुण्डं तु वर्जयेत्तत्र खाते कुण्डः प्रकीर्तितः।। इति।

अन्यत्रापि—

स्थण्डिले मेखलादीनां प्राप्तिरस्त्येव शास्त्रतः।
अग्न्यायतनधर्मा हि यतस्ते मेखलादयः।।इति।

ननु अग्न्यायतनधर्मत्वेनैव सर्वत्रापि प्राप्तौ पुनर्वचनारम्भो व्यर्थ इति चेत्, न, वचने स्थण्डिले इति विशेषोपादानात् आयतानन्तरनिवृत्तिः। बौधायनोऽपि—

कुण्डवन्मेखलां कृत्वा योनिं कृत्वा ततः परम्।
बौधायनमते प्रोक्तं स्थण्डिलं चतुरस्रकम्।। इति।

व्यतिरेकमुखेनास्यावश्यकता तत्रैवोक्ता—

मेखलारहिते होमः सर्वकर्मसु गर्हितः।।
हविराधारतस्तासां मेखलानां प्रयोजनम् ।। इति।

न चात्र वाक्ये स्थण्डिलशब्दात् श्रवणात् कुण्डविषयमेवास्येति वाच्यम्। तत्र मेखलारहिते शोक इति वाक्येन दोषान्तरप्रतीतेरित्यन्तमुक्तम्। पद्धतौ तु अत्र कश्चित्कुण्डवत् स्थण्डिलेति मेखलायोन्यादि कार्यमित्याह, तदज्ञान-विजृम्भितमित्यारभ्य तस्मात् स्थण्डिले मेखलादयो न भवन्तीति सिद्धम्। एतेन स्थण्डिले योन्याकरत्वमपि परास्तम्। चतुरस्रत्वस्य विशेषश्रुत्वादित्य-मतिक्षोदेनेत्यन्तं सविस्तृतमुक्तं विस्तरभयादत्र न लिखितम्। वायवीयसंहितायाम्—

अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा। इति।

क्रियासारे—

कुण्डमेवंविधं न स्यात्स्थण्डिलं च समाश्रयेत् ।। इति।

अथात्र मण्डपादीनां यद्यदुक्तं तु तत्तथा।
कार्यं न्यूनाधिकत्वे तु दोषाः स्युर्बहवः शिवम्॥१६०॥

सूतसंहितायाम्—

मध्यवेद्याश्चतुर्दिक्षु कुर्यात्कुण्डचतुष्टयम्।
कुण्डाभावे स्थण्डिलेषु होमः कार्यो यथाविधि ॥ इति।

इत्यादिवचनचयैः कुण्डस्थण्डिलयोर्विकल्पवत्तदङ्गानामपि तथात्वाद्विकल्पो युक्तः। क्रियासारे—

होमेऽष्टदिक्षु प्राक्प्रहः प्रागुदक्प्रवणेऽथ वा।
उदक्प्रहः प्रदेशो वा स्थण्डिलस्य स्थलं स्मृतम्। इति।

शारदायाम्—

हस्तमात्रेण तत्कुर्याद् बालुकाभिः सुशोभनम्।
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः॥ इति।

पदार्थादर्शे—

चतुःकोणमब्ध्यङ्गुलोसेधमेकः। इति।

कुण्डसिद्धिटीकायामपि तन्त्रान्तरे—

मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मबालुकयापि वा।
अङ्गुलोच्चं तथा वेदाङ्गुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः ॥ इति॥१५९॥

अथोक्तमुपसंहरन्नुक्तमण्डापादौ न्यूनाधिककरणे दोषमनुष्टुभाह— **अथेति।** मण्डपादीनामादिपदेन कुण्डवेदिध्वजपताकादीनां सङ्ग्रहः। यथायथोक्तं तत्तथैव कार्यमन्यथाकरणे न्यूनाधिकत्वे सति बहवो दोषाः स्युर्भवन्तीत्यर्थः। शिवमिति पदं समाप्तिद्योतकम्। जयद्रथयामले—

सूत्राधिके सुहृद्द्वेषो मानहीने दरिद्रता।
वाग्रोधः कण्ठहीने स्यादसिद्धिर्न्यूनखातके॥
अधिके चासुरो भोगो मानेनाधिकमेखले।
व्याधयः सम्प्रवर्तन्ते वीतोष्ठे स्यादपस्मृतिः।
उच्चाटः स्फुटिते छिद्रे सङ्कुले वाच्यता भवेत्॥ इति।

भारद्वाजान्ववाये महति समभवद्वैठलिर्विश्वनाथोऽ-
पीष्टापूर्तैः सुरेन्द्रान् प्रतिदिनमिह योऽप्रीणयत्तस्य पुत्रः।
भास्वांश्छ्रीभास्करो वै तदनु समुदितस्तत्सुतोऽभूद् वरिष्ठो
जड्योपाह्वस्तु विद्वन्मुकुटमणिरसौ दीक्षितः कृष्णशर्मा॥१६१॥

विश्वकर्मापि—

खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः।
वक्रकुण्डे च सन्तापो मरणं छिन्नमेखले॥
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डं यत्कुण्डवर्जितम्॥ इति।

क्रियासारेऽपि—

न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुण्डं कर्कररमेखलम्।
शृङ्गाररहितं यच्च यजमानविनाशकृत्॥

आगमान्तरेऽपि—

मानाधिके भवेन्मृत्युमानहीने दरिद्रता॥

सिद्धान्तशेखरे—

मानहीने महाव्याधिरधिके शत्रुवर्धनम्।
योनिहीने त्वपस्मारो वाग्दण्डः कण्ठवर्जितः॥ इति।

वसिष्ठसंहितायामपि—

अनेकदोषदं कुण्डमत्र न्यूनाधिकं यदि।
तस्मात्सम्यक्परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छता॥ इति सर्वम्। शिवम्॥१६०॥

अथ ग्रन्थपूर्तौ स्वपूर्वजवर्णनं स्रग्धरयाह—**भारद्वाजेति**। भरद्वाज एव भारद्वाजस्तस्य विस्तारवति कुले विट्ठलस्यापत्यं पुमान् विश्वनाथनामा समभवद्यः प्रत्यहं सुरेन्द्रान् देवश्रेष्ठान्, श्रौतस्मार्तकर्मभिरप्रीणयत्तस्य पुत्रः कान्तिमान् भास्कराख्यस्तदनु सम्यगुदितस्तत्सुतः श्रेष्ठः जडोपनामा विदुषां मुकुटमणिर्मुख्यः असौ दीक्षा सञ्जाता यस्य एतादृशः कृष्णाऽख्योऽभूदित्यर्थः॥१६१॥

तस्य पुत्रेण तत्पादरजः कृत्वा स्वमूर्धनि।
रामचन्द्रेण रचिता कुण्डरत्नावली शुभा॥१६२॥

कुण्डरत्नावली येन कण्ठे धृता याज्ञिकानां समाजे स पूज्योत्तमः।
कुण्डशास्त्रे मणौ तस्य सूच्या इव स्याद्गतिः सुन्दरा मण्डपादावपि॥१६३॥

भ्रान्त्या प्राचीनमततो विरुद्धमिह यन्मया।
लिखितं तत्तु विद्वांसः शोधयन्तु दयालवः॥१६४॥

खाङ्कमुनिभू १७९० शाके भाद्रकृष्णे शिवे तिथौ।
समापिता चार्पिता च कण्ठे विश्वेश्वरस्य सा॥१६५॥

॥इति श्रीमज्जड्योपाह्वकृष्णदीक्षितबाबूदीक्षिता-
परनामधेयसूरिसूनू रामचन्द्रदीक्षितविरचिता कुण्डरत्नावली समाप्ता॥
॥ श्रीमदभिमानिनीदेवताचरणसरोरुहयोरर्पितास्तु ॥

तस्येति। तस्य कृष्णशर्मणः पुत्रेण रामचन्द्रेण मयेति शेषः। तत्पादस्य रजः परागस्तं स्वशिरस्यवधार्य कुण्डरत्नावली शुभा सर्वलक्षणसंयुक्ता रचिता कृतेत्यर्थः॥१६२॥

अथ कुण्डरत्नावलीं स्रग्विण्या प्रशंसति—**कुण्डेति।** इयं कुण्डरत्नावली येन पुरुषेण कण्ठे स्वगले धृता धारिता सः याज्ञिकसभायां पूज्येषूत्तमः स्यादित्यर्थः। पुनः कुण्डशास्त्रे तस्य सुन्दरा समीचीना गतिः स्यादित्यर्थः। मणौ सूच्या इव तथा मण्डपादावपि गतिर्ज्ञानं स्यात्॥१६३॥

अथ विदुषोनुष्टभा प्रार्थयते—**भ्रान्त्येति।** मयेह कुण्डरत्नावल्यां भ्रान्त्या चित्तविक्षेपेण प्राचीनानां पूर्वाचार्याणां मततो विरुद्धं यत्किञ्चिल्लिखितं तद् दयालवो विद्वांसः शोधयन्तु शुद्धिं कुर्वन्त्वित्यर्थः॥१६४॥

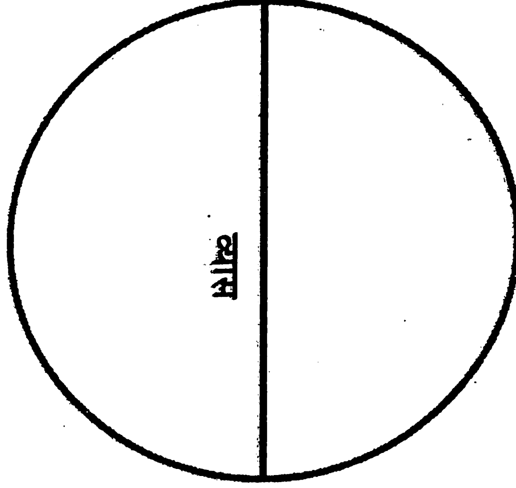
अथ ग्रन्थसमाप्तिदिवसमनुष्टुभाह—**खेति।** नवत्युत्तरसप्तदशशततमे शालिवाहनशके १७९० भाद्रपदमासस्य कृष्णपक्षे शिवे तिथावेकादश्यां समापिता समाप्तिं प्राप्ता सा श्रीविश्वेश्वरस्य कण्ठे अर्पिता प्रापिता चेति सर्वं शिवम्॥१६५॥

यदत्र चोक्तं सदसद्विशोधितुं न प्रार्थये सज्जनपण्डितानहम्।
तमोनुदं तत्तिमिरं विनाशितुं न याचते कोऽपि हि शुभ्रमो वयम्॥

॥ इति श्रीमज्जड्योपनामकृष्णदीक्षितबाबूदीक्षिता-
परनाधेयसूरिसूनुरामचन्द्रदीक्षितविरचिता
स्वकृतकुण्डरत्नावलीटीका
मञ्जूषाख्या समाप्ता ॥

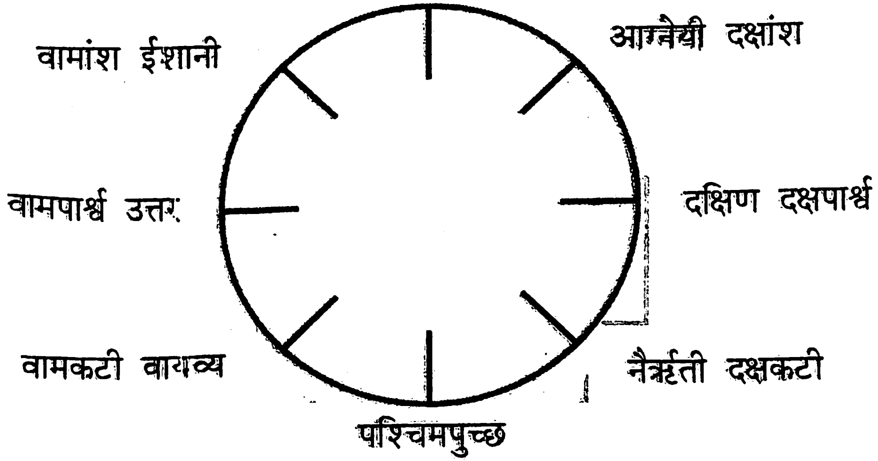
चित्रपरिशिष्टम्- १

वृत्तस्वरूपम्



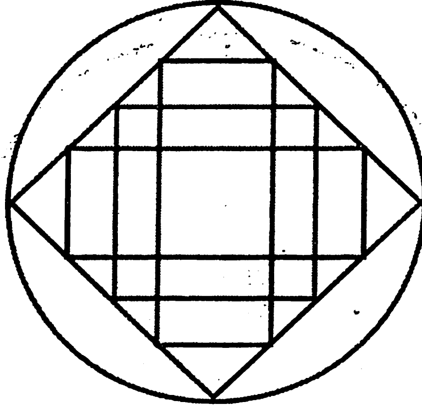
चित्रसंख्या – १

पूर्वमुख



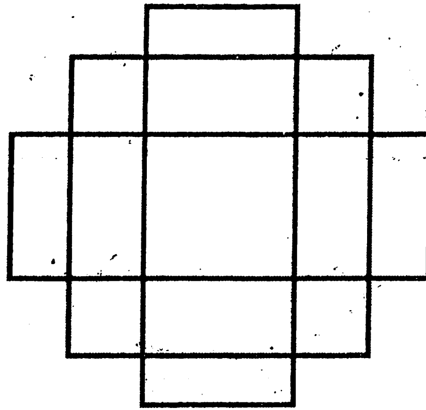
चित्रसंख्या – २

भद्रिकावेद्या पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ३

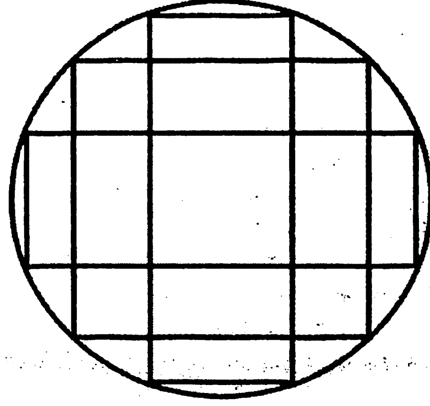
भद्रिकावेद्या सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ४

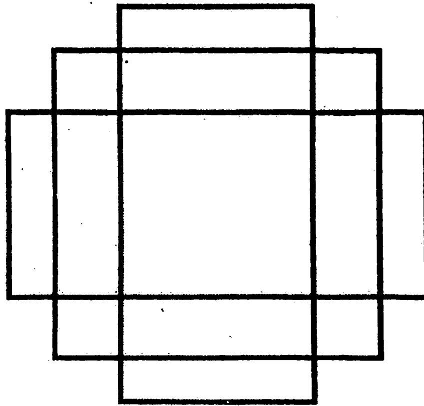
(पृष्ठसंख्या- २०)

प्रकारान्तरेणोक्तं भद्रिकावेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ५

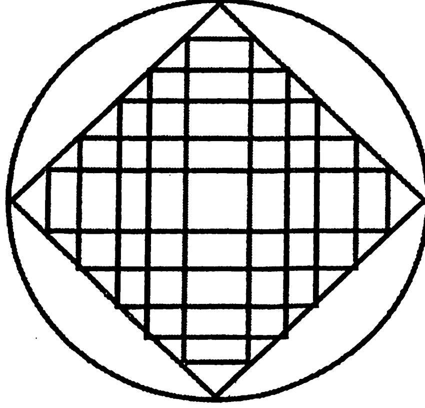
प्रकारान्तरेणोक्तं भद्रिकावेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ६

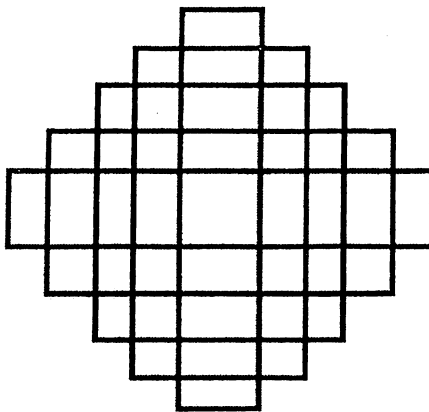
(पृष्ठसंख्या-२२)

विंशत्यस्रश्रीधरीवेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ७

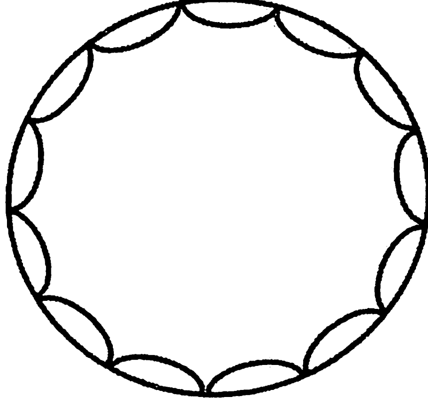
विंशत्यस्रश्रीधरीवेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ८

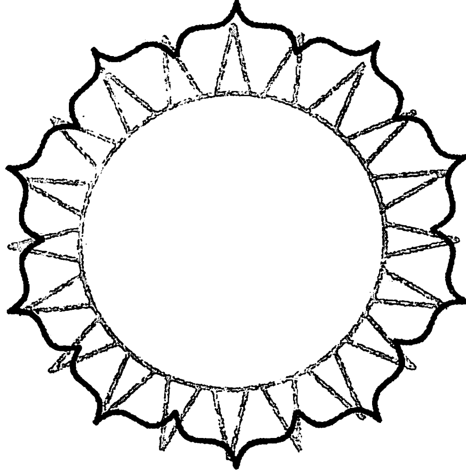
(पृष्ठसंख्या-२३)

समविंशत्यश्रीधरीवेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ९

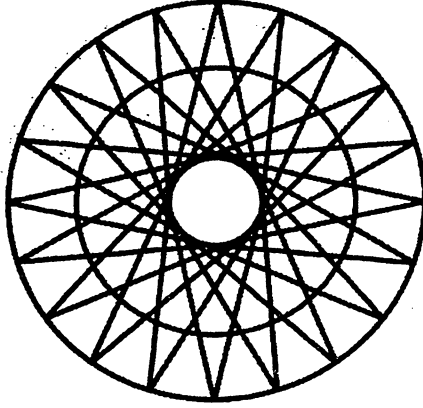
समविंशत्यस्त्रश्रीधरीवेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – १०

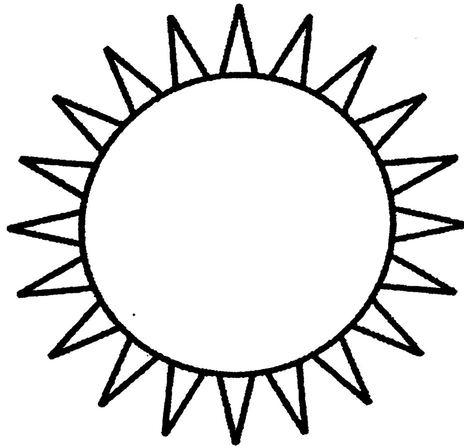
(पृष्ठसंख्या-२३)

विंशत्यस्रश्रीधरीवेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ११

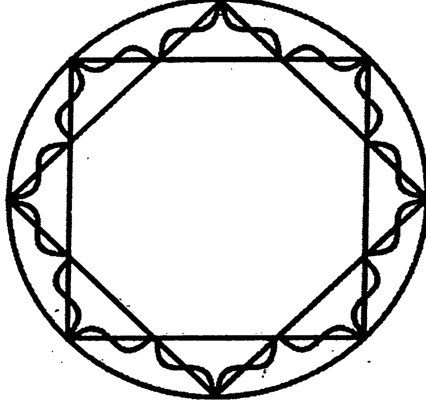
श्रीधरीवेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – १२

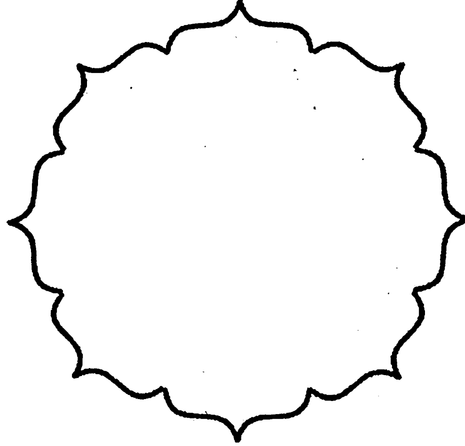
(पृष्ठसंख्या-२५)

पद्मिनीवेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – १३

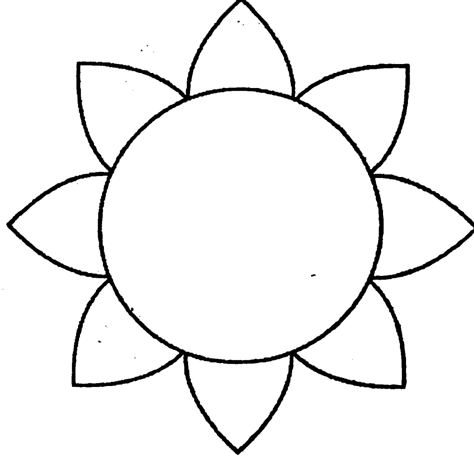
पद्मिनीवेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – १४

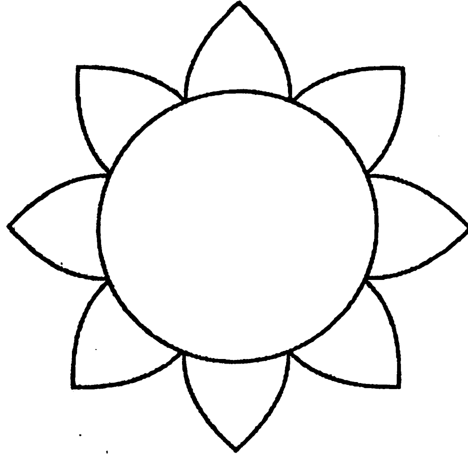
(पृष्ठसंख्या-२५)

पद्मकुण्डवत्पद्मिनीवेद्याः पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या - १५

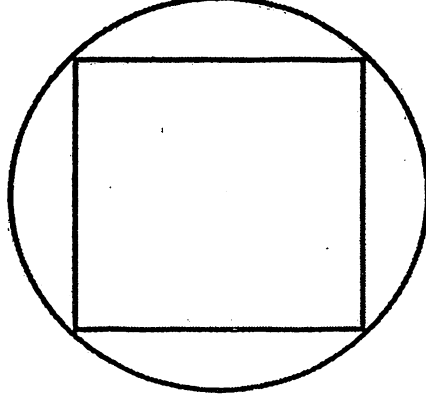
पद्मिनीवेद्याः सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - १६

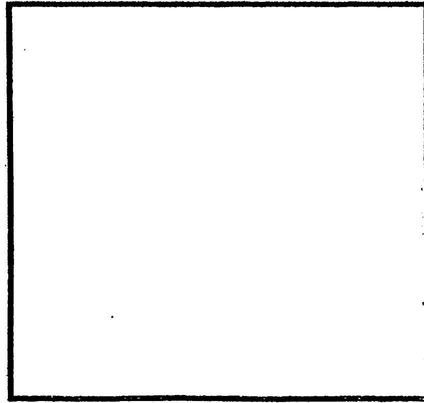
(पृष्ठसंख्या-२६)

चतुरस्रस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – १७

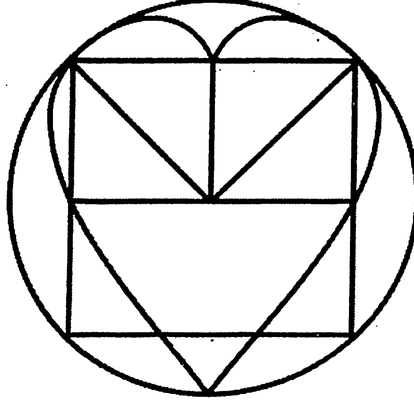
चतुरस्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – १८

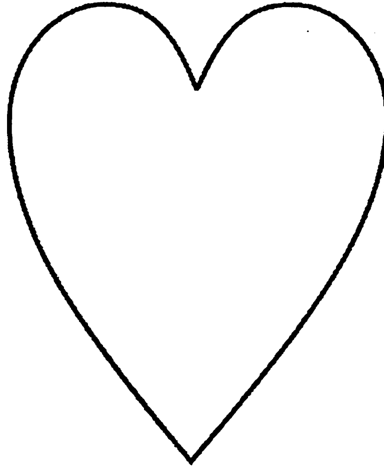
(पृष्ठ संख्या-५४)

योनिकुण्डसाध्यरूपम्



चित्रसंख्या – १९

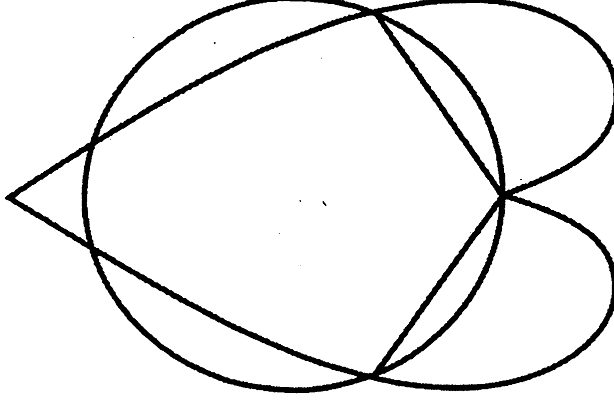
योनिकुण्डसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – २०

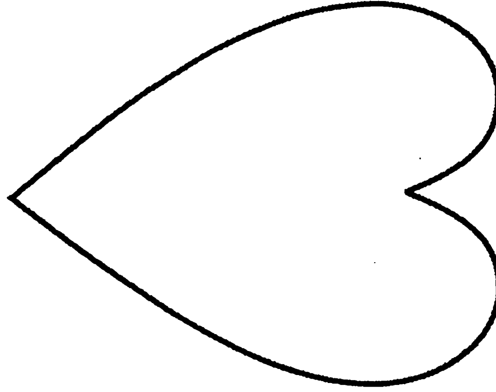
(पृष्ठसंख्या-५६)

द्वियोनिकुण्डसाध्यरूपम्



चित्रसंख्या - २१

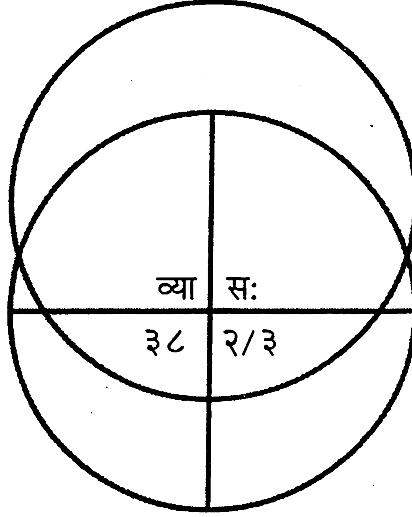
द्वियोनिकुण्डसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - २२

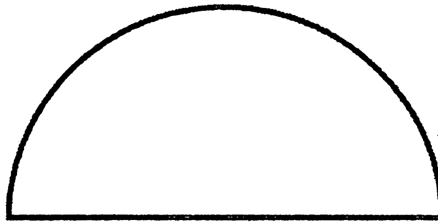
(पृष्ठसंख्या-२१,२२)

अर्धचन्द्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – २३

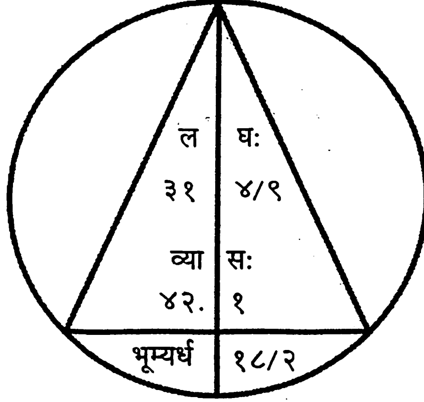
अर्धचन्द्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – २४

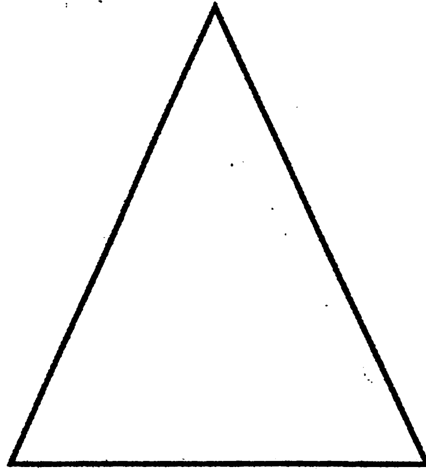
(पृष्ठसंख्या-५७)

प्रथमत्रिकोणपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – २५

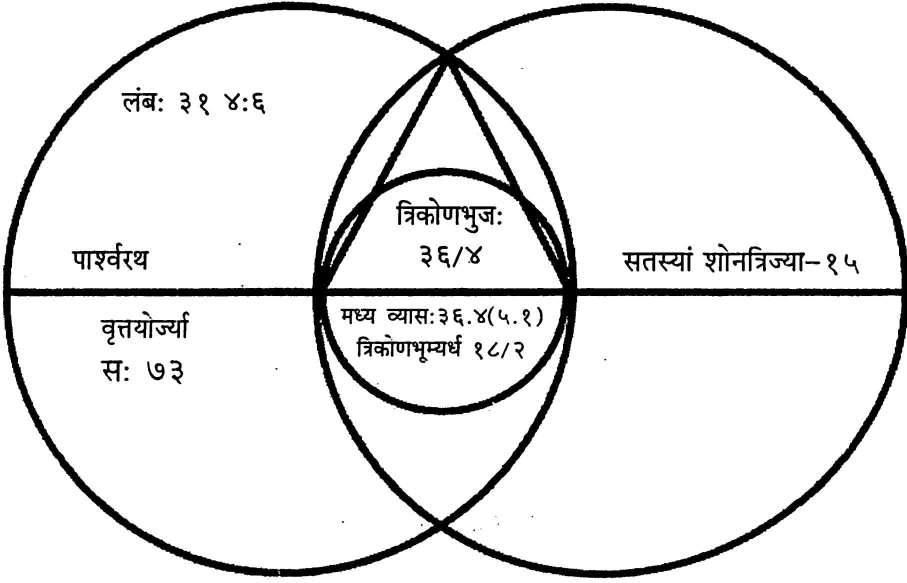
प्रथमत्रिकोणसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – २६

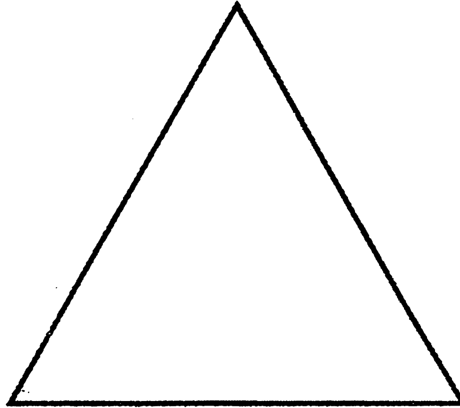
(पृष्ठसंख्या-५७)

द्वितीयत्रिकोणस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – २७

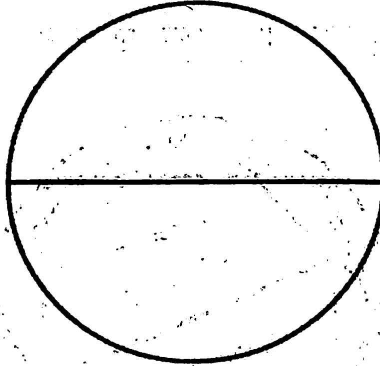
द्वितीयत्रिकोणस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – २८

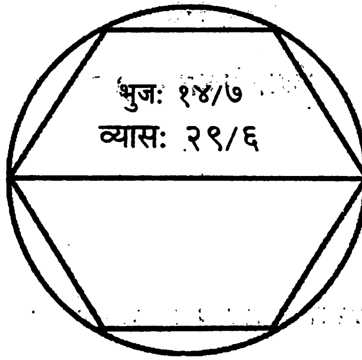
(पृष्ठसंख्या-५७)

वृत्तकुण्डस्य पूर्वरूपम्, सिद्धरूपं चैकम्



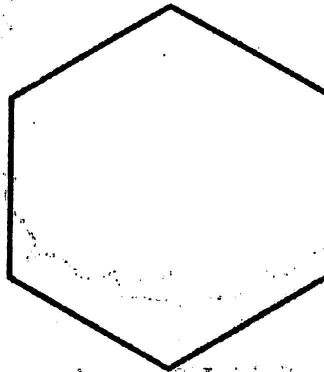
चित्रसंख्या – २९

षडस्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ३०

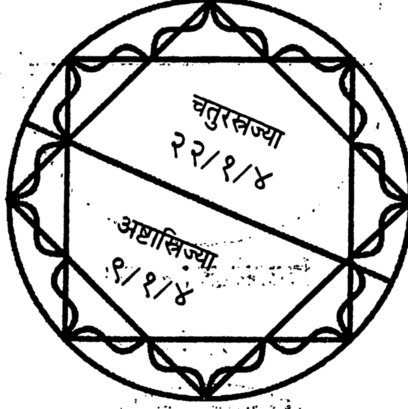
षडस्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ३१

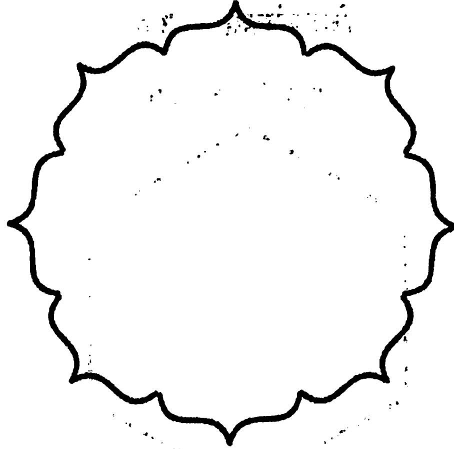
(पृष्ठसंख्या-५८)

प्रथमपद्मकुण्डस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ३२

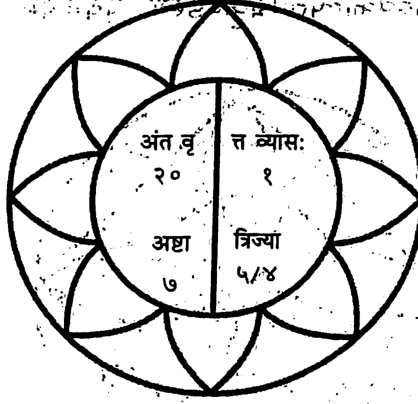
प्रथमपद्मकुण्डस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ३३

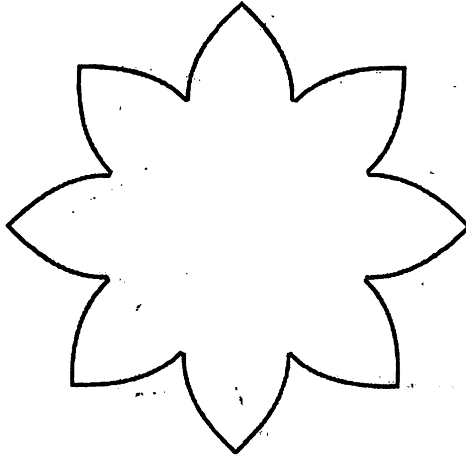
(पृष्ठसंख्या- ६१)

द्वितीयपद्मकुण्डस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या - ३४

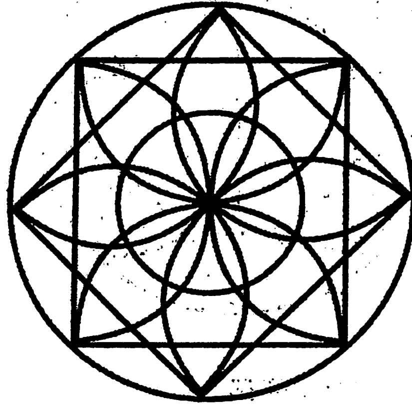
द्वितीयपद्मकुण्डस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - ३५

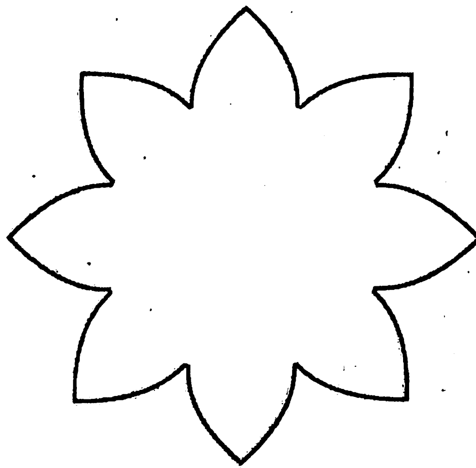
(पृष्ठसंख्या- ६१)

बापूदेवकल्पितपद्मकुण्डस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या - ३६

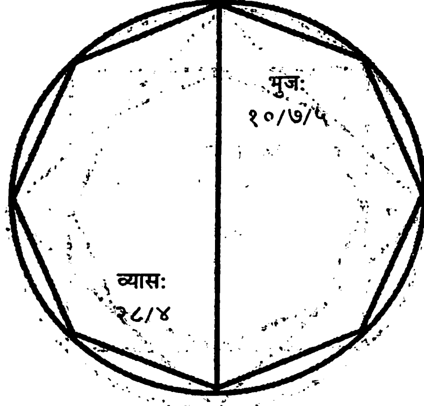
बापूदेवकृतपद्मकुण्डस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - ३७

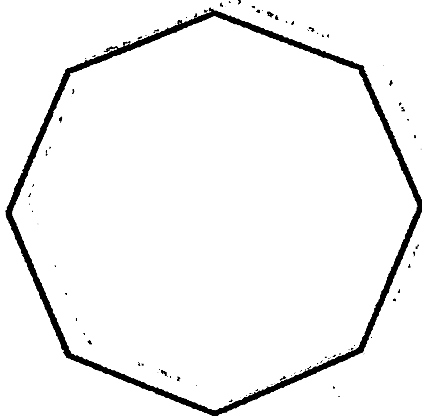
(पृष्ठसंख्या-६१)

अष्टास्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या - ३८

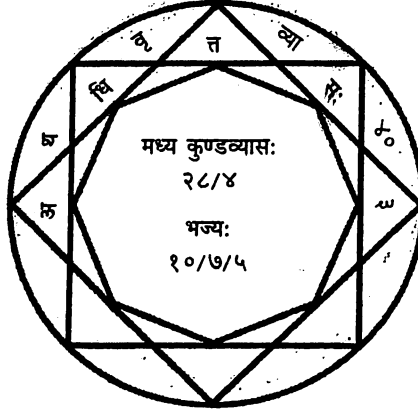
अष्टास्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - ३९

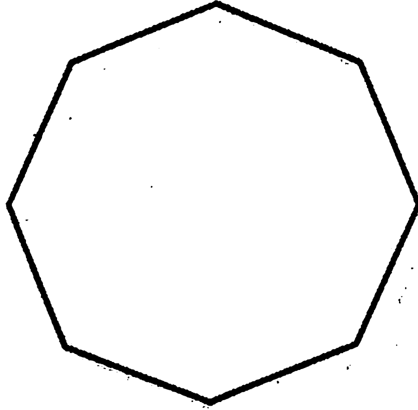
(पृष्ठसंख्या-६३)

कुण्डार्कोक्ताष्टास्रस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ४०

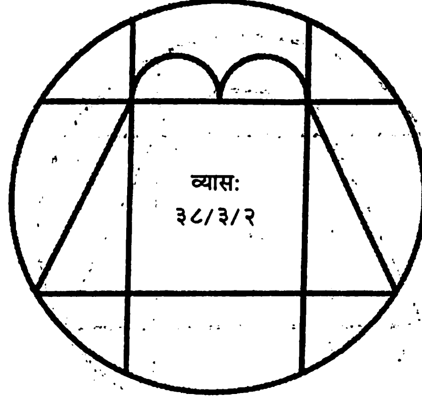
कुण्डार्कोक्ताष्टास्रस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ४१

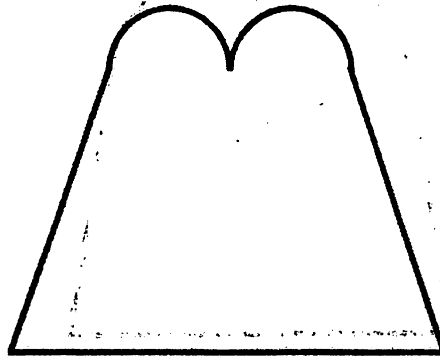
(पृष्ठसंख्या-६३)

शूर्पकुण्डपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या - ४२

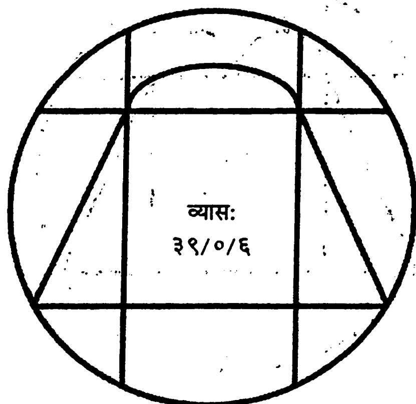
शूर्पकुण्डसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या - ४३

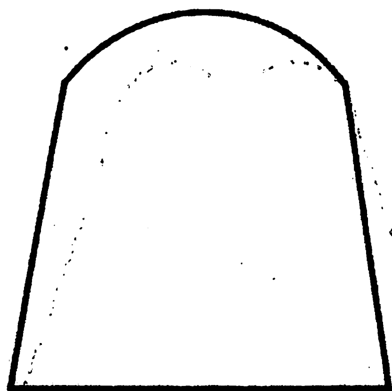
(पृष्ठसंख्या-६५)

द्वितीयशूर्पकुण्डस्य पूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ४४

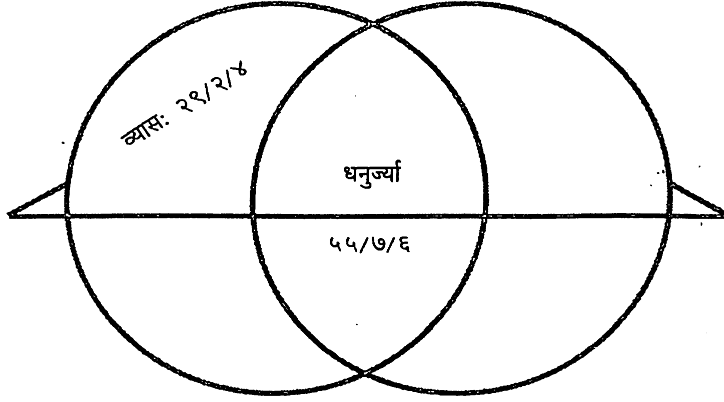
द्वितीयशूर्पकुण्डस्य सिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ४५

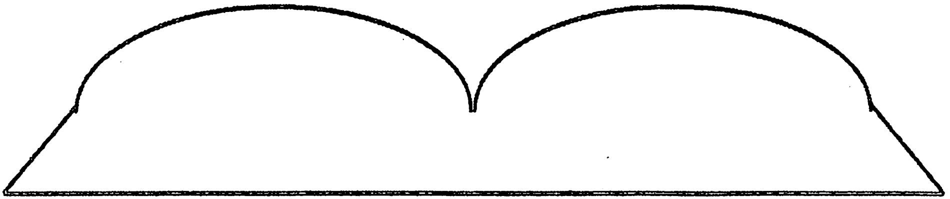
(पृष्ठसंख्या-६५)

धनुःकुण्डपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ४६

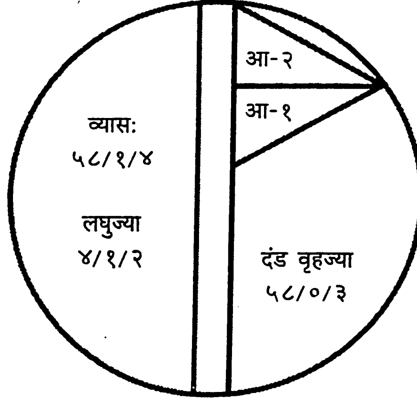
धनुःकुण्डसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ४७

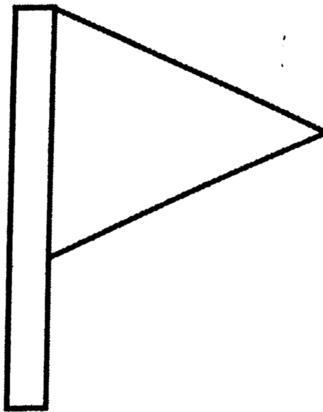
(पृष्ठसंख्या-६७)

ध्वजकुण्डपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ४८

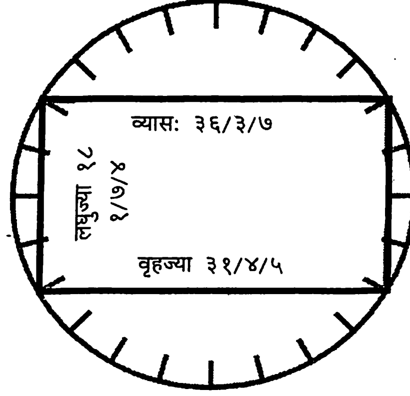
ध्वजकुण्डसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ४९

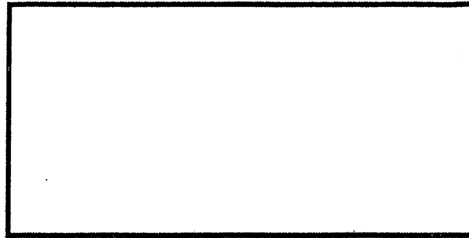
(पृष्ठसंख्या-६८)

आयतचतुरस्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ५०

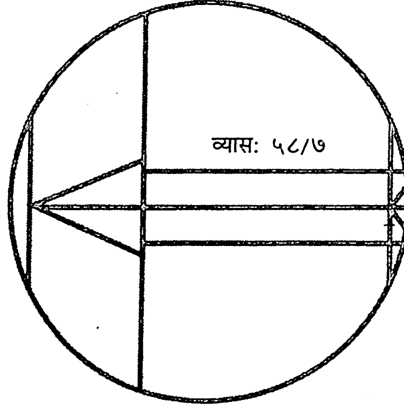
आयतचतुरस्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ५१

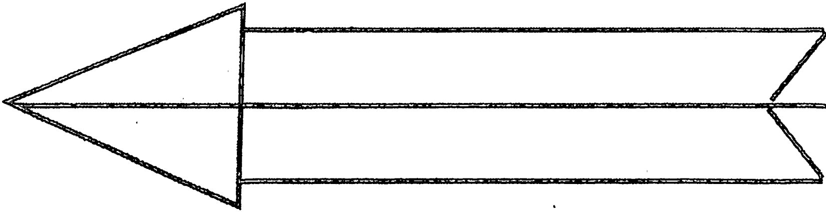
(पृष्ठसंख्या-६८)

बाणकुण्डपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ५२

बाणकुण्डसिद्धरूपम्

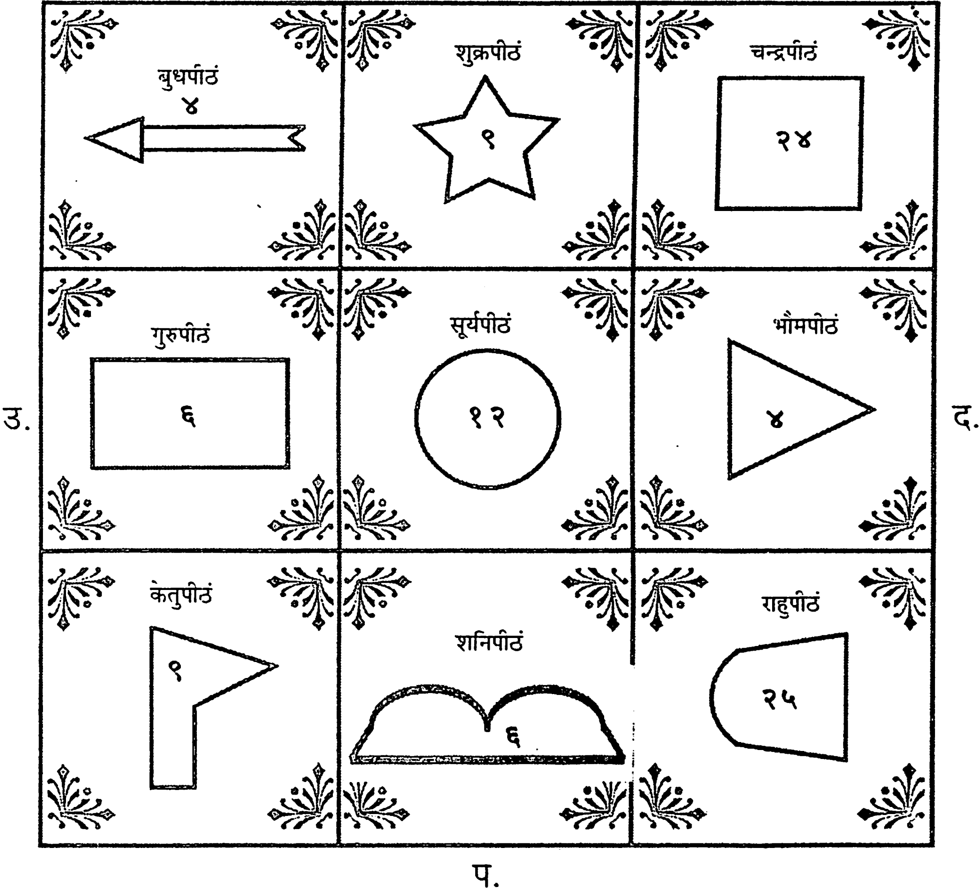


चित्रसंख्या – ५३

(पृष्ठसंख्या-७०)

ग्रहवेदीपीठम्

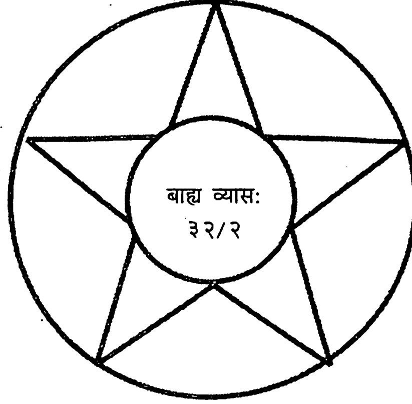
पू.



चित्रसंख्या – ५४

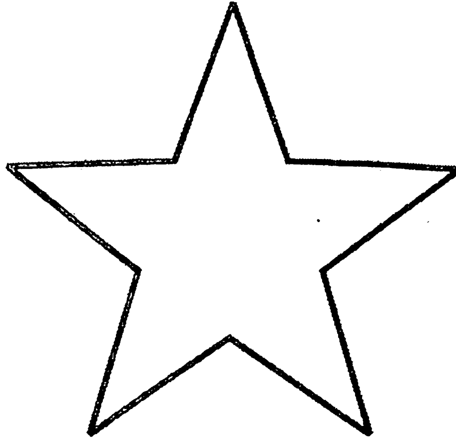
(पृष्ठसंख्या-७०)

उत्कलिकपञ्चास्त्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ५५

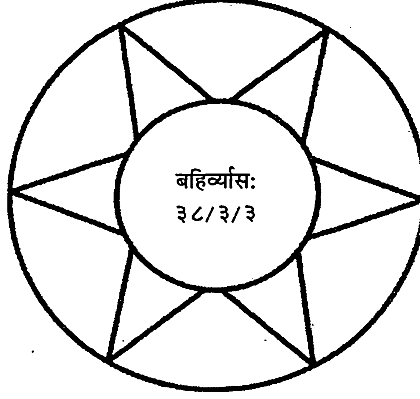
उत्कलिकपञ्चास्त्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ५६

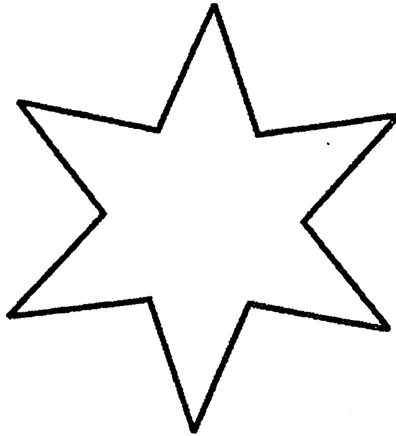
(पृष्ठसंख्या-७५)

उत्कलिकषडस्त्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ५७

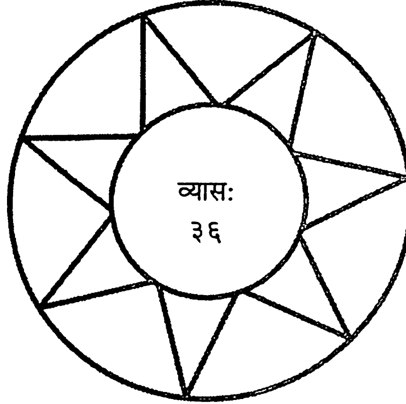
उत्कलिकषडस्त्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ५८

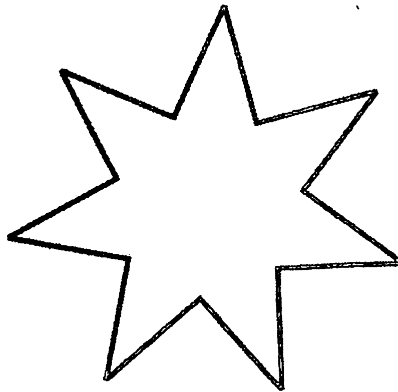
(पृष्ठसंख्या-७६)

उत्कलिकसप्तास्रपूर्वरूपम्



चित्र संख्या – ५९

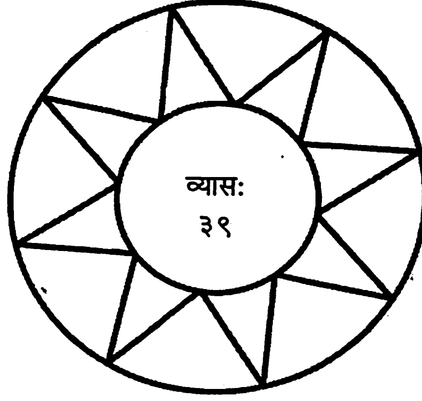
उत्कलिकसप्तास्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ६०

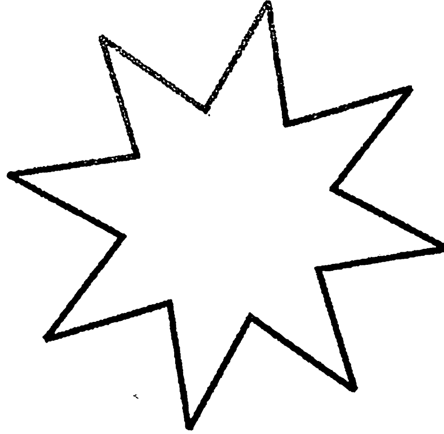
(पृष्ठसंख्या-७६)

उत्कलिकाष्टास्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ६१

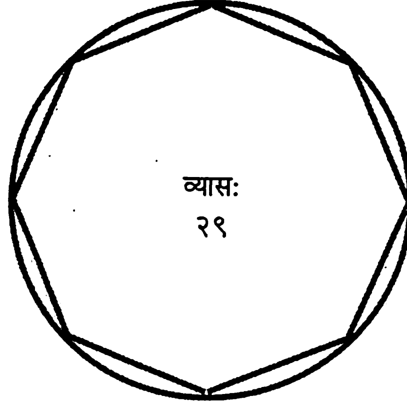
उत्कलिकाष्टास्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ६२

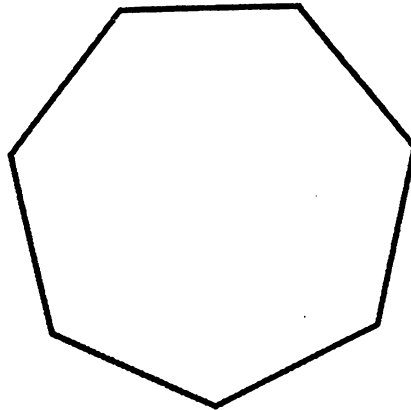
(पृष्ठसंख्या-७६)

सप्तास्त्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ६३

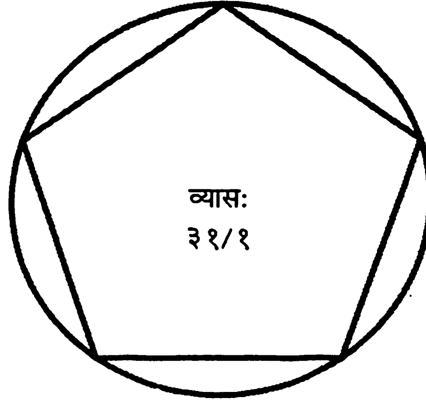
सप्तास्त्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ६४

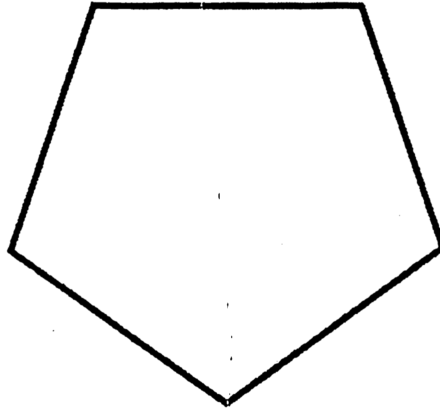
(पृष्ठसंख्या-७७)

पञ्चास्रपूर्वरूपम्



चित्रसंख्या – ६५

पञ्चास्रसिद्धरूपम्



चित्रसंख्या – ६६

(पृष्ठसंख्या-७८)

परिशिष्टम्- २

[सम्पादितग्रन्थस्य पाण्डुलिपिः]

वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय-सरस्वतीभवनस्य

प्रवेश सं० ४०८०२   विषय वेद   क्रम सं० १४८

नाम कुण्डरत्नावलीसटीका   ग्रन्थकार: रामचन्द्रः

पत्र सं० ८०

पड्क्ति सं० (पृष्ठ) १२   अक्षर सं० (पङ्क्ती) ३०

आकार ३X×X३८   ५६९५१

लिपि- देवना०   आधार: का०

पूर्ण/अपूर्ण   लिपिकाल: श्री०१८९०   रचनाकाल:

वि० विवरणम् टीका-मञ्जूषाख्या

१८।२९   न० १२/१९०५

श्री॰ श्रीगणेशाय नमः ॥ निघ्नमस्तु पाशांकुशौ पुस्तकोदण्डौ बिभ्रन्नाराच चतुर्भुजैः जपा
कुसुमसंकाशो महः किंचिदुपास्महे ॥ १ ज्योतिर्वित्तमां सूर्यगणितामृतविग्रहं हरि
नाथकरान्वयो रूपश्रीरामो [illegible] करं नुमः २ महाजनिं गणेशाख्यं वंदे ज्योतिर्विदां
वरं यत्पादपंकजरजो बुधस्यो भूतिदः सदा ३ अथ प्रारीप्सितस्य विघ्नविघातप्र

[illegible] नियं देवं ईशो ज्वरीकुमारं लेसशिरो
[illegible] तस्य कलानिधेः [illegible] शीर्षेन
[illegible] धनुर्बाणत्रिशूलादि तथा चामरं
गिरिजा गजाननयुता दक्षे गुहो भैरवः पार्श्वे हस्तजिनां वरः स जयति

वंके समास्ति मिकुः [illegible] रितं मंगलं वितनोति वंदे इति [illegible] घोतनशीलं वंदे र
स्तन्वयः ईश [illegible] ईश्वरी तनयोः कुमार अथवा ईशः शिवस्तस्य ईश्वरी नियंत्री
त्रिपुरसुंदरी इत्यर्थः तस्याः कुमारः अनंतकोटिब्रह्मांडसार्वभौमस्य श्रीशिवस्य
युवराज महागणपतिरित्यर्थः ललितोपाख्यानादौ तथोक्तत्वात् तथा च कुमारः

स्याच्छुके स्वर्गे युवराजे इति मेदिनी लेखा देवास्तेषां शिरोमुकुटरत्नैः शोभितो भा
सुरः पदकमलयस्य सः [illegible] तोरा आदितिनंदनाइत्यमरः मोदकः खाद्यविशेषः मो
दकः खाद्यभेदे स्त्रीति कोशात [illegible] करे यस्य मोदो हर्षः स्वभक्तानां हर्षं करोतीत्य
र्थः मोदकः प्रियो यस्येति सर्वविघ्नहटवीरवरूपश्रीगजाननवंदनत्वान्न
मनात्मकं मंगलमिति १ अथ कुलदेवतां सप्तकोटीश्वराख्यं शिवं शार्दूलविक्री

करुणाईकटाक्षां तान्तरुणादित्यसंनिभां बिंबवर्णारुणां नौमि श्री
मत्त्रिपुरसुंदरीं ३ स्मार्तं भीष्टकरं वेदशास्त्रसिद्धान्तपारगं परब्रह्म
मयं किंचिद्देशीधरमुपास्महे ४ कृष्णाख्यतातनपदपद्मयुगं हि न

डितेन [illegible] स्तौति भालानितिन त्यासिध्दं हालाहलाख्यं गरलं विषं जयती
त्यर्थः [illegible] त्रिपते शेषं सुगमं २ अथ स्वेष्टदेवतां मनुष्टुभा नमति क
रुणेति करुणया कृपया आर्द्रौ पूरितौ कटाक्षौ अपांगदर्शने यस्याः तरुणो
य आदित्यस्तद्वत्संनिभां आसमंतात्तेजो भिव्यक्तिर्यस्याः सा मित्यर्थः बिंबवर्णव

कुं॰टी॰
२

दरूणाकोतिर्यस्याः बिंबंतुप्रुतिबिंबेस्यान्मंडलेपुन्नपुंसके बिंबिकायाःफलेक्ली
बमितिमदिनीतांत्रिपुरसुंदरींनौमिनमस्कारंकरोमीत्यर्थः३ अथगुरुमनुष्टुभा
स्तौतिभक्तेतिभक्ताः शिष्याःअस्मदादयस्तेषांनानाशास्त्रग्रंथाध्यापनेनाभी
ष्टंकरोतीत्यर्थः वेदशास्त्रेषुयेसिद्धांतास्तेषांपारगंसर्वज्ञमितियावत्‌वशीधरंए
तन्नामविशिष्टंपरब्रह्ममहः गुरुरेवपरब्रह्मेत्यादिवाक्यः गुरुरूपंतेजः किंचिदनि

स्वाध्यात्वागुरोर्बंद्धिमुदापदपद्मयुग्मं ॥ज्ञात्वानुपूर्वविदुषांसुकृतीः
समस्तावस्यःश्रकुंडकरणंसहमंडपेन५॥ ॥ ॥

र्वचनीयेउपास्महेउपासनांकुर्मइत्यर्थः अथकृष्णपक्षेभक्ताःपूजकास्तेषाम
भीष्टंवरदानादिवेदशास्त्रसिद्धांतास्तेषांपारगंयःसर्वज्ञःससर्वविदिसुक्त्वाके
षसुगमं४ एवंमंगलानिविधायपितृवंदनपूर्वकंस्वकरणीयंवस्तुतनिलकयाप्रति
जानीतेकृष्णोतिकृष्णेत्याख्यायस्यतातस्यतस्यपदयुगमेवपद्मयुगंनत्वाप्रणम्यत
थागुरोरपिपदपद्मयुग्मंनत्वामुदाहर्षेणध्यात्वापूर्वाचार्याणांसुकृतीःकुंडनिबंधा

ऊंा ऊंधं

न्नालाघनस्यवधार्थंकुंडानांएकंकुंड्यादिनवकुंड्यंतानांतथाग्नहकुंडानांद्विमुखद
शमुखशतमुखादीनांतथाप्रगाद्यैकोधर्यादिवेदीनांग्रहपीठानांचकरणकरणप्र
कारमंडपेनत्रिहस्तादिशतहस्तांतेनसहवक्ष्येवक्ष्यामीत्यर्थः नन्वत्र संबंधचतुष्ट
याभावात्कथंप्रेक्षावत्प्रवृत्तिरितिचेन्नकुंडमित्यादिनाविषयेःतत्करणंप्रयोजनं
तद्वक्ष्येइतिसंबंधःएतज्जिज्ञासाराधिकारीत्यतोनाप्रवृत्तिरिति ॥५॥ अथवक्ष्य

पादाग्रतिष्ठदूर्ध्वाहोः कर्तुःपारलवः करःतात्सिद्धांशोंगुलंतस्यगजांशोय
वउच्यते॥६॥ यूकातस्याष्टमस्तस्यालिक्षानागांशकोमता॥ कंठादौचतु
रस्त्रस्याजिनांशोंगुलमिष्यते॥७॥ माणोपयोगिनीपरिभाषामनुष्टुप्चतु
ष्टयेनाहपादेतिपादस्याग्रेतिष्ठतीतिसचासोऊर्द्ध्वाहुरूर्ध्वौबाहूयस्यकर्तुर्यजमा
नस्यशरलवः पंचमोभागः करोहस्तइत्यर्थः इषवः पंचेत्यादिसंज्ञालोकप्रसि
द्धात्रेयाः तस्यहस्तस्यासिद्धांशश्चतुर्विंशतितमोभागोंगुलंतस्यगजांशोऽष्ट
मोभागोयवइत्युच्यतेप्राचीनैरितिशेषः॥६॥ यूकेतितस्ययवस्याष्टमांशोयूका

न्या: न्ना गोरेगा इत्तोंशोलिक्षेत्यादि: एवमुत्तरोत्तरआपिवालाग्रादि संज्ञा: सेति
ता अनुपयुक्ता अतोनोक्ता: तथा चादित्यपुराणे वालाग्रमष्टलिक्षा तु यूका लि
क्षाष्टकं मतं अष्टौ लिक्षा यवं प्राहुरंगुलं तु यवाष्टमिति तथा चतुर्विंशत्यंगुलको
हस्त इत्याद्यत्र कंठादेरादिपदेन योनिनाभिमेखलानां संग्रह: चतुरस्रस
रहस्तादि चतुरस्रकुंडस्य चतुर्विंशांश: अंगुलं मंडपादौ तु आदिपदेन ध्वजप
ताकास्तंभादीनां संग्रह: तत्र हस्तस्यैव जिनांशोंगुलं तद्देवांगुलं परिइस्यपि कथ्य
मंडपादौ तु हस्तस्य तद्देवांशोपि कथ्यते॥ कुंडादौ रत्नकरणे व्यासो व्यासार्धमि
ष्यते॥ ८॥॥
तेजं शो भागो लब्धोंगुलमिति च पर्याय: एवं द्विहस्तकुंडादौ कुंड चतु
र्विंशोंगुलमित्ज्ञेयं उक्तं च क्रियासारे कुंडानां यश्चतुर्विंशो भाग: सोंगुलसंज्ञक: वि
ज्ञानेन कर्तव्या मेखलाकंठनाभय इति सिद्धांतशेखरेपि चतुर्विंशतिमो
भाग: कुंडानामंगुलं स्मृतमिति ७ कुंडादावित्यादिपदेन पीठादेश्च यद्वृत्तकरणं त
स्मिन् वृत्तस्य तिर्यग्लंबलक्षणं ... रे व्यास: व्यासार्धमाख्या व्यासो विस्तर इति

विस्तारस्तति रिति न पर्यायाः सतु सर्वकुंडव्यासकथनावसरे वक्ष्यमाणः ८ दिगिति
दिक्साधने मा आदि दिक्साधनार्थं यच्चक्रं कुत्स्य शंकोर्भानात् द्विगुणास्त्वृतिः दि
क्साधनवृत्तव्यासः स्यात् यत्र कुत्रचिद्वृत्तकार्यमित्यत्र कस्मात्कार्यमित्यपेक्षायां
सत्वान्मध्यातः मेंडुपकोष्ठमध्यातः मेंडुपे यस्मिन्कोष्ठे कुंडं विवास्ति तत्तस्य मध्या
तः कोष्ठमध्य एव कुंडमध्य इति कुंडोद्योतादावुक्तत्वात् तस्मात्कार्यमित्यर्थः अत्र

दिक्साधने च यच्चक्रं कुस्त (?) चक्रकोर्द्विगुणास्त्वृतिः॥ अनुक्तो मध्यतो वृत्तमि
त्येतस्मारिमा गिके॥ ८॥ दिशः संभाविते प्राग्विधिर्वद्दिरसमांसविधाया
थ भूमिसं यज्ञपात्रे व मध्ये बिरचितवलये पाय त्साय शंकु॥ तच्छायाग्रं
च प्राप्तिनिशाति चवलये पाति यस्मात्तदेशानो प्रत्यग्दिदेशो तदनुगत मु
णः प्राग्गुणो सौम्यदिक्षः १०
गणित निपरीतं तद्वत् नवलात्पात रलाच्छायया यो
न्तेयेत प्रा चयु न सभे शंकुं निरवा पशंकु से मितया त्वामंडले परिलिख्य यत्र
रेखायाः शागमच्छा याग्निपातनितान शंकुं निर्हंति साया सेतिपरशुरामो पिमध्या

कुं॰ र॰ मिति अचकोटिहोमपद्धतौ सपतनत्रयं हस्तोनपाणोऽधाहस्तामितिराम कृष्णभट्टाः मयूखकल्प
लतारपोप्येवमेवमेवाहुः उक्तोनिति येपक्षाउक्तानेष्वधिकोनके पुसत्सु नैराशिकेनैव विधेयमे
तत्कुंडमित्यर्थः तथाचरुद्रप्रसादपरशुरामयोः उक्तहोमाधिकोने न होमेऽधिकोनमंगुलैः प
थाक्रमपरभाकनककृतोत्पादन्यथान्यथेति विश्वकर्मापि आद्यकुंडसमुत्था पुमागुलीनां प
योदितं एतमाध्येविभागं पत्तवितदनुपानतः इति ॥ कल्पेति कुंडकल्पद्रुमनाम ग्रंथः एवं

तु भक्षकरं तद्याग्याकरं वापि विविधिप्यतेन ॥ उक्तेषु पक्षेष्वधिकानेकेषु नैराशिकेनैव वि
धेयमेनत् कल्पद्रुरेवं विजगाद मुकुंदनेमीति वाप्ये कथयंति संतः ॥ कुंडस्य

पूर्वोक्तमुक्तसदिति जगाद अन्ये बुधाः इति नेति कथयंति कुंडस्य वस्त्वानुस्थूलसूक्ष्मद्व्यास
मानानुरूपबुधैवसुधीभिः कार्य इत्यर्थः इदं सर्वमुविस्ततरव्यवस्थितं श्रीमन्नानूकृत कुंडार्कप्र प॰
पिनी टीकायां कोटिहोमपद्धतौ च द्रष्टव्यं । ९८ । यदि त्रिमन्त्रं डपेषय स्तादिपरिमितमंड ३१
पेपक्षारं एकहस्तादि पथ्येपं कुंडं ज्ञात्वा कुंडादिकमारभेत प्रारंभं कुर्यात् यथा अष्टह
स्तदशहस्तमंडपे एकहस्तात्मकनवकुंडानां स्थापना वेधाः अनस्तत्रपंच कुंडे च कार्या न नवकुंडी वं द्विहस्ता

रिकुंडादावपितान्यकुंडानि तु प्रोक्तानीति भावः तथान्यूनेषु कुंडेषु अधिको विधेयः यथा एकहस्तकुंडे एको
नापूर्णं पर्यंतं होमसहस्रं कृतो होमः अधिककुंडे पुनः प्रदिष्टः उक्तं च कोटिहोमे होमोपकृतो न्यूनसंख्यो
दितेकुंडे पिकोटिहोमो विधीयते अनुक्तकुंडोन्यूनस्तु नाधिकं यास्यते कुचिदिति न्यूनसंख्येपि स्थूल
द्रव्यपरिमाणाधिक्यादावधिकसंख्याक्रमपि कुंडं भवत्येव अर्थात्परिमाणमिसूक्तेः अतस्तोक्तं
पूर्वश्लोके कुंडमनस्याद् रुरुसहस्रे सत्यादि। ९५। अथ पंचदशभिर्गीतिभिश्चतुरस्रादिकुंडकरणप्रका
रमाह दस्तेति चतुरस्रहस्तव्यासः २३।७।५ अस्यार्धं १६।७।८।४ अनेन कृतेवृत्तेनास्मि

वस्याग्रसस्रमाना द्व्यस्रकार्या स्तपिमासुधीभिः ९४ पर्यंतं पंचपक्ष कुंडमिदं स्यात्
वकुंडादिक्रमारंभेन ॥ न्यूनेषु कुंडेष्वपि कोविधेयो न्यूनो न होम इत्युपप्रदिष्टः। ९५। द

नचमुद्रसुविनतुरुतेषु सत्सुपः हस्तदक्षांसस्तमस्मादारभ्यआदक्षआज्ञिणपर्यंतमपि सर्वः तथा
सव्यदोस्तः अर्थात् वामकरिस्तस्यालम्बं एवं चाहु द्व्यस्रं तथा करियुग्मस्य पंच तेश्चतुर्भिः स
नैर्वेदकोणकं चतुरस्रं कुंडं स्यादित्यर्थः यत्तु चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुंडेकारणमिसादिवचनयुक्ते
पिरघुवीरदीक्षितेः कुंडार्कटीकायां चतुरस्रप्रकृतिकानि सर्वाणि कुंडानि येभ्या चरम्भु तेषां

१९ भुजसाम्यं क्वापि नास्तीति स्पष्टमिदमुक्तं तथा चतुरस्रं प्रकृतौ कुंडकरणे बहुप्रकारकथाऽतः विद्वान्
३२ भावः क्वचित्कोणेष्वंतरमपि स्यात्ततः प्रकृतौ नु स्वल्पायासेन कुंडसिद्धिः भुजसाम्यं फले ष्वंतराभावश्च
तस्तैरुक्तं सुखं यमिति नच शारदातिलकादौ प्रकृतिचतुरस्रमेवोक्तं एवं मात्स्यादावपि प्रकृतिवृत्तं तु
क्वापि न श्रूयत इति वाच्यं शारदातिलकादौ कुंडसिद्धौ नात्यर्थं न स्यात्प्राताद्वाविस्तनेकग्रंथकाराणाम
नेकप्रकारोक्तिभिः स्पष्टत्वात् अनेनैव प्रकारेण कुंडं कुर्यादिति मानाभावात्. कुंडार्कादौ सर्वकुंडप्रकृ
त्यंसाद्यंशोपि दृष्टे सव्यासनश्च कटिलमं ।। बाहुभ्यकटिमुगमसव्यक्तसमैवेदं कोणकुंडं ऽयो
निकत्वेन वृत्तं स्येव विधानात् वचनस्यैवश्च फलांशोनितिनियोगात्रिति दिक् अथ फलानयनं व्यासः ३३।
७।५ अयं त्रिबाणार्द्धगुणाहृपि ९४ ९५३ रेभिर्निघ्नोजातः २९ ९१०२४।४।१२ अयं खखखो
भार्कैः १२०००० रेभिर्भक्तो लब्धो भुजः २४।०।०।४ समभुजि चतुरस्रे भुजकोटिघातः फलं ५७६।
२ अधिके न्यूनजा स्यात्तिसिद्धिः उक्तं च स्थाने सर्वकुंडानां खजायुसर्गोसिद्धिरिति ९६ अथास्मिने
व चतुरस्रे भ्यस्यपत्राकृतियोनिमाह सिद्धस्तिचतुरस्रेऽसिद्धस्तिशालिन्येन वृत्ते वामामार्भेतः प
रिधिना हे चतुरस्रगुण व्यासस्यार्धं परिलब्धा काशीतपुत्र तत्र मलवं वर्धयत समाहर्पितदे शातरुण

धांशत्र्यंशकुलागंधाख्यानथावेशालस्य चतुरस्रस्य भुजचासं तनेस्यशांतिनिम्नादयां गुणकपदे हीति यो
नः गाः चतुरस्रस्य कर्णदलमेव व्यासदलेन वृत्तदलस्य भुजं भुगुलं चतुरस्रस्य योरक्षया श्वित्तं वलगनं
एतेन चतुरस्रभुजस्य पुच्छलानन्तमणितत्रार्धभुगुलस्य क्षेपं तेन नोपिपत्रलदध्व यथापत्र सदृशी योनिः यो
निकुंडस्यादित्यर्थः अत्रापि सर्वेषां कुडानां वक्ष्यमाण्योनिकरणप्रकाराभ्यामावश्यमाणप्रके
रदयाभ्यां बोध्य- अथफलानयनं ३३।७।५ अस्य चतुरस्रभुजा २८ इयं कोणसेना१।७।५

मिश्रेम तु रस्रे कोणेन रक्तेन मामात्रपार्श्वतो बाह्ये॥ व्यासस्य भुजात्तिलवं मर्धयुतं स्यात्कुण्डरूपे सु
सम् ८।० ०।० वेदाङ्कपुरास्य कर्णव्यासवृत्तदलयुग्मं॥ वेदाङ्कदस्य पार्श्वे लग्नं स्याद्योनि

अस्यांघि ५।७।६।४ अनेन भुजाया २८।७।६।५ अयागामस्य भुजमिलवः ०।२।५ अनेन
सहिताभुजाया २९।१।३।५ आयामेनानेनः व्यासार्धेनेन भजत्वर्धं १२ नवगुणितमित्यादिना स्य
क्षेत्रफलं ३५० अथवृत्तदलक्षेत्रफलं नत्र चतुरस्रकर्णो व्यासार्धमेव १६।७।६।४ अस्य व
र्गः २९९।२।५ एकादशगुणितः ३१७०।२ चतुर्दशाभक्तः २२६।७।५ इदमेव वृत्तफ
लं अस्यार्धमेवार्धवृत्तफलमतः संपूर्णाभिर्दलयोर्दक्षफलं इदं मात्रक्षेत्रफलो ३५० युक्तं जातं संपू

पृ. ५

कुं.र. ५७

यंकृते व्यासेन चत्वारिंशदंशाः एकोनपंचाशतानि ग्राह्यास्तस्यात् तथा सत्रिपादकर्तव्ये त्वत्ते च
ष्णवसंज्ञाः सप्तविंशासुत्तरशतेनन निघ्नो व्यासस्यात् तथा द्विगुणे कर्तव्ये त्वते द्वादशांशाः सप्त
दशोत्तरिनिघ्नो व्यासः स्यादित्यर्थः तथान्यकाः भुजा अपि अनया व्यासानयनरीत्यानेगणयु
रित्यर्थः अयं प्रकारः श्रीगुरोस्तात चरणप्रसादान्मयोक्तः कल्पित इत्यर्थः तथा चोदाहर
णं व्यासः ३३।७।५ अस्य चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशततमो भागः ०।१।७।०।६ अयमेक
षष्ट्युत्तरशतेन निघ्नः ३७।७।६ अयमेव सपादव्यासः तथा सार्धव्यासस्य वेदांशः ०।६
।६।२ अयमेकोनपंचाशता निघ्नः ४१।४।२।२ तथा सत्रिपादव्यासाष्णवसंज्ञाः ०।
२।६।५ अयं सप्तविंशासुत्तरशतेन निघ्नः ४४।७।१ तथा द्विघ्नेन व्यासस्य द्वादशांशः २।६
।५ अयं सप्तदशनिघ्नः ४९।०।५ अत्र पंचपञ्चाधिकं तद्दोषाय यवोनत्वात् अथ भु
जार्थं किंचिदुदाहरणं एकहस्तचतुस्त्रभुजः २४ अस्य द्वादशांशः २ अयं सप्तदशगुणि
तो जातो द्विहस्तभुजः ३४ अत्र पूर्वकान्न्यूनमधिकं तद्दोषाय तथास्य द्वादशांशः २।६।
५ सप्तदशनिघ्नः ४९।०।५ अयं चतुर्हस्तकुंडभुजः एवं यवाद्यादिषु १२९ अथवं कुंडनि
र्माणप्रकारादिनालिखेसादि पंचचामरेणाह विधायेति उक्तवद्दुत्तमं कुंडं विधाय

नाम्रपत्रकैर्विवध्यतदभावेदृष्टकादिभिः अथवासुवर्णयामदया विवध्यअयवायदायुधेर
श्लकत्वाकुंडंनकृतंतदाहोमसंख्ययासुचत्वरंस्थंडिलंप्रकल्पयेदित्यर्थः स्थंडिलंचत्वरा
जिरइत्यमरः उक्तंचपद्मलांसर्वकुंडंनाम्राद्विनाकार्यं ताम्रेण लक्षणोपेतंकुर्यान्म
त्तिकयाथवा तदभावेत्विष्टकाभिःसंबंधसुदृढंतथेति क्रियासारात् नाम्रादिकुंडाना

मः ।१६०। भवेन्मन्त्रिणोर्दढिनि प्रेत्सर्पोश्लकःस्यादिनिर्ग्गोः गाभूमिधिज्ञ ॥ तथा
स्पर्शकामासद्दिक्रमेणप्रकारायपुक्तागुरोरिदप्रसादात् १६१ विधायकुंडगुत्तमं
विवध्यनाम्रपत्रकैरभावदृष्टकादिभिः सुवर्णेपामृदथवा ॥ अज्ञाकृतोयदायुधेनकुंड
मत्रवाकृतंतदानुहोमसंख्ययाप्रकल्पयेत्सुचत्वरं ॥१६२ ॥१६२ ॥ १६२

शुद्धिरपितत्रैवआग्नेननाम्रमंकुंडमन्नयंयोगयांमसासोधंचसुधपासम्यकुयाक्ष्येदमर्त्योति
सोधामितीष्टकासंधिसुसुधादानेनकृतमितिपद्धतिः तथातत्रैवहस्तमात्रेणसुपलक्षणंहोम
बहुत्वेस्थंडिलमहत्कार्यं अर्थात्परिमाणमितिकात्यायनवचनादिनिकल्पलतायाअप्येवंगवाश
यः ॥१६२॥ अथपूर्वोक्तस्थंडिललक्षणंरूपकेनाहभुक्षेतिभुक्ताभुक्षेदशगोद्भवायामन्ति

कुं १
५८

कातस्मात्सोभिः पांसुभिः मेखलायोनिसहितं योनिसहितं कुंडेण संमितं हस्तमात्रं प्राक्प्रवणं चतुःको
णं अंगुलोच्छ्रयं स्थंडिलं वा कुर्यात् अग्न्याधाने निर्मेखलाभ्यां निपुक्तं रहितं च चतुरंगुलोच्छ्रायं वा कुर्यादित्य
र्थः । तदुक्तं कल्पलतायां स्थंडिलमेखलोद्धृताः स्तसंहितायां स्थंडिले खमेलाः कार्याः कुंडोक्त
स्थंडिलाकृति योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुंडवत्तत्र वेदिभिरिति तंत्रांतरेपि समेखलं स्थंडिलं तु
प्रशस्तं होमकर्मणि कंठं तु वर्जयेत्तत्र तत्राने कंठः प्रकीर्तित इति अन्यत्रापि स्थंडिले मेखलादि
ग्राभि रहस्ये वंशाग्रहाः आग्न्यायतनधर्माहि यतस्ते मेखलाद्य इति ननु आग्न्यायतनधर्म
त्वेन मेखलानापि प्राप्ता पुनर्विधानारंभो व्यर्थ इति चेन्न वचनेन स्थंडिलस्तिलिशोपाराणात आ
यतनांतर निहते वौधायनोपि कुंडवन्मेखला कृत्वा योनिं कृत्वा ततः परं बोधायनमते
प्रोक्तं स्थंडिलं चतुरस्रकमिति मनिरेक मुखे नामानस्यानन्तानानैगोक्ता मेखलारहिते होमः
सर्वकर्मसु गर्हितः हविराधारत्वात् सामेखलानां प्रयोजनमिति न चात्र वामे स्थंडिलस्याप्य
भवत्वात् कुंडविषयमेवास्येति वाच्यं तत्र मेखलारहिते होमकरणे वाक्येन दोषानरवगतेनेति
संतमुक्तं पश्यतोतु अत्र कश्चित् कुंडवत् स्थंडिलेपि मेखलायोन्यादिकार्याणि स्यात् तदज्ञा
नविजृंभितमिति सार्वत्रस्मात् स्थंडिले मेखलादयो न भवंतीति सिद्धांतेन स्थंडिलप्रमाणा

राम
५८

याकारत्वमपि पुराणोक्तं गतनुरुममनाशनियोषभूततनादित्यनमतिक्षोदे नेत्यंतं सविस्तरं तमुक्तं विस्तरभ
याद्त्र न लिखितं वायवीयसंहितायां अथाग्निकार्यं वक्ष्यामि कुंडे वा स्थंडिलेपि वा इति क्रियासा
रे कुंडमेवंविधं नसाल्स्थंडिलं च समाचरेदिति मत्स्यसंहितायां मध्यवेद्यां अनुदिक्षु कुर्यात्कुंड
मनुक्षयं कुंडाभावे स्थंडिलेषु होमः कार्यो यथाविधिरिति क्रियासारे होमेषु दिक्षु प्राक्प्रवहः प्रा
गुदक्प्रवणे यथवा उदक्प्रवहः प्रदेशो वा स्थंडिलस्य स्थलं समतां गतिति शारदायां हस्तमात्रेण
तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनं अंगुलोनोधसंयुक्तं चतुरस्रं समंततः इति पदार्थादर्शे चितुःकम
णमष्टांगुलोत्सेधमेके इति कुंडसिद्धिटीकायामपि तंत्रांतरे मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मवालुक
यापि वा अंगुलोच्छ्रितं तथा वेदांगुलोच्चं स्थंडिलं विदुरिति १५३ अथो मंडपाद्यकरणे दोषमनुष्टु
भाह अथेति मंडपादीनां आदिपदेन कुंडवेदिध्वजपताकादीनां संग्रहः यथायथोक्तं न तथैव
वकार्यं अन्यथाकरणे न्यूनाधिकत्वे सति कर्तुर्यजमानस्यानिष्टं फलं स्यादित्यर्थः जपद्रव्य
यामले सत्याधिके मृदुदेशोमानहीने दरिद्रता वामनोध्वः कंठहीने स्यादसिद्धिर्न्यूने त्वात
के अधिके चाप्युरोभागोमाने नाधिकमेव खलेत्याधयः संपूर्णे तेन होतो गमस्यादयाल्पतिः
श्रा टंसकुटिलोपि दृसंयुक्ते आचतामवेदिति विश्वकर्मापि खातेधिके भवेद्रोगी हीने धे

कुं.१. त्रुपनस्य वक्रकुंडे च संतापो मरणं छिन्नमेखले मेखलाविहीने शोकोप्यधिके वित्तस्य भार्या
५८ विनाशनं प्रोक्तं कुंडं पत्नं कंठवर्जितमिति क्रियासारेपि न्यूनाधिकप्रमाणं यत्कुंडं कर्कशमेखलं भंगा
रहितं पञ्चयजमानविनाशकृदिति आगमांतरेपि मानाधिके भवेन्मृत्युर्मानहीने दरिद्रते
सासिद्धिर्भ्रांतशाखरपि मानहीने महाव्याधिरधिके भ्रातृवधं नं योनिहीने त्वपस्मारो वादं
डः कंठवर्जितइति वसिष्ठसंहितायामपि अनेकदोषदं कुंडमप्यन्यूनाधिकं यदि तस्मात्सम्य
क्परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छतेति सर्वं शिवं १५५ ॥ अथ ग्रंथपूर्तौ स्वपूर्वजवर्णनं स्रग्धर

भूद्म त्तिकारत्नाभिरेव वासमे खलं संछिद्रलं सयोनिकं कंकरणसंमितं तथा ॥ प्राक्स्ववंनु
सागास्तमंगुलोच्छ्रमनयायोनि मेखलाविपुरुसोगांगुलोच्छ्रकं ॥१५३॥ अथात्र मं
डपादीनां यघदुक्तं तु तथा ॥ कार्यं न्यूनाधिकं त्वस्यादनिष्टंकर्तुरेव च ॥१५४॥

प्याह भारद्वाजेति भरद्वाज एव भारद्वाजस्तस्य विस्तारवति कुले विष्ठलस्यापत्य पुमानृवि
श्वनाथनामा समभवत्पुः प्रसहं सुरेंद्रान्देवश्रेष्ठान्श्रोतस्मार्तकर्मभिः प्रीणयन् तस्य
पुत्रः कांतिमान्भास्करात्मजस्तादनुसम्यगुदितः तत्सुतः श्रेष्ठः जन्मोपनामा विद्वान्म

कुटमणिर्मुख्यः अस्यौदीक्षासंज्ञानामयस्येताद्दशः कृष्णाख्योऽभूदित्यर्थः ॥ १४५ ॥ तस्येति तस्यकृ
ष्णशर्मणः पुत्रेणरामचंद्रेण मयेतिशेषः तत्पादस्यरजः परागस्तंस्वशिरस्यवधार्यकुंडरत्ना
वलीशुभासर्वलक्षणसंयुक्तारचिताकृतेत्यर्थः १४६ अथकुंडरत्नावलींस्तुतिद्वाराप्रशंस
ति इयंकुंडरत्नावलीयेनपुरुषेणकंठेस्वगलेधृताधारितासःयाज्ञिकानांसभायांपूज्य
स्तमः स्यादित्यर्थः ॥ पुनः कुंडशास्त्रेसुंदरायसभी । चीनांगतिःस्यादित्यर्थः मणेरत्न
स्वतथामंडपादावपिगतिर्ज्ञानंस्यात् ॥ १४७ ॥ अथविदुषोऽनुष्टुभाप्रार्थयतेभ्रांतेति

भारद्वाजान्ववायेमहतिसमभवद्देवलेविश्वनाथोयोपीष्टापूर्तैः सुरेंद्रान्प्रतिदिन
मपियोप्रीणयत्तस्यपुत्रः भास्वान्श्रीभास्करोचभूत्तदनुसमुदितस्तत्सुतोभूद्द्व
रिद्वोजज्ञोपाह्वस्तुविद्वन्मुकुटमणिरसौदीक्षितःकृष्णशर्मा १४५ तस्यपुत्रे
णतत्पादरजः कृत्वास्वमूर्धनि ॥ रामचंद्रेणरचिताकुंडरत्नावलीशुभा ॥ १४६
कुंडरत्नावलीयेनकंठेधृतायाज्ञिकानांसभायांसपूज्यात्तमः ॥ कुंडशास्त्रेणो

दाहकुंडरत्नावल्यांप्राचीनानांपूर्वाचार्याणांमततोविरुद्धंयत्किंचिल्लिखितंतद्भ्रांत्यादया

६०

लवः विकासः ज्ञो धयंतु भुक्तिं कुर्वन्ति सर्वे ॥१४८॥ अथ ग्रंथसमाप्तिदिवसमनुष्टुभाह खेति नगसु
लक्ष्मा [illegible] तमेऽप्यलिवाहनके भाद्रमासस्य कृष्णपक्षे शुभे तिथावेकादश्यां समापिता स
मापिताप्तासा विश्वेश्वरस्य कंठे अर्पिता प्राप्तितान्वेति सर्वोऽशिवं १४९ ॥ यदत्र चोक्तं सद्
सद्भिर्ज्ञो धि नूनं प्रार्थये सज्जनपंडितानहं ॥ नमो नुदंतनितिमिरं रचिता शितुं नयाचेतको पिक्षि
श्रमोवय १५० ॥ इति श्रीजज्योपाह्व कृष्णदीक्षितवानदीक्षितापरनामधेयसूरिसूनु

तस्य सत्पादस्याकृतिः सुंदरामंडपादावपि १४० ॥ श्रीलाप्राचीनमतनो विस्तृत्य
मिहृपन्मया ॥ लिखितं तत्तु विकासः ज्ञोधयंतु यालवः ॥ १४८ ॥ खनंदमुनिभूज्ञा
केभाद्रकृष्णे शिवे तिथौ ॥ समापिता चार्पिता च कंठे विश्वेश्वरस्य सा ॥ १४९

रामचंद्रदीक्षितरचिता स्वकृत कुंडरत्नावलीटीकामंजूषाख्या समाप्ता ॥ श्रीगुरुदत्त ॥

पत्र ६०

परिशिष्टम्- ३

कुण्डरत्नावल्यां प्रयुक्तछन्दोविवरणिका

परिशिष्टम्-४

स्मृतानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणामनुक्रमणिका

परिशिष्टम्-५

श्लोकानुक्रमणिका


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय


सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय